साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य

डॉ० रघुवंश

•

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : हिन्दी ग्रन्थांक–[illegible]
सम्पादक-नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन

Sahitya Ka Naya Pariprekshya
(Literary Criticism)
Dr. Raghuvansh
BHARATIYA JNANAPITH PUBLICATION
First Edition 1963
Price Rs. 5.00

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ काशी
सम्पादकीय एवं प्रधान कार्यालय
भारतीय ज्ञानपीठ, ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
विक्रय विभाग
भारतीय ज्ञानपीठ, ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी
प्रथम संस्करण १९६३
मूल्य पाँच रुपये

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक इधरके वर्षोंमें लिखे गये मेरे लेखोंका संकलन भी है और चिन्तनकी एकसूत्रता तथा विषय-वस्तुकी एकरूपताके कारण एक ध्यान भी है। १ ४२ म म इलाहाबाद आया। उसके पूर्व पाठकके रूपमें हिन्दी साहित्यसे व्यापक परिचय होनेपर भी राजनीतिक चेतना तथा आन्दोलनसे अधिक गहरे स्तरपर सम्बद्ध रहा था पर इलाहाबादके साहित्यिक वातावरणमें मेरा समसामयिकताका बोध साहित्यके स्तरपर अधिकाधिक संघटित होता गया। यहाँ हिन्दीके सभी पर्याप्त लेखकों और आलोचकोंसे मिलने-जुलने तथा विचार विनिमय करनेका अवसर मिला। साथ ही युवक लेखकोंका हमारा एक ऐसा वृत्त भी रहा है जिसके साथ पिछले साहित्यिक चिन्तन आन्दोलनोंसे भरी भी गहरी संसक्ति रही है। परिणाम-स्वरूप समसामयिक साहित्यपर बहुत कुछ सोचता-समझता रहा हूँ प्रेरित किये जानेपर लिखता भी रहा हूँ। समसामयिकताका भाव-बोध क्योंकि समस्त आधुनिक युगसे सम्बद्ध है भारतेन्दु युगसे हिन्दीका आधुनिक काल माना जाता है इसलिए भूमिका-रूपमें भारतेन्दु द्विवेदी छायावादी युगोंका विवेचन-विश्लेषण इसी प्रसंगमें यत्र-तत्र हुआ है। समसामयिक लेखकों तथा कवियोंके भाव-बोधका ग्रहण करना और उनकी रचना प्रक्रियाको समझ सकना एक प्रकारसे आसान है क्योंकि उनका यह भाव-बोध युग-बोधका अंग है और इस आधारपर रचना-प्रक्रियाका अनुभावन भी सरल हो जाता है। परन्तु इस सम्बन्धमें सबसे बड़ी कठिनाई होती है वैयक्तिक आग्रहकी जिसे प्राय पूर्वाग्रहके रूपमें आरोपित किया जाता है।

समसामयिक लेखक और आलोचककी सम्यक रुचि मान्यता तथा पक्ष अधिक व्यक्तिगत तथा प्रत्यक्ष होता है। इस सम्बन्धमें सैद्धान्तिक चिन्तनका

साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य

गम्भीर और सूक्ष्म ऊहापोह और समसामयिक साहित्यिक प्रतिमानोंका अन्तर्ग्रहण शाश्वत साहित्यिक मूल्योंके सन्दर्भमें विवेचन तथा निर्धारण समीक्षाकी दृष्टिको निर्वैयक्तिक बनानेमें सहायक होता है। इसके अतिरिक्त विवेचनमें निर्णय न देकर विश्लेषण तथा व्याख्या करके भी इस दायित्वका निर्वाह किया जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययनके सभी क्षेत्रोंमें उपर्युक्त दोनों पद्धतियोंसे समसामयिक भाव-बोधके विवेचनका प्रयत्न किया गया है।

विस्तारकी व्यापकता और विषय-सम्बन्धी एकरूपताके बावजूद संयोजन तथा रचनात्मक संबन्धके अभावमें इस पुस्तकमें अनेक कमियाँ और दोष (एक बातके स्थान) देखे जा सकते हैं। पर इसका स्पष्ट कारण है अलग अलग अवसरों भिन्न समयोंमें तथा मनःस्थितियोंमें स्वतन्त्र लेखके रूपमें लिखा जाना। कुछ असंगतियाँ और विरोधाभास भी मिल जायें तो आश्चर्य नहीं क्योंकि इस बीच मैं बराबर चिन्तनमें निरन्तर संलग्न रहा हूँ और मैं उन्हें अपनी आगेकी स्थिति तक पहुँचनेके क्रम सोपानोंके रूपमें स्वीकार कर लेता हूँ।

इलाहाबाद
१ जुलाई १९६२

— रघुवंश

अनुक्रम

साहित्यका
नया परिप्रेक्ष्य

साहित्यिक मूल्य

मूल्यगत संक्रमण
और
समीक्षाका मानदण्ड

आजकी स्थितिमें जब हम यह कहते हैं कि साहित्यका दायित्व बढ़ गया है उस समय यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इसमें समीक्षकके दायित्वका प्रश्न भी अन्तर्निहित है। अन्ततोगत्वा साहित्यिक मूल्योंकी व्याख्या करना पाठकको उन मूल्योंके विषयमें अन्तर्दृष्टि देना तथा साहित्यकारको उनके उपयुक्त मूल्योंके प्रति जागरूक करना ही समीक्षाका कर्तव्य है। समीक्षाके तीन आयामों और उनके सापेक्ष महत्त्वपर विचार करने मात्रसे समीक्षाका दायित्व समाप्त नहीं हो जाता।[1] ये आयाम समीक्षात्मक पद्धतियोंमें समन्वित हैं। इससे केवल इतना ही समझा जा सकता है कि समीक्षाकी प्रणालीको भिन्न-भिन्न दृष्टि-बिन्दुओंसे निर्धारित करना चाहिए। पर समीक्षाकी मूल समस्या आज भी ज्यों-की-त्यों रह जाती है। प्रश्न है कि मुख्यतः इस प्रकार साहित्यिक किन मूल्योंकी व्याख्या या स्थापना करती है? ये मूल्य क्या हैं? ये मूल्य परिवर्तनशील हैं या स्थायी? इन मूल्योंके विषयमें उनकी प्रकृतिके सम्बन्धमें विचार कर लेना नितान्त आवश्यक है क्योंकि इन मूल्योंके अनुसार ही समीक्षाका मानदण्ड निर्धारित किया जा सकता है। बिना साहित्यिक मूल्योंकी स्थापनाके समीक्षात्मक मानदण्डका निरूपण भी नहीं किया जा सकता और यदि साहित्यिक मूल्य युग-युगमें परिवर्तित होते रहते हैं तो युग-युगकी समीक्षाके प्रतिमान एक-सा नहीं हो सकते। समीक्षाके मानदण्डके स्थायित्वसे यह भी सिद्ध होता है कि साहित्य-द्वारा अभिव्यक्त मूल्योंमें स्थायित्वकी

---

१ आलोचना; अंक ७ में प्रकाशित।

भावना है। परन्तु मूल्यके प्रश्नको उठानेसे पहले हम यहाँ किना कि
एवं साहित्यक सम्बन्धी स्वीकृतिकी समस्यापर विचार कर लेना चाहूँ

स्वीकृति-अस्वीकृतिकी समस्या मूल्यके सन्दर्भमें मूल्यांकनकी बाधा
समस्या है। यह ठीक है कि प्लेटो और भरत मुनिसे लेकर १९वीं श
वर्षमें तक साहित्यकी ग्रहणीयताका किसीने स्पष्ट रूपसे अविच्छाम
किया था। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि आधुनिक पश्चिमी
दर्शनमें स्वयं कलाके लिए सिद्धान्तकी अपेक्षा भी जा सकती
अन्य मोक्षवादी सिद्धान्तोंकी महत्ताको भुलाया जा सकता है।
मोक्षकी धारणाके तथा ज्ञान-विज्ञानकी प्रगतिकी दृष्टिसे और कला
तथा साहित्य-सम्बन्धी गम्भीर चिन्तनकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपू
आधार जीवनमें जो सम्पन्न संक्रमणकी स्थिति आ पड़ी है
मूल्यगत था या यह कि उसके कारणका आविर्भाव इसी शताब्दीमें
है इस कारण भी इस युग दृष्टिकोणकी उपेक्षा नहीं की जा सक
प्लेटो, एरिस्टोटल, एपिक्यूरियनीय आदि ग्रीक विचारकोंसे लेकर मध्य
धार्मिक विचारकों तक और पुनरुत्थान युगके स्टीफन गोसन
सिडनीसे लेकर रोमैंटिक युगके शैलीसे कीट्स आदि तक तथा आधु
ब्रास मैथ्यू आर्नल्ड साम्यतावादसे लेकर [illegible] संसारमेंट धीम
साहित्यकी ग्रहणशीलताको स्वीकार की है। परन्तु ग्रहणशीलता स्वी
करते हुए भी इन विभिन्न आलोचकोंके मूल्य-सम्बन्धी दृष्टिकोण
अलग है। प्लेटोने साहित्यको शासन नियन्त्रित किया था क्योंकि
साहित्यका कार्य जीवन-सम्बन्धी व्यावहारिक प्रतिकूल समस्या
इसी प्रकार यहाँ सिडनी और प्लेटोनके जैसे तानाशाही विचारक
समाजके साहित्यकी व्यावहारिक उपयोगिताको ही स्वीकृति देते हैं।
रिचर्ड्स लिखते हुए भावात्मक अभिव्यक्तिके रूपमें साहित्यकी
न स्वान्तःसुख स्वीकार किया लोगोंने उसे धीरज और आनन्द प
इसमें भावात्मक पक्षकी अभिव्यक्तिका रूप माना है। परन्तु

साहित्यके आचरणात्मक प्रभावपर बल दिया और सॅमरसट मॉमने कलाका मूल्य सौन्दर्यमें स्वीकार न करके सुन्दर व्यवहार माना है। प्रयोजन-सम्बन्धी इस विभिन्नतामें इतनी समानता तो है ही कि पाठकको प्रभावित करनेकी शक्तिके आधारपर इन विचारकोंने साहित्यमें मूल्योंकी स्थापना की है।

'कला कलाके' लिए सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेवाले विचारकोंने साहित्यके प्रयोजनको अस्वीकार किया है। विक्टर कोजिन तथा विक्टर ह्यूगोके विचारको गातियरने स्पष्ट शब्दोंमें प्रतिपादित किया और फ्रांसमें गॉतिए, रस्किन प्रभृति बॉदलेयर आदिने इस सिद्धान्तको किसी-न-किसी रूपमें स्वीकार किया तथा इंग्लैण्डमें इसके प्रवर्तक वाल्टर पेटर तथा स्विनबर्न आदि रहे हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रयोजनका अस्वीकार करके इन साहित्य-शास्त्रियों और साहित्यकारोंने साहित्यसे मूल्योंका बहिष्कार कर दिया है। सामान्यतया इनका प्रयोजनके रूपमें साहित्यमें किसी आचरणात्मक या सामाजिक मूल्यकी स्वीकृति नहीं दी है। सिद्धान्तका कहना है कि 'कला कलाके लिए' सिद्धान्तवादियोंने साहित्यमें आचरण-सम्बन्धी मूल्योंको अस्वीकार करनेसे या तो अनाचार (इम्मॉरल) अथवा निराधार (ऐमॉरल) का प्रतिपादन किया है और इस प्रकार उन्होंने एक तरहसे आचरणात्मक प्रयोजनको साहित्यमें मान्यता ही दी है। वास्तवमें महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन विचारकोंने इस प्रकार साहित्यके मूल्यको नैतिक मूल्यसे भिन्न करके देखनेका प्रयत्न किया। जैसे जब लॉंगिनस काव्यको आत्माकी प्रतिध्वनि कहता है अथवा क्रोचे अभिव्यंजनाके रूपमें काव्यकी व्याख्या करता है उस समय यह भी नहीं कहा जा सकता कि अन्य सौन्दर्यवादी विचारकोंकी दृष्टिमें यह बात कभी आयी ही नहीं।

प्रयोजनकी दृष्टिसे साहित्यपर विचार करनेवाला समालोचक या तो जीवनसे बदलते हुए मूल्योंके साथ अपने मानदण्डको बदलेगा अथवा धार्मिक रूढ़िवादी और मार्क्सवादीकी भाँति सामाजिक नियमोंको अटल मानकर उनके अनुसार अपने मानदण्डको स्थायी स्वीकार करेगा। इसके

विपरीत अपनी समस्त सीमाओंके बावजूद मार्क्सवादी समीक्षक साहित्यके मूल्य एवं सम्भावना पर बल देता है जो जीवनके यथार्थसे सर्वथा असम्बद्ध और असम्पृक्त हैं। इस प्रकार यह सारा विवाद इस बिन्दुपर केन्द्रित हो जाता है कि साहित्यका स्थायी मूल्य नैतिक आधार तथा अन्य सामाजिक मर्यादाओंसे सम्बद्ध है अथवा नहीं ? सौन्दर्यवादियोंने अपने सिद्धान्तोंका प्रतिपादन अत्यन्त कुशलताके किया है किन्तु वे इस स्थापनाको निर्मूल नहीं कर पाये हैं कि साहित्य और जीवनका सम्बन्ध अटूट रहा है। इसी स्थितिमें आजतक बदलते हुए मूल्योंके साथ साहित्यके समालोचनात्मक मूल्योंमें विकसित होनेकी सम्भावना बनी रहती है। दीर्घकालसे जीवन समाज [illegible] साहित्य [illegible] संस्कृति तथा [illegible] आलोचना-पद्धति सम्पन्न है जो समय-समय साधारण समाज और साहित्य [illegible] संस्कृति साथ आलोचनाका इतिहास संस्कारी है। इसी प्रकारका अपना संस्कृत समालोचना पर तथा [illegible] भक्ति-साहित्य माना जा सकता है। प्रथम [illegible] उसका अनुरूप अलंकारका सौन्दर्यबोध है जो दूसरे साहित्यिक भक्ति-आदर्शके अनुरूप रस-सिद्धान्तका प्रतिपादन हुआ है। इसी प्रकार रीतिकालीन सामन्ती समाज तथा साहित्यके अनुरूप उस कालका परिवर्तित समीक्षा-पद्धति है। पर इस समानताको बहुत दूर तक सिद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि जहाँ देखा जायेगा न जीवनके सब रूप बदलते हैं। (जिसमें बदलते रहते हैं) और न साहित्यके रूप और तदनुरूप सामाजिक सम्बन्धी तदनुरूपता का अनिवार्य है। पर [illegible] इतिहासमें पहली बार देखा हुआ है जिसमें [illegible] पूँजीवाद [illegible] तथा विज्ञानवादी भौतिकवादके कारण मानवीय जीवनमें सर्वथा अभिनवता आ गयी थी। इस कालकी [illegible] और [illegible] पुराना व्यक्ति समाज [illegible] परिवर्तन करने जा रहा है। इसमें [illegible] नहीं कि इसका प्रभाव [illegible] साहित्य और उसकी समीक्षापर

दृष्टिकोण दोनोंपर समान रूपसे पड़ा है। वर्तमान युगके मूल्यगत संक्रमणकी भूमिका विचारों और विश्वासोंके इस क्रान्तिकारी रूपमें प्रारम्भ हो गयी थी जिस संक्रान्तिकी परिस्थितियोंमें आज यूरोप पुनः स्थायी मूल्योंकी खोजमें है। यहाँ यह निश्चित रूपसे कह देना आवश्यक है कि हमारे देशमें न तो यूरोप-जैसा विश्वासहीनताका युग कभी रहा है और न आज यहाँ यूरोपके समान मूल्यगत संक्रमणकी स्थिति ही है। यह संक्रमण हमारे लिए आत्मानुभवकी परिस्थिति नहीं है बौद्धिक स्थिति-मात्र है। (सम्भवतः इसी कारण इस विषयमें हमारा दृष्टिबिन्दु अधिक असम्पृक्त रह सकता।) फिर भी यूरोपकी इस समस्याको हम निरपेक्ष भावसे नहीं देखते रह सकते क्योंकि उसका समाधान हमारे और समस्त विश्व साहित्यके भविष्यके लिए उपयोगी सिद्ध होगा। इस दृष्टिसे यूरोपकी स्थितिका संक्षिप्त पर्यवेक्षण आवश्यक है।

यूरोपमें आधुनिक युग वैज्ञानिक उन्नतिके साथ प्रारम्भ हुआ। १९वीं शतीमें भौतिक विज्ञानकी आश्चर्यजनक सम्भावनाओंसे यूरोप चकित हो गया। इसी समय औद्योगिक क्रान्तिके साथ पूँजीवादी व्यवस्थाका युग प्रारम्भ हुआ जिसके प्रभावसे सामन्ती सभ्यताका अन्त हो गया। राष्ट्रीयता तथा प्रजातन्त्रकी भावनाके विकासके साथ विचार-स्वातन्त्र्यको ऐसी महत्ता हुई कि व्यक्तिने मनुष्यको प्रधानता देकर धर्म दर्शन समाज संस्कृति और साहित्यके क्षेत्रमें वैज्ञानिक अथवा तार्किक बुद्धिसे विचार करना आरम्भ किया। भौतिक विज्ञानोंके साथ समाजशास्त्र मनोविज्ञान तथा मानव शास्त्र आदि क्षेत्रोंमें वैज्ञानिक दृष्टिकोणके विकसित होनेसे इस युगमें प्राचीन स्थापनाओं मर्यादाओं और मूल्योंमें क्रान्ति उपस्थित हुई। यह आधुनिक युग अपनी वैज्ञानिक दृष्टि तथा मशीनी सभ्यताके साथ निश्चय समस्त मूल्योंके सामने प्रश्न-चिह्न बन गया। नवीन सम्भावनाओंके इस वैज्ञानिक भौतिकवादने जीवन-सम्बन्धी मूल्योंकी परम्पराको अस्वीकार किया और मानवको भौतिक कार्य-कारण शृंखलाकी कड़ीके रूपमें माना। इसके

अनुसार प्राणियोंके विकास-क्रममें सर्वोत्तम परिणति होकर भी मानव अपनी बाह्य परिस्थितियोंका मजबूर है। विषम भौतिक तत्त्वोंके संयोगसे इसका संगठन हुआ है। वह भी उन नियमोंसे शासित है और उसका समस्त मानसिक जगत् काम-वासना अथवा अहं-मूलक प्रवृत्तियोंपर आधारित है। इस प्रकार पुनर्जागरणके बाद योरपमें विचार-चिन्तनका जो उदय एवं प्रारम्भ हुआ जिसकी समता सौन्दर्यके अतिरिक्त योरोपका कोई युग नहीं कर सकता वह वैज्ञानिक भौतिकवादकी यथार्थ मान्यताके रूपमें जाकर पर्यवसान हुआ। वास्तवमें जीवनकी कोई भी दृष्टि रूढ़िबद्ध (डॉगमैटिक) तथा निश्चित निर्धारित (डिटरमिनिस्टिक) रूपमें स्वीकृत हो जानेपर स्वयं उसकी प्रगतिके लिए बाधक हो जाती है। वैज्ञानिक उन्नतिके साथ भौतिकवादने रूढ़िवादी धार्मिक विश्वासों और स्थापनाओंके विरुद्ध अपना प्रचार किया था और इस समय यह आन्दोलन प्रगतिवादी माना जाता था। पर शीघ्र ही यह अपनी रूढ़ियोंमें बन्द हो गया जो उसकी ही स्थापनाओंकी जड़-मूलक दिखने लगी। धार्मिक सामाजिक नैतिक मर्यादाओं परम्पराओं और मान्यताओंने उसके विरुद्ध करना सिखाया था पर इस नए वैज्ञानिकों समाज शास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकोंकी स्थापनाओंने मनुष्यको भौतिक परिस्थितियोंका दास-मात्र बना डाला। प्रारम्भमें मनीषी ने विचारके साथ मनुष्य प्रकृतिपर विजय प्राप्त करना चाहा था पर विजय केवल भौतिक संघर्षके रूपमें और स्वीकृत इसके पीछे प्रज्ञा और मर्यादाका कोई अन्य स्थान नहीं रह गया था। इस प्रकार व्यक्तिकी स्वतन्त्रताका स्वप्न भाव मनुष्य अधिकारोंके कारण नष्ट हो गया और वह सब विज्ञान और मनुष्यकी खोजमें पुरुषोंका गौरव अविश्वासी बन गया। [illegible] नाम योरोपमें जो प्रचारक रहे हैं, उनमें भी इस परिस्थितिका [illegible] था।

कहा गया है कि दर्शन उसकी बनी हुई सभ्यता और संस्कृतिके [illegible] भावनाके [illegible] मानवकी [illegible]

हो गया है। युगकी परिस्थितिका यह स्वाभाविक परिणाम है। पर इस समुन्नतिकी रक्षाका प्रयत्न भी १९वीं शतीके मानववादियों (ह्यूमैनिस्ट्स) ने किया। इन्होंने वैज्ञानिक युगके साथ समझौता करते हुए तर्क प्रयोजन आदिके आधारपर मानव-जीवनके आचरणात्मक मूल्योंको स्थापित करनेकी कोशिश की है। इन्होंने व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके साथ इन मूल्योंका आधार तर्क और व्यक्तिगत विवेक-मात्र स्वीकार किया है। पर बिना पर्याप्त प्रेरक शक्तिकी सही व्याख्या किए मानववादी मूल्योंकी स्थापनाएँ थोथी जान पड़ती हैं। आगे चलकर इस मानववादका एक दूसरा रूप सामने आया है जिसने इस समुन्नतिके लिए एक भिन्न आधार स्वीकार किया है। ऐतिहासिक भौतिकवादी द्वन्द्वात्मक पद्धतिसे इसी समुन्नतिको पूँजीवादी व्यवस्थाकी समाजवादी परिणतिके रूपमें देखता है। इसने यथार्थवादी भौतिक व्याख्याके लिए सामाजिक मानवताको स्वीकार किया है। इस आदर्शने साम्यवादी देशोंमें समाजकी आर्थिक व्यवस्थाके सामंजस्यमें सचमुच अद्भुत सफलता प्राप्त की है। साथ ही इसका प्रभाव समस्त संसारपर पड़ रहा है। पर इस निश्चित दृष्टिसे समस्त मानव-इतिहासकी समस्त देशोंके युग-युगके इतिहासकी तथा व्यक्तिके सूक्ष्म मनकी व्याख्या प्रस्तुत करनेका दावा भ्रामक और थोथा सिद्ध हो गया है। ऐसी स्थितिमें आजका युग संक्रान्तिका युग है जिसमें जीवनके मूल्य हों या साहित्यके मानदण्डके मूल्य सभीके विषयमें अनिश्चित स्थिति जान पड़ती है।

जिस प्रकार १९वीं शतीके योरोपमें बदलते हुए मूल्योंका युग प्रारम्भ हुआ था, जिसकी चरम परिणति २०वीं शतीमें आज मूल्यगत संक्रान्तिमें परिलक्षित हो रही है उसी प्रकार योरोपमें १९वीं शतीके साहित्य और उसके समीक्षात्मक मानदण्डोंमें भी क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हुए थे उन सबके बीच (आजके संक्रान्ति कालमें) साहित्यके समुचित आस्वादनात्मक दृष्टिकोणके लिए वर्तमान युग आकुल हो उठा है। वास्तवमें इस दृष्टिसे क्रोचेने आरम्भमें प्रतिनिधित्व किया है, इसीलिए उसका ही

विचारात्मक संघर्षका सबसे अधिक बाधा होता गया है। इस युगके प्रारम्भमें बोदलेयरको स्थिति रोमैण्टिक तथा प्रतीकवादियोंके बीचकी है। भावनाओं तथा अनुभूतियोंकी अभिव्यक्तिके साथ उसका प्रधान स्वर सार्वभौम है। पर उसकी कवितामें आत्माकी अस्वस्थता, भ्रान्ति आत्मदयाकी इच्छा, रोग, मृत्यु और सामान्य विरक्ति शैलीमें व्यक्त हुई है। उसने जीवनमें सौन्दर्य और अवसादको स्वीकार किया है और इस प्रकार अपने युगके टूटते हुए विश्वासोंको उसने साहित्यकी मान्यताके रूपमें स्वीकार कर लिया है। बादलेयर, रेम्बो तथा मलार्मे आदि प्रतीकवादियोंने साहित्यका लक्ष्य अनुभूति, कल्पना और विचारके परम संबन्धकी खोज वर्णित करनेकी कोशिश की। चाहे बादलेयरकी निरन्तर अनुभूतिको कल्पना-बिम्बोंमें ग्रहण करनेकी बात हो या रेम्बो-द्वारा साधना करके सघन आकस्मिक अनुभूतिको कल्पना-संवेगोंमें ग्रहण करनेका प्रश्न हो अथवा मेलार्मेके वैयक्तिक मानसिक तीव्र संवेदनाओंके व्याख्यात्मक विचारका प्रश्न हो। इतना निश्चित है कि प्रतीकवादके मध्यमें युगका व्यक्तिवाद तथा सम्भावित समस्याओंसे पलायनकी मनोवृत्ति परिलक्षित होती है। जोलामें इस युगकी यथार्थवादी दृष्टि प्रतिबिम्बित हुई, जो वैज्ञानिक यथार्थवादकी स्थापनाओंका दावा करके भी असफल नहीं है। धारा और शिल्पि गुणोंकी दासत्वमें सामाजिक मान्यताओंके विरुद्धकी प्रबल आकांक्षा और मार्क्सकी सत्य आदर्शोंके अनियमिततावादमें प्रत्यक्ष विश्वास आस्थाके प्रति जो गया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि भौतिक उन्नतिके साथ वैज्ञानिक युगने किस प्रकार मनुष्यका विश्वास छीन लिया है। उसके भौतिक अधिकारोंका विस्तार भारी है, उसने अपनी असमर्थता भी खोज डाली है पर न तो उसे आत्मा जैसा है और न अपना आधार विश्वास करता है सोचता है। वह पर विचार तथा प्रकार द्वारा प्रतिपादित तथा मार्क्स-द्वारा समर्थित भौतिकवाद हो अथवा डार्विन तथा फ्रायड प्रायः जिस विकासवादका सबसे भारी संघर्ष-भूमि बना है। ऐसे भारमें

जीवन अपने मूल्योंकी दिशामें अनिश्चित अस्पष्ट और उलझा हुआ है वैसी ही आज साहित्यकी मान्यताएँ भी हैं।

मार्क्सवादने वैज्ञानिक भौतिकवादके अन्तर्गत सन्तुलन स्थापित करनेकी कोशिश की है और उसीके आधारपर साहित्यके प्रथम प्रगतिवादी (या सामाजिक यथार्थवादी) समीक्षात्मक मानदण्डकी स्थापनाका प्रयत्न किया गया है। मार्क्सने यद्यपि अपने सिद्धान्तको ऐतिहासिक (यथार्थवादी) भौतिकवाद कहा है पर उसने विज्ञानवाद और भौतिकवाद दोनोंको स्वीकारा है। इस दृष्टिसे दार्शनिक विचार तथा नैतिक मर्यादा अथवा मूल्य समाजकी आर्थिक परिस्थितियोंकी प्रतिक्रियाके बदलते हुए पहलू हैं। भिन्न मूल्य वस्तु-स्थितियाँ भर हैं जो परिस्थितियोंकी विशेष प्रतिक्रियाके रूपमें सामने आते हैं। मार्क्सके अनुसार किसी भी देशके सांस्कृतिक अथवा साहित्यिक मूल्य उसकी बाह्य उपलब्धि-मात्र हैं जो आर्थिक परिस्थितियोंकी प्रवृत्तिसे निर्धारित बाहरी ढाँचेके रूपमें सामाजिक व्यवस्थाको सहारा देते हैं। सामाजिक परिणतिकी दृष्टिसे मार्क्सने निश्चय ही मानवके किन्हीं शाश्वत मूल्योंको स्वीकार नहीं किया। पर साहित्य और संस्कृतिको बाह्य उपलब्धियोंके रूपमें स्वीकार करके भी मार्क्स एंगिल्स और एक सीमा तक लेनिन भी साहित्यके स्थायी तत्त्वको अस्वीकार नहीं कर सके हैं और यह उनके सिद्धान्तगत अन्तर्विरोधका परिचायक है। जिस प्रकार [illegible] पथ तथा कल्पित भौतिकवाद मानव-जीवनका सन्तुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करनेमें असफल रहा उसी पद्धतिको अपनाकर मार्क्सवाद भी अन्तर्विरोधसे बच नहीं सका और उसकी परिणति भी वही हुई। समाजकी अन्तिम स्वीकृतिमें इस प्रकार व्यक्तिका अपनत्व बिल्कुल मिट गया। भौतिकवादने मनुष्यके समस्त आत्मिक मूल्योंको वस्तु तत्त्वके अन्तर्गत स्वीकार करके मानवीय अस्तित्वके स्तर भेदको नहीं माना और वह यह तय भी नहीं कर सका कि मनुष्यका एक प्राकृतिक जीवन है जो प्राकृतिक तथा सामाजिक आवश्यकताओंसे निर्धारित होता है अथवा अन्य

संस्कृतिके मन्तोरमें अथ प्रश्न करता है और दूसरा एक भिन्न स्वतन्त्र जीवन है जिसमें वह मानव समूह अस्तित्वको सब और सत्योंकी सार्वभौम संयोजित करता है। मार्क्सवादी व्याख्या इससे अधिक भिन्न नहीं है यद्यपि इसमें सामाजिक जीवनकी परिस्थितियोंके भौतिक सम्बन्धों स्थापित करनेवाली 'उत्पादन प्रणाली' का ऐतिहासिक विकासका महत्वपूर्ण और निर्णायक कारण माना है। इस प्रकार मानव सम्बन्ध सम्बन्ध-रूपमें उत्पादन भौतिकताके जीवनके साथ साहित्य सम्बन्धी व्यवस्थाके उत्पन्न समझा गया है।

कि योरोपमें पुनः धार्मिक श्रद्धा और विश्वासकी आस्था जाग उठी है। पर इस नवीन धार्मिक तथा आध्यात्मिक उत्साहमें रूढ़िवादी धर्मकी स्थापनाकी सम्भावना भ्रामक है और यदि प्रतिक्रियाके रूपमें सम्भव हो भी तो उसे एक नया दुर्भाग्य मानना चाहिए। निकोलस बरदीव, मार्टिन बूबर तथा कुद्स मक्कोड आदिने आचरणात्मक, सांस्कृतिक तथा कलात्मक मूल्योंके लिए धार्मिक विश्वासके आधारके रूपमें व्यक्तिकी नयी स्वतन्त्रताकी स्थापना की है। इसी प्रकार कार्ल मानहम तथा हैरल्ड लास्की आदि नव-मार्क्सवादियोंने व्यक्तिकी स्वतन्त्रताके लिए द्वन्द्वात्मक भौतिकवादकी नयी व्याख्या प्रस्तुत की है। इन प्रयत्नोंसे इतना तो सिद्ध होता है कि यह संक्रमणका युग किसी सन्तुलनकी खोज कर रहा है। वर्तमान विभिन्न विज्ञानोंकी नवीन खोज भी इस समन्वयकी दृष्टिको प्राप्त करनेमें सहायक हो रही है, क्योंकि विकासवादका वह युग अब बीत गया है जब उसकी दृष्टिमें भौतिक कार्य-कारणकी शृंखलामें मनुष्य असहाय रह गया था। आज जो वैज्ञानिक दृष्टि हमको जीवन और संस्कृति, साहित्य तथा कला आदिके क्षेत्रमें प्राप्त हुई है, वह समग्र और संश्लिष्ट चित्र उपस्थित कर सकेगी, ऐसा विश्वास है। आजकी वैज्ञानिकता १९वीं शतीके विज्ञानवादसे भिन्न है और उसकी निरपेक्षता जीवनके विभिन्न स्तरोंसे सन्तुलन तथा सामंजस्यमें अन्तर्निहित है। इसीलिए आज साहित्यके मूल्यांकनके लिए मानव-शास्त्र, समाज-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शन तथा संस्कृति आदिके व्यापक अध्ययनकी आवश्यकता है, जिससे मानव-जीवनकी सम्पूर्णताको दृष्टि-पथमें रखकर समीक्षात्मक मानदण्डकी स्थापना हो सके।

अभीतक यह मानकर चला गया है कि युग-युगमें जीवनके मूल्य बदलते हैं और उन्हींके अनुसार साहित्यके समीक्षात्मक मानदण्ड भी बदलते हैं। पर जैसा कि कहा गया है, इस कथनमें आंशिक सत्य ही है। जीवनका सामाजिक विकास हो या वैयक्तिक चेतनाका विकास हो, विच्छिन्न रूपसे उसकी सम्भावना नहीं मानी जा सकती। साहित्यकार जीवनके जिस

वृत्तियोंके सन्तोषमें अर्थ ग्रहण करता है और दूसरा एक भिन्न स्वतन्त्र जीवन है, जिसमें वह अपने सम्पूर्ण अस्तित्वको अर्थ और मूल्योंकी उपलब्धिमें संयोजित करता है। मार्क्सवादी व्याख्या इससे अधिक भिन्न नहीं है क्योंकि इसमें सामाजिक जीवनकी परिस्थितियोंमें भौतिक मूल्योंको स्थापित करनेवाली 'उत्पादन प्रणाली' को ऐतिहासिक विकासका महत्त्वपूर्ण और निर्णायक कारण माना है। इस प्रकार आधुनिक मूल्यगत संक्रमण-युगमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद जीवनके साथ साहित्यमें मूल्योंकी स्थापनाके प्रयत्नमें असफल रहा है।

इस प्रकार रूढ़िगत धर्म, रूढ़िगत भौतिकवाद तथा रूढ़िगत समाजवाद तीनों ही आज मानवीय जीवनकी समस्याको सुलझानेमें असमर्थ हैं; परिणामस्वरूप साहित्यके समीक्षात्मक मूल्यांकनके विषयमें आज अनिश्चयकी स्थिति है। इन सभी समाधानोंमें जीवनका किसी एक विशेष दृष्टिसे ग्रहण किया गया है और सामान्यतः इनमें एक-सी गलती पायी जाती है। परम्परासे यह देखा गया है कि मानवीय विचारोंके समस्त आन्दोलनोंमें आंशिक सत्य रहता है और ये सब एक सीमा तक मानवीय जीवनको अग्रसर करनेमें सहायक हुए हैं। सम्भवतः जब कभी अन्वेषणका सत्य चाहे भौतिक जीवनके क्षेत्रमें हो अथवा आध्यात्मिक जीवनके अथवा परम्परामें पड़कर अन्तिम सत्य मान लिया जाता है तभी वह अपनी गत्यात्मक शक्तिसे विच्छिन्न होकर मानवीय जीवनकी प्रगतिको अवरुद्ध कर देता है और प्रत्येक संक्रान्तिका युग जीवनकी समस्त दिशाओंके लिए नयी सम्भावनाओंको लेकर उपस्थित होता है। इसमें भी कोई सन्देह नहीं। कोई कारण नहीं कि इस संक्रान्तिम जीवनके अधिक सन्तुलित स्वस्थ और सुन्दर भविष्यके उद्भवकी कल्पना करके विश्वास न किया जाये। 'आज यूरोपका आधुनिक युगकी उपलब्धियोंके प्रति विश्वास टूट रहा है। वास्तवमें एक लम्बे अरसेसे किसी-न-किसी रूपमें मानव व्यक्तिके अपनेपनको अस्वीकार किया जाता रहा है, जिसके कारण ऐसा भान पड़ने लगा है

कि योरोपमें पुनः धार्मिक श्रद्धा और विश्वासकी आस्था जाग उठी है। पर इस नवीन धार्मिक तथा आध्यात्मिक उत्साहमें बुद्धिवादी युगकी स्थापनाकी सम्भावना भ्रामक है और यदि प्रतिक्रियाके रूपमें सम्भव हो तो उसे एक नया दुर्भाग्य मानना चाहिए। निकोलस बरदीव, मार्टिन बूबर तथा लुइस मम्फोर्ड आदिने आचरणात्मक सांस्कृतिक तथा कलात्मक मूल्योंके लिए धार्मिक विश्वासको आधारके रूपमें व्यक्तिकी नयी स्वतन्त्रताकी स्थापना की है। इसी प्रकार फ्राम, मनहम तथा हेरॉल्ड लास्की आदि नव-मार्क्सवादियोंने व्यक्तिकी स्वतन्त्रताके लिए द्वन्द्वात्मक भौतिकवादकी नयी व्याख्या प्रस्तुत की है। इन प्रयत्नोंसे इतना तो सिद्ध होता है कि यह संक्रान्तिका युग किसी समन्वयकी खोज कर रहा है। वर्तमान विभिन्न विज्ञानोंकी नवीन खोज भी इस समन्वयकी दृष्टिको प्राप्त करनेमें सहायक हो रही है क्योंकि विज्ञानवादका वह युग अब बीत गया है जब उसकी दृष्टिमें भौतिक कार्य-कारणकी शृंखलामें मनुष्य असहाय रह गया था। आज जो वैज्ञानिक दृष्टि हमको जीवन और संस्कृति साहित्य तथा कला आदिके क्षेत्रमें प्राप्त हुई है वह समग्र और संश्लिष्ट बिम्ब उपस्थित कर सकेगी ऐसा विश्वास है। आजकी वैज्ञानिकता १९वीं शतीके विज्ञानवादसे भिन्न है और उसकी निरपेक्षता जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंके सन्तुलन तथा सामंजस्यमें अन्तर्निहित है। इसीलिए आज साहित्यके मूल्यांकनके लिए मानव-शास्त्र, समाज-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शन तथा संस्कृति आदिके व्यापक अध्ययनकी आवश्यकता है, जिससे मानव-जीवनकी सम्पूर्णताको दृष्टि-पथमें रखकर समीक्षात्मक मानदण्डकी स्थापना हो सके।

अभीतक यह मानकर चला गया है कि युग-युगमें जीवनके मूल्य बदल रहे हैं और उन्हींके अनुसार साहित्यके समीक्षात्मक मानदण्ड भी बदलते हैं। पर जैसा कि कहा गया है इस बातमें आंशिक सत्य ही है। जीवनका सामाजिक विकास हो या वैयक्तिक चेतनाका विकास हो, विच्छिन्न रूपसे उसकी सम्भावना नहीं मानी जा सकती। साहित्यकार जीवनके जिस

अंशका ग्रहण करता है इस प्रकार वह अपने-आप भावमें निम्मन असम्पृक्त अथवा निरपेक्ष नहीं होता। उस सामाजिक अथवा वैयक्तिक परिस्थिति (मानसिक) के पीछे समस्त आत्मिक (जिसे हम मानवताके अर्थमें भी ले सकते हैं) युग मूल संघर्ष उत्थान पतन आदर्श चिन्तन तथा अनुभूतिके इकाईका अपना क्रमिक इतिहास रहा है। इस प्रकार साहित्यकार अपनी व्यक्तिगत अनुभूतिसे एक ओर अपने वर्तमान समाजसे सम्बद्ध है और दूसरी ओर उसके-द्वारा अभिव्यक्त जीवन सम्पूर्ण ऐतिहासिक परम्पराकी कड़ीके रूपमें है। बाहरी-ओर व्यक्तिवादी अपने चिन्तनके युद्ध दाव अनुभूतिकी असम्पृक्त स्थिति या कल्पनाकी असम्बद्ध उड़ानके निरपेक्षसे-निरपेक्ष अथवा मानव इतिहासकी निरन्तर प्रवहमान धारासे असम्बद्ध करनेका दावा नहीं कर सकता। वास्तवमें सांस्कृतिक उपलब्धियोंके रूपमें प्राप्त मानव-जीवनके विभिन्न मूल्य युग-युगमें मूलतः परिवर्तित नहीं होते इसका कारण यही है कि मानव-जीवनने अविच्छिन्न रूपमें कोई समान आधार उसका ग्रहण किये है जो देश-कालकी समस्त परिस्थितियोंमें समान रूपसे अन्तर्निहित है। यह ठीक है कि ये सांस्कृतिक उपलब्धियाँ अर्थात् जीवनके मूल्योंकी प्राप्ति किसी क्रमिक उत्थान प्रसार नहीं होती। जो युग जीवनमें सन्तुलन तथा सामंजस्य स्थापित करनेके लिए जितना संघर्ष सहन करता है वह उतना ही अधिक सांस्कृतिक दृष्टिसे समुन्नत होता है। सांस्कृतिक उत्थानके बादके युग कभी-कभी बड़े ही हीन और साथे जान पड़ते हैं यह ठीक है कि विषमताकी दृष्टिसे सामनेके युग विकास करते भले ही जान पड़ें। बादमें वही सन्तुलन व्यक्ति तथा समाजके अधिक विषम स्तरपर स्थापित किया जाता है। जीवनकी विषमताकी दृष्टिसे असमान होते हुए भी न भिन्न सांस्कृतिक उत्थानके युग समान परम्पराके मूल्योंका प्रतिपादन करते हैं। साहित्य और संस्कृति इस दृष्टिसे समान हैं और साहित्यकी मान्यताओंके विषयमें भी यही कहा जा सकता है।

पर साहित्य जीवनकी अन्य उपलब्धियोंसे भिन्न भी है और यह स्थिति उसके मूल्यांकनके दृष्टिकोणको अधिक स्पष्ट कर देती है। समीक्षकके समक्ष यह प्रश्न बार-बार आता है कि अनेक पिछले युगोंका साहित्य जिसकी अन्य मान्यताएँ हमारे लिए महत्त्व नहीं रखतीं आज भी हमारे लिए क्या आकर्षणकी वस्तु है? पर साहित्य विशेषकर उच्च साहित्य जीवनको जिस समग्रतामें ग्रहण करता है अथवा पूर्णतासे अभिव्यक्त करता है उसकी अपनी-अपनी देश-कालगत निरपेक्ष स्थिति हो जाती है। युगीन जीवनकी सीमाएँ उसमें प्रत्यक्ष न हों ऐसी बात नहीं पर वह जीवनके मनुष्यत्वका जो आधार ग्रहण करता है, वह युग-युगके मानवमें एक प्रकारसे समान होता है और इसी मनुष्यत्वकी सम्पूर्णताको व्यापक अर्थोंमें सौन्दर्य बोध भी कह सकते हैं और यही नया सौन्दर्यबोध समीक्षाका स्थायी किन्तु निरन्तर विकासशील मानदण्ड बन सकता है, क्योंकि इसीसे प्रयोजन और प्रेषणीयताका सूक्ष्म समन्वय सम्भव हो सकता है।

सौन्दर्यबोधके प्रश्नका उठाना सम्भवतः यह भ्रम दे सकता है कि हम पिछले सौन्दर्यवादियोंकी पुनः स्थापना कर रहे हैं। इस प्रश्नका विस्तृत समाधान यहाँ सम्भव नहीं है। हम किसी ऐसे सौन्दर्यबोधको स्वीकार नहीं करते जिसका प्रभाव नितान्त वैयक्तिक अथवा असामाजिक हो। साहित्यिक अथवा कलात्मक सौन्दर्यबोध सांस्कृतिक मूल्योंके समान जीवनकी देश-कालकी बदलती हुई परिस्थितियोंमें मनुष्यत्वके व्यापक सामंजस्यके रूपमें विकसित होता है। साहित्यिक सौन्दर्यसाधनाके क्षेत्रमें अनुभूतिकी तीव्रता अभिव्यक्तिकी निर्वैयक्तिकता अथवा प्रभावकी अलौकिकताको हम वैयक्तिक अनुभूतिके विशिष्ट रूपों और सामाजिक जीवनके विशिष्ट मूल्योंके सन्दर्भमें ही ग्रहण कर सकते हैं अन्यथा नहीं। वास्तवमें साहित्य अन्तर और बाह्य व्यक्ति और समाजके समुचित सामंजस्यके साथ जीवनको ऐसी सम्पूर्णताके साथ ग्रहण करता है कि वह अपनी देश-कालगत सीमाओंके बावजूद भी सार्वदेशीय तथा सार्वकालीन बन जाता है। साहित्यिक

इस स्थायी तत्त्वको प्रतिपादित करनेके लिए समीक्षाकी अनेक दृष्टियोंके साथ सौन्दर्यबोधका यह स्थायी (स्थिरके अर्थमें नहीं) मानदण्ड किसी-न-किसी रूपमें अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा जो अपने आपमें असम्पृक्त निरपेक्ष न होकर, यदि मानवीय जीवनकी समस्त सीमाओंसे मर्यादित है, तो साथ ही युग-युगकी सांस्कृतिक उपलब्धियोंको अर्थवान भी करता है।

दायित्व और स्वातन्त्र्य : अविच्छिन्न मूल्य

हिन्दी-जगत्में साहित्यकारके वैयक्तिक स्वातन्त्र्य और सामाजिक दायित्वकी समस्यापर गम्भीर विचार विनिमय चलता रहा है। इसे वाद विवादके रूपमें नहीं लिया जा सकता क्योंकि इस समस्याको लेकर भिन्न-भिन्न विचारधाराओंके साहित्यकारोंने ईमानदारीके साथ अपने विचार प्रकट किये हैं और उदारतापूर्वक दूसरोंके विचारोंका स्वागत किया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रश्नपर उन्होंने मनन किया है और इससे उनके मनको मथा है। इस विचार-विनिमयकी दो सीमाएँ रही हैं। इनमें-से प्रथम वैयक्तिक स्वातन्त्र्यके उस पक्षकी है, जिसमें इस बातपर बल जान पड़ता है कि प्रधान समस्या साहित्यके शासनके अंकुशसे मुक्त होनेकी बात है। यद्यपि यह पक्ष भी मूल प्रश्नके अन्तर्गत है, पर इसपर अधिक बल डालनेसे बात अधिक स्पष्ट नहीं हो सकी है और भ्रमोंकी सम्भावना भी रही है।[1] दूसरी सीमा सामाजिक दायित्वके इस स्वरकी है जो एक प्रकारसे वैयक्तिक स्वतन्त्रताको किसी-न-किसी रूपमें सामाजिक दायित्वका विरोधी मानकर चलता है।[2] इन सीमा-रेखाओंके बीच अनेक विचारकोंने सामञ्जस्यकी स्थितिकी अपने-अपने ढंगसे व्याख्या की है।

---

१ इसी कारण कुछ विचारकोंने स्वतन्त्र रूपसे इस समस्याको स्वीकार नहीं किया है और कुछने इस प्रसंगमें बौद्धिक ईमानदारी, व्यक्तिगत धर्म भावना आदिकी चर्चा की है।

२ कुछको वैयक्तिक स्वतन्त्रताके रूपमें वैयक्तिक इच्छा और विलक्षणताकी धारा बनाना भ्रम है और किसीके अनुसार 'शिक्षा-दीक्षा तथा स्वार्थों और संस्कारोंसे संश्लिष्ट समाजमें रहनेवाले लेखकको ही निरपेक्ष स्वतन्त्रता कैसे मिल सकती है।'

इस स्थायी तत्त्वको प्रतिपादित करनेके लिए समीक्षाकी अनेक दृष्टियोंके साथ सौन्दर्यबोधका यह स्थायी (स्थिरके अर्थमें नहीं) मानदण्ड किसी-न-किसी रूपमें अवश्य स्वीकार करना होगा जो अपने आपमें असम्पृक्त निरपेक्ष न होकर, यदि मानवीय जीवनकी समस्त सीमाओंसे मर्यादित है तो साथ ही युग-युगकी सांस्कृतिक उपलब्धियोंको अर्थवान भी करता है।

दायित्व और स्वातन्त्र्य
अविच्छिन्न मूल्य

हिन्दी-जगत्‌में साहित्यकारके वैयक्तिक स्वातन्त्र्य और सामाजिक दायित्वकी समस्यापर गम्भीर विचार-विनिमय चलता रहा है। इसे वाद-विवादके रूपमें नहीं लिया जा सकता क्योंकि इस समस्याको लेकर भिन्न-भिन्न विचारधाराओंके साहित्यकारोंने ईमानदारीके साथ अपने विचार प्रकट किये हैं और उदारतापूर्वक दूसरोंके विचारोंका स्वागत किया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रश्नपर उन्होंने मनन किया है और इसने उनके मनको मथा है। इस विचार-विनिमयकी दो सीमाएँ रही हैं। इनमें-से प्रथम वैयक्तिक स्वातन्त्र्यके उस पक्षकी है, जिसमें इस बातपर बल बाम पड़ता है कि प्रधान समस्या साहित्यके शासनके अंकुशसे मुक्त होनेकी बात है। यद्यपि यह पक्ष भी मूल प्रश्नके अन्तर्गत है, पर इसपर अधिक बल होनेसे बात अधिक स्पष्ट नहीं हो सकी है और भ्रमोंकी सम्भावना भी रही है।[1] दूसरी सीमा सामाजिक दायित्वके इस स्वरकी है जो एक प्रकारसे वैयक्तिक स्वतन्त्रताको किसी-न-किसी रूपमें सामाजिक दायित्वका विरोधी मानकर चलता है।[2] इन सीमा-रेखाओंके बीच अनेक विचारकोंने साम्यकी स्थितिकी अपने-अपने ढंगसे व्याख्या की है।

१ इसी कारण कुछ विचारकोंने प्रकारान्तर रीतिसे इस समस्याको स्वीकार नहीं किया है और कुछने इस प्रसंगमें मौलिक अराजकता, व्यक्तिगत उच्छृंखलता आदिकी चर्चा की है।

२ कुछको वैयक्तिक स्वतन्त्रताके रूपमें वैयक्तिक इच्छा और विलक्षणताकी प्राप्ति समाजका मत है और किसीके अनुसार 'शिक्षा-दीक्षा तथा लालन-पालन और संस्कारोंसे संवलित समाजमें रहनेवाले लेखकको ही निरपेक्ष स्वतन्त्रता मिल सकती है।'

यहाँ किसी भी विचारसे सहमत या असहमत होनेके पूर्व कुछ मूल प्रश्नोंको उठाना अधिक आवश्यक होगा। वैसे किसी भी बातकी अपने अनुकूल अथवा प्रतिकूल व्याख्या करके उससे सहमत या असहमत होना सरल है। यहाँ इस प्रसंगको छोड़कर मौलिक (बेसिक) विचार-पद्धतिकी ओर ध्यान आकर्षित करनेका प्रयत्न महत्त्वपूर्ण है। प्रश्न है कि इस समस्याका उद्गम क्या है? आधुनिक व्यक्तिके सामने वह कौन सा प्रतिबन्ध है, कौन-सी बाधा है, कौन-सा संकट है जिसके कारण यह प्रश्न उपस्थित हुआ है। अथवा आज मानव किस मोड़पर आ उपस्थित हुआ है जिसके आगे बढ़नेके पहले नये ढंगसे सोच-विचार लेना अनिवार्य हो गया है। दूसरा प्रश्न है कि सामाजिक परिवेशमें वैयक्तिक-स्वातन्त्र्यका अर्थ क्या है? यह समस्याका वह रूप है जिसके अन्तर्गत समाज और व्यक्तिकी व्याख्या उनका सम्बन्ध और उनकी स्थिति आती है। अन्तिम प्रश्न है कि क्या साहित्यकारका व्यक्तित्व विशिष्ट है और क्या उसकी स्वतन्त्रता भिन्न परिस्थिति है। यहाँ साहित्यकारका उसकी सामाजिक स्थितिके अतिरिक्त रचनात्मक प्रक्रियामें भी स्वीकार करना होगा।[1]

वर्तमान युगमें वस्तुवादी धर्म, रूढ़िवादी भौतिकवाद तथा कल्पित समाजवाद तीनों ही मानव आस्थाको अन्धकारके कुहासेमें भटकानेमें असमर्थ सिद्ध हुए हैं। इन सबने अपने-अपने रूपमें मानव-जीवनको भाग्यवादी बनाया और शून्यगत निष्क्रियतामें दीक्षित किया है। विज्ञानकी भौतिकवादी दृष्टिने मनुष्यकी इस स्थितिमें बहुत बड़ा सहयोग दिया है। पिछले युगमें समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदिने भी मनुष्यको

---

१ आलोचनाके 'आलोचना-विशेषांक' (१ अ क) के सम्पादकीयमें प्रथम प्रश्न एक दूसरे रूपमें रखा गया था। आगे अंकमें (२ अ क) 'कलाकार-व्यक्ति और मानव-मूल्योंका विलय' शीर्षक प्रस्तुत प्रश्नके अनुसार इस समस्याको विस्तारसे लिया गया है।

विज्ञानने प्रथम निश्चित कार्य-कारणकी शृंखलाएँ स्थापित कर लिया। परिणाम भी स्पष्ट है कि इस युगमें मानव व्यक्तिके स्थानपर आर्थिक व्यक्ति (इकॉनॉमिक मैन) और सामूहिक व्यक्तिकी कल्पना प्रधान हो गयी है। १९ वीं शतीकी विकसित होती पूँजीवादी व्यवस्था और उन्नति करते विज्ञानवादने सब प्रकारसे यह सिद्ध किया है कि मनुष्य निरुपाय है और उसका भाग्य निश्चित है।[1] मानवकी समाजवादी विचारधाराने प्रारम्भमें मनुष्यकी इस स्थितिका विरोध किया था। वह मानवकी वैयक्तिक प्रतिष्ठाको स्थापित करनेकी भावनासे प्रेरित था। यही कारण है कि उसने हीगलकी विश्व आत्मा की दार्शनिक भावनाको छोड़कर फायरबाखके दर्शनको अपनाया था जिसके अनुसार मानव-व्यक्तित्व ही केन्द्र-बिन्दु है। इसी भावनासे प्रेरित होकर उसने कहा था 'मनुष्यका मूल मनुष्य स्वयं है।' प्रारम्भमें उसके मनमें स्पष्ट था कि साम्यवादी समाज केवल अधिक व्यापक पूँजीवाद है क्योंकि साम्यवादमें अर्थ-व्यवस्थाकी शक्तिको अस्वीकार नहीं किया गया है इसके विपरीत यह मनुष्यपर पूरा अधिकार प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार मानव व्यक्तित्वके मूल्यके विघटनका कारण बन जाता है। पूँजीवादी व्यवस्थाके अन्तर्गत जिस व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी माँग अधिकार साम्यने प्रस्तुत की थी उसमें वस्तुतः व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी सिद्धि नहीं वरन् मात्रा ही अधिक प्रत्यक्ष थी पर मार्क्सकी समाजवादी समाज-रचनामें प्रत्येक व्यक्ति सम्यक् अपनी स्वतन्त्रताकी सिद्धिका अनुभव कर सकता अर्थात् इस समाजमें प्रत्येक व्यक्तिका स्वतन्त्र विकास सभी व्यक्तियोंके स्वतन्त्र विकासके साथ सम्भव होगा यह कल्पना विद्यमान थी। परन्तु वस्तुतः इस विचार धाराकी परिणति समाजकी

---

१ दार्शनिक [illegible] दर्शन [illegible]। प्रथम विश्व युद्ध, [illegible] दर्शन, [illegible] तथा मनोविज्ञानी फ्रॉयडकी मान्यताओं और [illegible] प्रति-पादित हुआ था।

मशीन न व्यक्तिको पुर्जेके रूपमें प्रतिष्ठित करती है क्योंकि इसने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादकी ऐतिहासिक प्रक्रियाएँ समाजकी न केवल एक निश्चित दिशा स्वीकार कर ली वरन् मानव-भाग्यको निश्चित और निर्धारित मान लिया है।[1] इस प्रकार वर्तमान परिस्थितिमें प्रजातान्त्रिक तथा समाजवादी दोनों ही विचारधाराओंको स्वीकार करनेवाले देशोंमें समान रूपसे मानवव्यक्तित्वकी प्रतिष्ठापर संकट है।

देखनेमें तो जान पड़ता है कि प्रजातन्त्र देशोंमें व्यक्तिको मताधिकार की स्वतन्त्रता है, न्यायकी माँगकी स्वतन्त्रता है प्रकाशनकी स्वतन्त्रता है धार्मिक स्वतन्त्रता है व्यवसाय चुननेकी स्वतन्त्रता है और मत प्रकट करनेकी भी स्वतन्त्रता है और इन सबके साथ आवश्यकताओंकी सुविधाको भी स्वीकारा गया है। इन विभिन्न स्वतन्त्रताओंके बीच व्यक्तिकी आन्तरिक स्वतन्त्रताकी बात खो गयी है जान पड़ता है उसका व्यक्तित्व बिखर गया है। इसके अभावमें आपसी प्रतिद्वन्द्विताका ऐसा रूप विकसित होता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रताको (व्यक्तिवादी) अर्थात् अपनी मान्यताको अधिक-से-अधिक व्यापक बनाना चाहता है। अपने इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए वह दूसरोंको अधिक सुविधाओंकी सम्भावनाकी ओर आकर्षित करता है उनको अपनी स्थितिके विषयमें शंकित और सन्देहशील रखकर विशेष मानसिक स्थितिमें उत्तेजित कर उनपर अपना व्यक्तित्व आरोपित करनेका अवसर पा जाता है। इस प्रकार इन देशोंमें यह सम्भव हो जाता

---

१ इग्नाजियो सिलोनेकी समाजवादकी इस भावनामें भी यही ध्वनि होती है: "समाजवाद किसी एक दर्शनका दास नहीं था तो एक आस्था है। समाजवादी मूल्य स्थायी हैं, सम्प्रदायके मूल्यके भीतरसे इसे आँका नहीं जा सकता। सम्प्रदायका संगठन करके इसे बनाया जाता है, किन्तु मूल्योंके आधार पर सभ्यता तथा संस्कृतिका संगठन होता है जबकि जीवनकी सृष्टि होती है।"

है कि कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्ति अपनी महत्त्वाकांक्षा, अपने निहित स्वार्थों तथा व्यक्तिगत कल्पनाओंकी पूर्तिके लिए जनताको एक विशेष मानसिक तनावकी स्थितिमें रखकर उसपर अपने मनोनुकूल निर्णय थोप दिया करें और जनता उसे अपनी मूल्य-मर्यादा समझकर मरने-मारनेको तत्पर हो जाय। इससे कुछ ही भिन्न स्थिति साम्यवादी देशोंकी है जिनमें धार्मिक रूपके समान उद्देश्योंको आदर्श रूपमें सामने रखकर सामूहिक संरक्षणका सिद्धान्त स्वीकृत है। वहाँके व्यक्तिने अपनी समस्त आवश्यकताओंसे मुक्ति प्राप्त कर ली है और इसके लिए उसने अपने विचार-स्वातन्त्र्य, रुचि-स्वातन्त्र्य तथा निर्णय-स्वातन्त्र्यके विषयमें निर्विकल्प परिस्थिति स्वीकार कर ली है। इस प्रकार इन देशोंमें भी एक दूसरे रूपमें कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तियोंके हाथमें ही जनताका भाग्य आ जाता है जो अपने निर्णयके अनुसार उसके अनुशासनकी व्याख्या करनेमें प्रायः उसी प्रकार स्वतन्त्र हैं जिस प्रकार अपने मनोनुकूल उद्देश्यके लिए जनताका आवाहन कर सकते हैं।

ऐसी स्थितिमें संसारकी सारी संस्कृति आज इस युगमें कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों (शक्ति अथवा प्रतिभासम्पन्न) गुटों, इनके स्वार्थोंके संघर्षमें विशृंखल हो रही है जिससे मानवीय मूल्योंका विघटन अनिवार्य हो गया है। दो महायुद्धोंमें इसका प्रत्यक्ष और भयावह परिणाम भी सामने आ चुका है। परन्तु इस संक्रान्तिकालमें अनेक चिन्तकों, वैज्ञानिकों और साहित्यिकोंने इस विशृंखलता और विघटनका अनुभव किया है, उसके कारणोंपर विचार किया है और उसमें मानवताका समर्थन करनेके लिए चुनौती भी दी है। विज्ञानके क्षेत्रमें आधुनिक प्रयासों तथा अन्वेषणोंके आधारपर वैज्ञानिकोंने भौतिकवादको आज मान्यतावादी सम्प्रदायके रूपमें अन्धविश्वासकी कोटिमें स्थापित किया है और यह भौतिकवादका मूल स्वीकार किया है। उन्होंने मनुष्य-जीवनको पदार्थ और शक्तिकी यान्त्रिक क्रियाओंमें सीमित न देखकर आत्मिक सिद्धान्तकी प्रक्रियाके रूपमें स्वीकार

किया है।[१] कुछ विचारकोंने आधुनिक जीवनके आसन्न संकट तथा मूल्योंके विघटनका कारण मानवीय नैतिकताके चरम स्रोतके रूपमें ईश्वरकी अस्वीकृतिको माना है और नवीन मूल्यों तथा मानव-प्रतिष्ठाकी पुनःस्थापनाके लिए ईश्वरकी स्वीकृति अनिवार्य मानी है। परन्तु अब ईश्वरकी कल्पना मानवताकी आवश्यक परिणतिके रूपमें ही की गयी है जिससे व्यक्ति अपनी मूल्य-मर्यादाको ग्रहण करता है। संगठित धर्म और उसके नियामक ईश्वरकी स्थिति भाग्यवादी परम्पराके नामपर नैतिक निष्क्रियताको ही पोषित करती है जो आधुनिक मान्यतामें कम खतरनाक नहीं है। इतिहास से यह सिद्ध है कि इस प्रकारकी धार्मिक भावनाने मानव-प्रगतिको निरन्तर कुण्ठित किया है। परन्तु जिस प्रकार नवीन विज्ञान मानव-व्यक्तित्वकी स्वतन्त्र सत्ता प्रतिष्ठित करता है, उसी प्रकार नवीन धर्म मानवीय ईश्वरकी गत्यात्मक (डॉयनमिक) कल्पनासे अनुप्राणित है।[२] नव-मार्क्सवादियोंने समाजवादकी व्याख्याके अन्तर्गत समाजको स्वतः गत्यात्मक सत्यके रूपमें

---

१ डा० पी० एम० टॉमलेस जन्स मॉन्स, एरिक्सन रॉबर मिलिकन आदि अनेक वैज्ञानिकोंने यह सिद्ध किया है। जन्स मारने 'मिस्टीरियस युनिवर्स' में लिखा है "वास्तविकता एक अयान्त्रिक वास्तविकताकी ओर बढ़ रही है ब्रह्माण्ड मात्र एक बड़ी मशीनके बजाय एक महान विचार अधिक लगता है।" बर्ट्रेण्ड रसलने अपने 'फ्री मैन्स वर्शिप' में लिखा है "मनुष्यके लिए अनिवार्य है कि वह अपने मस्तिष्कको उस अपरिहार्य निर्देशसे मुक्त रखे जो उसके बाह्य जीवनका नियामक है।"

इनमें निकोलस बर्दीव मार्टिन बूबर तथा मेरिय मनि-जैसे वैयक्तिकतावादी (पर्सनलिस्ट) हैं। इनके अनुसार "ईश्वरका अस्तित्व व्यक्तिगत है और इस प्रकार ईश्वरकी प्रकृति तथा मनुष्यके मानसिक जीवनमें साम्य है।" मालिन्सा मालिनोवस्कीने अपनी पुस्तक 'फ्रीडम एण्ड' मिथिसिज़्म में स्वीकार किया है "आजकी समस्याओंमें स्वतन्त्रता सबसे अधिक गत्यात्मक धारणायें तथा अधिक समस्या है। स्वतन्त्रताकी व्यवस्था धर्मका मूलतत्त्व है और धर्म संगठित मूल्यमात्र।"

स्वीकार किया है और व्यक्तिकी प्रतिष्ठाकी रक्षा करनेका प्रयत्न भी किया है।[1]

जिस व्यक्तित्व (पर्सन) के मेधाच्छन्न होनेकी चर्चा ऊपर की गयी है और जिसके स्वातन्त्र्यकी आकांक्षाका निर्देश किया गया है आखिर उस वैयक्तिक स्वातन्त्र्यका अर्थ क्या है और सामाजिक परिवेशमें स्वातन्त्र्य दायित्वसे किस प्रकार अभिन्न है ? हमने अपनी पिछली विवेचनाके प्रसंगमें देखा था कि आधुनिक व्यवस्थाओंके अन्तर्गत मूलतः सामान्य और महत्त्वपूर्णका अन्तर विद्यमान है। इनमें कुछ व्यक्ति महत्त्वपूर्ण होकर सामान्य वर्गके प्रति अपने दायित्वका अनुभव करने लगते हैं। क्या इस प्रकार महत्त्वपूर्ण होना वैयक्तिक स्वातन्त्र्यके लिए बाधक हो सकता है ? क्या इस प्रकार व्यक्तित्वके सम्बन्धमें कम-बेश महत्त्वका प्रश्न अप्रासंगिक है ? मार्क्सवादके प्रसंगमें भी दायित्वका प्रश्न इस व्यक्तिके साथ उठाया गया है कि मानव-मूल्योंके सन्दर्भमें वह महत्त्वपूर्ण है और उसका व्यक्तित्व विशिष्ट है। उत्तर दिया जा सकता है कि महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्वोंकी कल्पना स्वाभाविक है। कुछ व्यक्ति अपने कार्योंसे विचारोंसे भावनाओंसे अधिक-से-अधिक लोगोंको प्रभावित करते हैं सामाजिक स्तरपर उनको अधिक दायित्वपूर्ण प्राणी माना जा सकता है। ऐसी स्थितिमें उनके व्यक्तित्व और उनकी स्वतन्त्रताकी बात भी प्रमुख हो जायगी। स्पष्ट ही दूसरे सामान्य जनोंके स्वातन्त्र्यकी बात गौण भी हो जायेगी जिसका परिणाम होगा कि महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व शासक, नियन्ता अथवा अधिनायकके रूपमें अपने स्वातन्त्र्यकी सार्थकता अपनी समाजके विशिष्ट स्थितिमें स्थापित करेगा समग्र समाजकी सन्निहिततामें नहीं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस सन्दर्भमें विशिष्ट व्यक्तित्वकी समस्या

---

१ कार्ल मानहम, हेराल्ड लॉस्की तथा जेम्स बर्नहम इत्यादि।

न होकर सामान्य मानवके व्यक्तित्वकी समस्या है। प्रत्येक व्यक्तित्व मानव व्यक्ति है। उसकी मर्यादा तथा प्रतिष्ठा उससे भिन्न अथवा विशिष्ट (महत्त्वपूर्णके अगम) कभी नहीं मानी जा सकती। अर्थात् दायित्वके प्रश्नपर विचार करते समय हम जिस सापेक्षताको आधार लेकर अधिनायक वैज्ञानिक चिन्तक अथवा साहित्यकारतक करते हैं उससे भिन्न सापेक्षताकी स्थिति किसान मजदूर अथवा सैनिककी भी नहीं मानी जा सकती। प्रत्येकका दायित्व अपना है पर उसका यह अपनापन समाज-सापेक्ष समान रूपसे है इस कारण सबका दायित्व सामाजिक ही है। क्योंकि दायित्वको स्वतंत्र व्यक्तिकी सामाजिक स्थिति स्वतः सिद्ध है इस कारण व्यक्तिके अपने दायित्वके साथ सामाजिक दायित्व समाहित है। वैसे यह सामान्य स्वीकृति की बात है कि व्यक्तिके सामने समाजकी जो प्रत्यक्ष इकाई रहती है, वह उसके कार्य-क्षेत्र और व्यवहार-क्षेत्रकी सीमा निर्धारित करती है। प्रत्यक्ष ही किसी व्यक्तिका दायित्व परिवारके प्रति है, किसीका नागरिक जीवनके प्रति किसीका समस्त राष्ट्र सापेक्ष है कभी उसकी भौगोलिक-ऐतिहासिक सांस्कृतिक इकाईके प्रति और कभी प्रधानतः उसकी सामाजिक इकाईके प्रति। फिर संसारकी वर्तमान स्थितिमें और भी अधिक सम्भावना है कि विचारकों वैज्ञानिकों तथा साहित्यिकोंका एक ऐसा भी वर्ग हो जो अपने दायित्वको सापेक्षताकी इन सीमाओंका अतिक्रमण कर समस्त संसारकी मानवतामें अपनी सीमा निर्धारित करे और यह मानवताकी सीमा कभी संसार-व्यापी समाजके संगठनके रूपमें हो सकती है और कभी मानवीय मूल्योंपर आधारित और मर्यादित हो सकती है।

प्रश्न है कि इस प्रकार दायित्वके सीमा विस्तारके साथ क्या किसीके महत्त्वको स्वीकार करनेकी अपेक्षा है। क्या यह आवश्यक है अथवा उचित है कि जिस व्यक्तिके दायित्वकी जितनी बड़ी सीमा है उतना ही उसके दायित्वका महत्त्वपूर्ण माना जाय? यहाँ यह कहना भी अनिवार्य है कि इस प्रकार उसके व्यक्तित्वकी विशिष्ट स्थिति स्वयंसिद्ध हो जायगी

और यह स्पष्ट है कि दायित्वके साथ अधिकारोंका प्रश्न सन्निहित है। ऊपरसे यह सब बहुत सीधा जान पड़ता है। जिस व्यक्तिके दायित्वकी सीमा विस्तृत है, वह अपने-आप अधिकारोंके क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण है। स्टैलिन रूजवेल्ट तथा चर्चिल आदि ऐसे व्यक्तित्व रहे हैं जिनके ऊपर दायित्वका अत्यधिक भार रहा है और उसके अनुरूप उनको महत्त्व भी प्राप्त था अर्थात् अधिकार प्राप्त थे किसी भी रूपमें क्यों न हों। इस साधारण बातमें बहुत बड़ा अन्तर्विरोध है जिसके कारण हमारी व्याख्या-पद्धतिमें बहुत बड़ा अन्तर पड़ जाता है और इसके परिणामोंका संकेत दिया जा चुका है।

इस प्रसंग दूसरे पक्षोंपर विचार करनेसे पहले यह निश्चित कर लेना है कि हम व्यक्तिको क्या समझते हैं समाजको क्या मानते हैं। यदि समाज-शास्त्रके इस पुराने विचारको किसी भी रूपमें स्वीकार किया जाय कि मनुष्य (व्यक्ति) अपने जंगली और बर्बर रूपमें अपनी-अपनी सीमाओंके कारण समाज अर्थात् मनुष्योंके समूहमें संगठित हुआ है तब इस निष्पत्तिमें कोई कठिनाई न होगी। क्योंकि इस स्थितिमें समाज ऐसा ढाँचा है जिसमें वर्तमान व्यक्ति अपने हितों (स्वार्थों) के लिए एक-दूसरेके साथ संगठित हुए हैं और इसमें जो जितनी शक्ति प्रभाव प्रतिभाको प्राप्त कर सकेगा वह अपने-आप उस सीमा तक सामाजिक जीवनको शासित मर्यादित तथा नियन्त्रित करेगा। साथ ही इस प्रकारके समाजके विकासमें अपनी इच्छाको महत्त्व देनेवाले राजाओं अपनी संगठित शक्तिके बलपर अधिनायकत्व करनेवाले डिक्टेटरों और पार्टीका संगठन करके अपनी नीति चलानेवाले नेताओंमें मौलिक अन्तर नहीं। ऐसा नहीं कि उनकी कार्यविधिमें कोई भेद नहीं होता या उनके व्यक्तित्वकी गठनमें अन्तर नहीं केवल मानवीय मूल्योंके प्रति (दायित्व और स्वातन्त्र्य) अपनी समस्त घोषणाओंके बावजूद उनका समान दृष्टिकोण है। अर्थात् उनके लिए समस्त समाज शासित मर्यादित और नियन्त्रित करनेकी वस्तु है जिसके मूलमें वही समाजको विभिन्न व्यक्तियोंके समूह अथवा संगठनके रूपमें समझनेकी वृत्ति मौजूद है।

किन्तु आधुनिक मतके अनुसार समाज स्वतः मानव-विकास और संस्कृतिकी उपलब्धि है जिसमें मनुष्य अपने समस्त प्रयत्नोंको अपनी (मानव) पूर्णताकी ओर प्रेरित करता है। समाज व्यक्तिकी विवश स्वीकृति नहीं वरन् अपनी ही पूर्णताकी प्रक्रिया है। ऐसी स्थितिमें व्यक्ति और समाजका सम्बन्ध सदस्य और समूहका नहीं रह जाता वह अंग और अंगीका कहा जा सकता है। यह अंग-अंगीका रूपक मशीन और उसके पुर्जों अथवा शरीर और उसके अवयवोंसे नहीं लिया जा सकता क्योंकि यह प्रक्रिया सक्रिय सचेतन तथा निश्चयसे समन्वित है। एक सीमा तक इसका रूपक विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों तथा मानसिक प्रक्रियासे लिया जा सकता है। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियका मानसिक स्थितिके संयोजनमें जितना हाथ रहता है उतना ही उसकी (मानसकी) प्रक्रियामें उसका स्थान होता है। यदि हमारी मानसिक स्थिति दृश्य श्रव्य घ्राण स्वाद तथा स्पर्श आदिसे संगठित है तो विचार कल्पना आदि उसकी प्रक्रियाओंमें ज्ञानेन्द्रियोंकी स्थिति भी स्वीकृत है। फिर भी इस रूपकको अधिक दूर तक नहीं ले जाया जा सकता। वस्तुतः समाजकी कल्पना बहुत-कुछ मानवताके रूपमें की जाती है क्योंकि इस समाजकी भावना किसी देश-कालगत सीमामें आबद्ध नहीं वर्गोंमें विभाजित नहीं। यह समाज मानव-इतिहासकी समस्त परम्पराओंमें विकसित होते हुए वर्षोंमें परिव्याप्त है इस समाजमें एक हजार वर्ष पहलेके व्यक्तिका योग उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना आजके किसी व्यक्तिका अथवा एक हजार वर्ष बादके व्यक्तिका। समाजकी साधारण भावनाके साथ देश-कालगत मनुष्योंके वर्गोंकी संगठित समाजकी अथवा उद्देश्य-सिद्धिके लिए किन्हीं कार्योंके समूहकी कल्पना प्रधान हो जाती है इस कारण समाजकी व्यापक भावनाको मानवताकी संज्ञा दी जाती है। अन्यथा मानवता सक्रिय गतिशील इच्छा-समन्वित समाजका ही रूप है। इधर प्रायः समाजको गतिहीन समूह अथवा प्राणहीन मशीनके रूपमें समझनेकी प्रवृत्ति रही है और इसलिए समाजको इस

भावनाको व्यक्त करनेके लिए मानवताका प्रयोग अधिक संगत माना गया है।

इस समाजमें जिसे मानव-इतिहासमें क्रमशः मानवताकी संज्ञा प्राप्त हुई है व्यक्तिकी एक निश्चित स्थिति है। ऊपरकी विवेचनासे प्रकाशमें व्यक्ति और समाजका यह सम्बन्ध भिन्न रूप ग्रहण कर सकता है। यह सम्बन्ध अभिन्न है आन्तरिक (इण्टिग्रल) है अर्थात् समाजके बिना व्यक्तिकी कल्पना नहीं की जा सकती और व्यक्तिकी स्थिति स्वीकार किये बिना समाजकी समग्रता (टोटलिटी) खण्डित होती है। पशु अलग-अलग (इण्डिविजुअल्स) होते हैं पर उनको नामवाचक संज्ञा से अभिहित नहीं किया जाता और उनका एक समूह होता है जिसे जातिवाचकके अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है। उनका न नाम है न समाज। कारण स्पष्ट है पशुमें संख्या होती है व्यक्तित्व नहीं। इसीसे उनकी जातियाँ होती हैं समाज नहीं। सहस्रों वर्षके इतिहासमें पशु अपनी जातियोंमें ज्यों-का-त्यों चला आया है उनकी नस्लोंमें अभिवृद्धि अवश्य हुई है लेकिन उनका पशुत्व वैसा-का-वैसा है उनके विकासकी कोई सम्भावना नहीं रही।[1] मनुष्य पशुसे भिन्न है क्योंकि उसमें व्यक्तित्व है अर्थात् उसमें क्रिया (ऐक्शन) और इच्छा (इन्टेन्शन) के साथ उद्देश्योन्मुखता है और इस व्यक्तित्वके साथ जब उसकी (मनुष्य) जातिका प्रश्न आता है तो उसकी जातीयता जाति-मात्र न रहकर समाजके विकासमें परिलक्षित होती है। मौलिक प्रयोजन (पर्पज) के कारण उसका समाज गतिशील रहा है तत्सम्बन्धी मूल्योंका विकास हुआ है। मनुष्य-समाजकी भावना (मूलतः एक होते हुए भी) बदलती रही है और साथ ही उसका व्यक्तित्व समाजकी समष्टिगत भावनासे संगठित होकर

---

१ मैक्समो दुर्खेमने अपनी पुस्तक 'सूइसाइड' में विस्तारसे इस प्रकार विचार किया है।

प्रत्येक युगमें समाजको अग्रसर करनेमें प्रयत्नशील रहा है। कहा गया है कि व्यक्तित्व समाजसे भिन्न नहीं। पर यह इस तरह नहीं है कि प्रत्येक पशु अपनी जातिके सामान्य स्वभावसे भिन्न नहीं होता। वस्तुतः जिस प्रकार मनुष्य संख्या-मात्र नहीं है उसी प्रकार समाज जाति-मात्र नहीं है।

मानवताके निरन्तर प्रवाहके जिस सामाजिक देश-कालमें व्यक्ति जन्म लेता है पलता है बड़ा होता है शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करता है संस्कारोंमें दीक्षित होता है पक्षपातों तथा पूर्वग्रहोंसे सम्बद्ध होता है उसका उसके व्यक्तित्वके निर्माणमें बड़ा हाथ है। परन्तु यहाँ यह स्मरणीय है कि समाज देश-कालकी अविराम गत्यात्मक (डायनमिक) है अर्थात् मानवताके गतिशील विकासोन्मुखी मूल्योंसे समन्वित है और व्यक्तिके व्यक्तित्वमें अन्य समस्त बातोंके बावजूद इच्छा-शक्तिकी स्वतन्त्रता (फ्री विल) स्वीकृत है। सामाजिक मूल्योंकी गत्यात्मकता इसी स्वतन्त्र इच्छा-शक्तिके कारण है। यहाँ मूल्योंके गत्यात्मक होनेका अर्थ यह नहीं है कि मानव समाज सदा नये और भिन्न मूल्योंकी स्थापना करता है। इससे तो यही सिद्ध होगा कि देश-कालगत विभिन्न समाजोंकी अलग सत्ता है। जिस प्रकार मानव-समाज अविच्छिन्न है चाहे कितना ही विस्तार और रूपोंमें विकसित और प्रसारित रहे उसी प्रकार मानव-मूल्योंका मूलभूत आधार एक है यद्यपि व विकसित होते रहे हैं। अतः समाजकी प्रक्रियामें अपने व्यक्तित्वको संगठित करके भी व्यक्ति समाजको पुनः नयी उपलब्धियोंके लिए सक्रिय करता है।

इस प्रकार समाज और व्यक्तिके सक्रिय गत्यात्मक सम्बन्धकी स्वीकृतिके पश्चात् हम पुनः इस प्रश्नकी ओर वापस आते हैं कि व्यक्तिका दायित्व उसके महत्त्वका निर्णायक हो अर्थात् उसके अधिकारोंकी सीमा दायित्वके अनुसार हो। जो मानव व्यक्तित्वको सामाजिक परिस्थितियोंकी

उत्पत्ति मानकर चलते हैं उनके लिए व्यक्तिके दायित्वका प्रश्न भी गौण होना चाहिए, क्योंकि ऐसी स्थितिमें यह तो समाजका दायित्व होगा कि वह व्यक्तिका संगठन समुचित रूपसे करे। यही कारण है कि समाजको समुदायका विकसित रूप माननेवाले विचारक आगे-चलकर व्यक्तिको अपनी आवश्यकताके अनुसार ढालनेका जिम्मा समाजको इस सीमा तक दे देना चाहते हैं कि इस परिस्थितिमें व्यक्तिके दायित्वका प्रश्न इच्छा क्रिया तथा उद्देश्यमें-से किसीके सम्बन्धमें नहीं उठता। हमने समाजको संघटन न मानकर मानव-मूल्योंका वाहक माना है, इस कारण उसका दायित्व व्यक्तिकी अलग सत्ताको स्वीकार कर उसको शासित तथा संयोजित करनेका नहीं हो सकता। परन्तु जब समाज-द्वारा इस प्रकारका दायित्व वहन किया जाता है उस स्थितिमें कोई समर्थ शासक वर्गोंको संघटित करनेवाला अभिभावक अथवा भावावेशमें लाकर जनताका प्रतिनिधित्व करनेवाला नेता इस दायित्वको अपने हाथमें ले लेता है। मनुष्यके समूह-रूपमें समाजके दायित्वका अर्थ और क्या हो सकता है क्योंकि यदि यह कल्पना की जाये कि प्रत्येक व्यक्ति समाजके रूपमें स्वयं इस दायित्वको ग्रहण करता है तब तो यह व्यक्तिका अपना स्वीकार किया हुआ दायित्व होगा और किसी सामाजिक अनुशासन तथा नियन्त्रणका प्रश्न इस प्रसंगमें उठता ही नहीं। लेकिन यह तभी सम्भव होगा जब समाजकी उपर्युक्त तत्त्वात्मक व्याख्या की जाये उसमें समाजके इस दायित्वका अर्थ मनुष्यके व्यक्तित्वपर ही प्रतिफलित होगा क्योंकि यहाँ सामाजिक समष्टि (सोशल टोटैलिटी) का व्यक्तित्वोंकी सक्रियताके अर्थ-भावमें स्वीकार किया गया है।

अतएव सामाजिक दायित्वका अर्थ यह नहीं है कि समाजका व्यक्तिके निर्माणके प्रति क्या दृष्टिकोण है वरन् यह है कि व्यक्ति समाजको मूल्यगत

१ यहाँ इन समाजका संगठन, विशेषकर आर्थिक व्यवस्थाका संगठन माना जायेगा।

उपलब्धियोंके प्रति क्या भाव रखता है या रखना चाहता है। फिर इस लिए भी यह व्यक्तिका दायित्व है कि वह अपनी स्व-प्रकृति तथा व्यक्तित्व में स्वतन्त्रतापूर्वक अपने उद्देश्यके अनुकूल निश्चय तथा निर्णय करके कार्य करनेवाला प्राणी है। इसी तर्क-पद्धतिसे यह अपने-आप सिद्ध हो जाता है कि दायित्व आरोपित कर्तव्य नहीं है। हमको यह करना है ऐसा करना ही है, वह चाहे समाजके हितके लिए ही क्यों न हो—दायित्व नहीं है विवशता है नियन्त्रण है। इस प्रकार सामाजिक दायित्वका अर्थ है वैयक्तिक दायित्व जिसके अन्तर्गत सामाजिक सापेक्षता निहित है। कहा गया है कि समाजके रूपमें व्यक्ति कभी परिवारके प्रति कभी ग्राम-नगरके प्रति कभी जाति-बिरादरीके प्रति कभी धार्मिक सम्प्रदायके प्रति और कभी राष्ट्रके प्रति अपने दायित्वकी बात सोचता है। पर यह परिवार इसलिए है और इसी सीमा तक है कि वह हमारा है अर्थात् व्यक्तित्व भिन्न उसकी स्वीकृति नहीं। इस भावात्मक अभिन्नताके बिना व्यक्तिके लिए दायित्वका निर्वाह आरोपित रह जायगा और इस आरोपित दायित्वके मध्य परिवार अर्थमें ही बचता रहे पर पारिवारिकताकी कल्पना असम्भव हो जायेगी। यही बात समाजके प्रत्येक रूपके विषयमें समान रूपसे लागू है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपनी उपलब्धियोंसे सामाजिक उपलब्धियोंको भिन्न नहीं मानता साधारण स्तरपर अपने हितों और स्वार्थोंमें सामाजिक हितको अलग नहीं मान पाता। व्यक्तिकी प्रगति इसीमें है कि वह सामाजिक समष्टिको गतिशील कर सके उसका कल्याण यही है कि वह सामाजिक कल्याणमें योग-दान दे सके। साथ ही उसको इसका अनुभव भी न हो कि वह कुछ दे रहा है या पा रहा है क्योंकि समाज उससे अविच्छिन्न है और वह समाजकी व्यक्ता है।

पुनः इस प्रसंगपर एक दूसरे दृष्टिकोणसे विचार करना भी अनिवार्य है। दायित्वका प्रश्न व्यक्तित्वका इसीलिए है कि सामाजिक चेतनामें वह सचेष्ट इकाईके रूपमें उद्देश्यकी आकांक्षा करनेमें समर्थ है। सामाजिक

अपनेमें दायित्व मात्र उपलब्धि है उस मर्यादाकी, जो अपने आपमें काम करनेकी अपेक्षा स्थिति ही अधिक है। उदाहरणके लिए साहचर्य प्रेम सहानुभूति अथवा सौम्य आदि ऐसे किसी भी दायित्वको जो सामाजिक कहा जा सकता है वास्तवमें मूल्य ही माना जाना चाहिए जो व्यक्तिकी किसी अपराधकी अपने-आपमें साधक प्रक्रिया है। जबतक दायित्व व्यक्तिके लिए समाजको देनेकी बात है अथवा समाजके लिए पानेकी बात है तबतक यह उसकी चेतन प्रक्रिया न होकर काम-परिणामके रूपमें अधिक संगत जान पड़ता है। यदि व्यक्ति सहानुभूति रखना समाजके प्रति अपना दायित्व मानता है अथवा समाज व्यक्तिसे सहानुभूतिकी माँग दायित्व रूपमें करता है तो ऐसा जान पड़ता है कि सहानुभूति ऐसा कृत्य है जो व्यक्तिको करना है अर्थात् यह कुछ ऐसा है जो उससे अलग है। इस प्रकारका दायित्व व्यक्तिकी स्वकीय इच्छाका प्रतिफलन न होकर आरोपित कार्यकी दिशाका संकेत-मात्र देता है। वस्तुतः सहानुभूति प्रेम या कल्याणकी भावना जब व्यक्तिका स्वभाव बन सके तभी वह उसके दायित्वका सहज रूप है। इस रूपमें दायित्व उसके व्यक्तित्वकी स्वतन्त्र अभिव्यक्ति है क्योंकि उसकी अपनी स्वीकृति है। इसका अनुभव वह अलग आरोपित वस्तुके समान नहीं करता वह तो उसकी अपनी प्रकृति अपने स्वरूपका अंग बन जाता है।

यहाँ दायित्वका प्रश्न एक ऐसी सीमा निर्धारित कर देता है जहाँ वह व्यक्तिके व्यक्तित्वका अंग ही नहीं बन जाता वरन् उसके स्वातन्त्र्यकी व्याख्या भी करता है। व्यक्तित्व यदि निर्माणकी स्थिति है तो दायित्व उस प्रक्रियाकी दिशा है। पर इस दिशाका निर्धारण कौन करता ? इस निर्माणकी प्रक्रियाका साक्षी कौन है, उसकी सापेक्षता क्या है ? इन प्रश्नोंका उत्तर ऊपरकी व्याख्यामें अन्तर्निहित है। इस निर्माणकी प्रक्रियाकी सापेक्षता निश्चय ही मानवताके रूपमें जिस समाजकी व्याख्या की गयी है, उसीसे निर्धारित होती रही है क्योंकि मानव-मूल्योंकी उपलब्धि इसका उद्देश्य है।

अपनी निर्णय करनेकी विवेक-शक्तिके कारण व्यक्ति इसका साक्षी है। परन्तु दायित्व जब स्वधर्म है, तब उसका निर्धारण 'स्व' (पर्सन) की अपनी प्रेरणा करेगी किसी बाहरी आधारकी अपेक्षा उसे नहीं होगी। यह स्वधर्म वैयक्तिक स्वातन्त्र्यके रूपमें उद्घोषित होगा। इस विवेक-स्वातन्त्र्यसे ही व्यक्ति अपनी परम्परा अपने पक्षपातों पूर्वग्रहोंके बीच अपने दायित्व (स्वधर्मके रूपमें) के वास्तविक अर्थको ग्रहण करता है। यहाँ स्वातन्त्र्यका अर्थ है कि व्यक्ति अपने व्यक्तित्वमें अन्तर्निहित मानवी-यताको (मानव-मूल्योंके अर्थमें) समस्त संस्कारोंसे मुक्त होकर अवधान् करता है और चूँकि उसका व्यक्ति समस्त सामाजिक व्यक्तित्वोंकी समष्टिमें ही गतिशील है इस कारण इस स्वातन्त्र्यके अन्तर्गत अन्य सभी व्यक्तियोंके स्वातन्त्र्यका भाव समन्वित है। प्रत्येक व्यक्तिका स्वातन्त्र्य दूसरेके वैयक्तिक स्वातन्त्र्यसे इस प्रकार बाधित न होकर उसका पूरक ही सिद्ध होता है और स्वातन्त्र्य व्यक्तिके अपने स्वातन्त्र्यके साथ दूसरोंकी वैयक्तिक स्वतन्त्रताकी स्वीकृति भी है। इस प्रकार आन्तरिक स्वधर्मको अनुभूत सत्यके रूपमें स्वातन्त्र्य ही उपलब्ध कराता है इस कारण इसे मौलिक मानवीय प्रतिमान (अर्थात् समाजके मूल्यात्मक प्रतिमान) के रूपमें स्वीकार किया जा सकता है।

इस बातको अधिक स्पष्ट रूपमें सामने रखना अपेक्षित है। अनेक बार व्यक्तिवादी (इण्डिविजुअलिस्टिक) स्वतन्त्रता और वैयक्तिक (पर्सनल) स्वतन्त्रताको समान अर्थमें समझनेका भ्रम किया जाता है।[1]

१ मरेके अनुसार "व्यक्तिवाद (इण्डिविजुअलिज्म) एक सीमित मनःप्रवृत्ति है या अधुरतम असामाजिक, अन्य व्यक्तियोंसे या एक विशेष सामाजिक स्थितिके प्रति मानसिक प्रतिक्रियाके रूपमें हमारे व्यक्तित्वमें उद्भूत हो जाती है और हमारे अपने स्वार्थों और सीमाओंकी ओर उन्मुख करती है। वैयक्तिकता (पर्सनलिज्म) व्यक्तित्व आध्यात्मिक धर्म है, विकासोन्मुखी सम्भावनात्मक वृत्ति है जो स्थायी व्यापक मानवीय मूल्योंको अपनी सम्पूर्ण पूर्णतायें पहचान कर, उन्हें दायित्वके रूपमें स्वीकार करके अपने व्यवहारको मर्यादित करती है।"

पूँजीवादी व्यवस्थाके अन्तर्गत व्यक्तिवादी स्वतन्त्रताका विकास हुआ था जिसके परिणामस्वरूप व्यक्तिगत महत्त्वका आग्रह बढ़ा है। इस स्वतन्त्रतामें दूसरे अनेक व्यक्तियोंकी स्वतन्त्रताका अपहरण भी सम्मिलित था। नये प्रतिमानके रूपमें स्वीकृत वैयक्तिक स्वतन्त्रताका अर्थ है समाजके प्रत्येक व्यक्तिकी मुक्ति। इस स्थितिमें प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियोंकी मुक्तिमें अपनी मुक्तिको पा सकेगा। ऐसे समाजमें प्रत्येक व्यक्ति यह प्रयत्न करनेके बजाय कि दूसरे व्यक्ति उसका मत स्वीकार करें उसके विचारको ग्रहण करें उसका अनुकरण करें अथवा उसके प्रभावमें रहें उसका प्रयत्न होगा कि प्रत्येक दूसरा व्यक्ति स्वयं स्वतन्त्र रूपसे सोच-समझ सके निश्चय ले सके और स्वयं अपना स्वधर्म निर्धारित करनेमें समर्थ हो सके। व्यक्ति अपने विचारमें स्वतन्त्र है उसको प्रकट करनेमें उस सीमा तक स्वतन्त्र रहेगा जिस सीमा तक दूसरोंकी विचार करनेकी पद्धतिको कुण्ठित न करे। पर कार्यरूपमें परिणत करनेके पूर्व उसे दूसरोंकी इच्छाओं आकांक्षाओं विचारों तथा भावनाओंका समादर करना होगा क्योंकि उसे दूसरोंके व्यक्तित्वके स्वातन्त्र्यकी प्रतिष्ठा करनी है। वस्तुतः जिस प्रगतिशील समाजकी स्थापना की गयी है उसमें समाहित भावनाके साथ वैयक्तिक स्वातन्त्र्यकी यह निर्बाध स्थिति सहज है क्योंकि दायित्व (स्वधर्म)के रूपमें यह स्वयं मानवताका मौलिक प्रतिमान है जिसमें विरोधकी सम्भावना नहीं है। इस प्रकार दायित्व और स्वातन्त्र्य एक ही प्रक्रियाकी (अथवा मूल्यकी) दो स्थितियाँ मात्र हैं और उनके साथ 'वैयक्तिक' लगाना उतना ही निरर्थक है जितना 'सामाजिक'। ये एक-दूसरेसे अविच्छिन्न मूल्य हैं।

अन्तमें साहित्यकारके दायित्वका प्रश्न आता है और इसके साथ ही उसके व्यक्तित्व तथा स्वातन्त्र्यका प्रश्न भी सन्निहित है। पूछा जा सकता है कि साहित्यकारके प्रश्नको इस प्रकार अलग क्यों रखा गया है। दायित्वके रूपमें अथवा व्यक्तित्वकी दृष्टिसे उसका विशिष्ट महत्त्व क्या है? उसके

महत्त्वके लिए तर्क देना कि साहित्यका प्रभाव-क्षेत्र विस्तृत है अधिक तर्कसंगत नहीं है। इस दृष्टिसे अन्य अनेक व्यक्ति हैं (धार्मिक सामाजिक तथा राजनीतिक नेता) जो बहुत बड़े जन-समाजको प्रभावित और नियन्त्रित करते हैं। पर इस प्रकारकी व्यक्तिगत महत्ताके विषयमें काफ़ी कहा जा चुका है। सामाजिक जीवनके अर्थमें साहित्यकारके व्यक्तित्वकी समस्या व्यक्तिमात्रकी समस्यासे भिन्न नहीं मानी जा सकती। वह अपनी प्रकृतिसे ही व्यक्तिवादी महत्त्वाकांक्षासे पीड़ित नहीं होता इस कारण उसमें शासक अधिनायक अथवा नियन्ता होनेकी सम्भावनाएँ नहीं रहतीं। पर साथ ही उसकी स्थिति विशिष्ट अवश्य है और उसके व्यक्तित्वकी यह विशेषता उसकी रचनात्मक प्रक्रियाकी है। वह सामाजिक जीवनका भोक्ता है, साथ ही उसका स्रष्टा भी है और यहींसे प्रश्न एक नवीन मोड़ लेता है। इसी स्थलसे उसके दायित्वकी व्यंजना और उसके स्वातन्त्र्यका अथ किंचित् अवस्था है।

कहा गया है कि व्यक्ति महत्त्वपूर्ण होकर (शक्ति प्रभाव अथवा प्रतिभाकी दृष्टिसे) समस्त समाजको शासित मर्यादित अथवा नियन्त्रित करनेका अधिकार चाहते हैं। वे वस्तुतः विवेक तथा संयमसे हीन ही रहते हैं क्योंकि उनके लिए विधि-विधानोंका महत्त्व है उनमें अपने मतको प्रतिपादित करनेका आग्रह होता है और दूसरोंको मनोनुकूल प्रेरित करनेकी कांक्षा विद्यमान रहती है। परन्तु साहित्यकार अपनी रचनात्मक प्रक्रियामें इस प्रकारके पक्षपातोंसे सहज ही अलग रह सकता है क्योंकि वह समस्त जीवन (मानवता) के प्रति आस्थावान् है। वह अपने रचनात्मक क्षणोंमें यह नहीं सोचता कि उसका क्या मत है उसका क्या पक्ष है उसका क्या वाद है। वह बुद्धिसे अधिक अपने आन्तरिक विवेकसे जीवनको ग्रहण करता है। यदि वह अपनी आन्तरिक संवेदनासे हटकर बौद्धिक स्तरपर वस्तु-स्थिति मात्रको ग्रहण करेगा तो वह जीवनको उपलब्धिके रूपमें प्राप्त न करके अपने सारे पक्षपातों तथा पूर्वग्रहोंके व्यापन

करनेके लिए विवश हो जाता है। यह सर्जनाकी प्रकृतिका सत्य है कि साहित्यकार अपने जीवनके स्थानपर दूसरोंके जीवनमें जीवित रहता है। वह वस्तुतः अपनी वैयक्तिक सीमामें समस्त समाजको आत्मसात् करनेकी प्रक्रियामें ही साहित्य-सर्जन करता है।

ऊपर कहा गया है कि व्यक्ति और समाज एक ही गत्यात्मक प्रक्रियाके रूप हैं इस कारण उनकी उपलब्धियाँ एक हैं उनके मूल्य एक हैं। साहित्यकार सामाजिक जीवनकी इसी गतिको ग्रहण करता है इस कारण वह मानवके दायित्व अथवा स्वातन्त्र्य-सम्बन्धी मौलिक प्रतिमानको अति व्यापक महत्त्व देगा। यह स्थिति उसके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि साहित्य मनुष्यके सांस्कृतिक मूल्योंकी उपलब्धिके रूपमें स्वीकार किया जाता है। साहित्यकार उसके प्रति तभी ईमानदार रह सकता है, जब वह स्वतन्त्र विवेक अर्थात् आन्तरिक संयमसे अपने दायित्वकी जाँच करे। इस स्थितिमें स्पष्ट दायित्व (साहित्यिक) उसकी सृजनात्मक प्रक्रियाका अंग बन जायगा। आत्मोपलब्धिके बिना प्रक्रियाका अंग कुछ नहीं बन सकता। ऐसी स्थितिमें साहित्यकारके लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह समस्त सामाजिक दायित्वको आत्मोपलब्धिके रूपमें ग्रहण करे।

वाल्मीकि कालिदास होमर, दांते शेक्सपियर मिल्टन तुलसी या सूर किसीको भी लें ये अपनी अपनी सामाजिक परिस्थितिमें जीते हुए भी अपनी रचना प्रक्रियामें अपने सीमित संस्कारों अनुराग-विराग ईर्ष्या-द्वेषसे ऊपर उठकर ही अपने युगकी सांस्कृतिक उपलब्धियोंके अनुकूल मानव हृदयका चित्रण कर सके हैं। मानव-मूल्यके इसी महत्त्वके कारण आज भी उनके साहित्यमें हमारे लिए आकर्षण है। ऐसा नहीं है कि समस्त साहित्य और सारे साहित्यकार अपने पक्षपातों और पूर्वग्रहोंसे मुक्त हो जाते हैं। पर जब सम्प्रदायपर लिखा गया राजाश्रयमें राजाकी प्रशंसामें तथा भूस्वामियोंकी नानाविधियों और उद्दीपनापर लिखा गया और विभिन्न

मतवादोंके प्रचारके लिए लिखा गया साहित्य वस्तुतः साहित्यकी संज्ञाका अधिकारी नहीं रहा है। इसी प्रकार कल्पनाको उद्दीप्त करनेवाला और व्यक्तिगत वासनाओंको उत्तेजित करनेवाला साहित्य भी साहित्यके अन्तर्गत नहीं आता क्योंकि यह समस्त साहित्य लेखककी विचार-परतन्त्रता संयमहीनता तथा स्वार्थपरताका द्योतक है और यह दूसरोंको भी इसी प्रकारकी प्रेरणा देता है। यह साहित्य वास्तवमें साहित्य नहीं माना जाता परन्तु हमने इस बातपर इसपर विचार किया है कि अनेक विचारकोंने इस प्रसंगमें अश्लीलता तथा उच्छृंखलता आदिके प्रश्न-को उठाया है। इस प्रकारका साहित्य न तो साहित्यकारके वैयक्तिक स्वातन्त्र्यका द्योतक है और न यह दूसरोंकी मुक्तिमें किसी भी रूपमें सहायक हो सकता है, क्योंकि ऐसा साहित्य व्यक्तिकी कुण्ठाओं वासनाओं तथा आवेगोंका आश्रय करके उसे सीमित करता है। पर इस प्रकारके साहित्यके लिए सामाजिक चेतना ही सबसे बड़ा प्रतिरोध होती है।

जो साहित्य समयकी कसौटीपर खरा उतरा है, वह जो युग-युगका साहित्य हो गया है, वह निश्चय ही लेखककी आत्मोपलब्धिका साहित्य है। इन साहित्यकारोंने अपने युगके सामाजिक जीवनको सांस्कृतिक चेतनाके रूपमें ग्रहण किया है। उन्होंने मात्र राजाओंका वर्णन घटनाओंका चित्रण तथा विभिन्न अवस्थाओंका दिग्दर्शन नहीं कराया है और न मात्र मतों सम्प्रदायों और विश्वासोंका प्रवर्तन किया है। उन्होंने युगजीवनको आत्मगत सत्यके रूपमें ग्रहण किया है और अपने साहित्यको युगीन सांस्कृतिक उपलब्धियोंका वाहक बनाया है। साहित्यकारकी आन्तरिक संवेदना उसके वैयक्तिक स्वातन्त्र्यकी शर्त है और इसीके माध्यमसे वह मानवीय मूल्योंकी प्रतिष्ठा करनेमें समर्थ हो पाता है। इस सम्बन्धमें यदि हम आजके साहित्यकारके व्यक्तित्वके प्रश्नको रखें तो निश्चय ही उसके स्वातन्त्र्यका आग्रह उसके दायित्वकी माँग सिद्ध होगा। उसके इस विशेष स्वातन्त्र्यको अस्वीकार करनेका अर्थ होगा कि हम उसकी आन्तरिक

संवेदनशीलताको नियन्त्रित करना चाहता है अर्थात् उसकी रचना प्रक्रियाको शासित करना चाहते हैं। स्पष्ट ही जिसका अर्थ है कि उसका समाप्त करनेका आग्रह प्रकट करते हैं। इस स्वातन्त्र्यको दायित्वहीन अराजक उच्छृंखल तथा समाज-विरोधी कहना व्यक्ति और समाजके सत्यात्मक सम्बन्धका अस्वीकार करनेके साथ साहित्यकारकी रचनात्मक प्रक्रिया न समझना है।

साहित्यकी सृजन प्रक्रियाकी विशिष्ट स्थितिके कारण प्रत्येक युगमें यह सम्भव हो सका है कि साहित्यकार धार्मिक मतवादों दार्शनिक चिन्तन-पद्धतियों तथा राजनीतिक संघर्षोंके विरोधके बीच भी सामंजस्य और समन्वयका मार्ग प्रशस्त करता आया है। उन सभी पिछले युगोंमें जिनमें व्यक्तिकी सत्ता अपने व्यक्तिवादी रूपमें सारे समाजको नियन्त्रित करती रही है, साहित्यकारने अपने वैयक्तिक स्वातन्त्र्यकी रक्षा की है और सामाजिक (मानवीय) मूल्योंको गति प्रदान की है। इसका कारण यह है कि साहित्यकारका साहित्यिक-सर्जनके क्षेत्रमें व्यक्तिगत कुछ नहीं रहा है। साहित्य उपलब्धिके रूपमें भी प्रेषणीय है, इसलिए उसके साथ समष्टिका प्रश्न चिरन्तन है। साहित्यिक व्यक्तित्व और उसका स्वातन्त्र्य रचनाकी प्रेषणीयताके कारण व्यक्तिवादी होकर अपने-आपको कुण्ठित ही कर लेगा। उसके लिए स्वातन्त्र्य मात्र-दायित्वकी चेष्टा है और वह समाज (वर्गगत नहीं) की आन्तरिक मर्यादाकी सापेक्षतामें प्रतिफलित होता है। मानवीय जीवनके अन्य क्षेत्रोंमें जो कुछ सांस्कृतिक उपलब्धियोंके रूपमें स्वीकृत होता रहा है वह भी इसी आधारपर कि वह मानवीय प्रतिमानोंकी परम्पराको अग्रसर करनेमें अविरोधी तत्त्व है। उसने मानवीय मर्यादाको खण्डित न करके इतिहासके क्रममें स्थान ही बनाया है। मत मतोंका खण्डित रूपमें माननेवाले धर्म दर्शन और नीतियाँ हमारे सांस्कृतिक विकासमें बाधक ही रहे हैं। परन्तु साहित्यने निरन्तर मानव संस्कृतिको ग्रहण किया है युग-विरोधकी उपलब्धियोंको आगत युगोंके

व्यावसायिक प्रचारके लिए लिखा गया साहित्य वस्तुतः साहित्यकी संज्ञाका अधिकारी नहीं रहा है। इसी प्रकार कल्पनाको उद्दीप्त करनेवाला और व्यक्तिगत वासनाओंको उत्तेजित करनेवाला साहित्य भी साहित्यके अन्तर्गत नहीं आता क्योंकि यह समस्त साहित्य लेखककी विचार-परतन्त्रता संयमहीनता तथा स्वार्थपरताका द्योतक है और यह दूसरोंको भी इसी प्रकारकी प्रेरणा देता है। यह साहित्य वास्तवमें साहित्य नहीं माना जाता परन्तु हमने इस कारण इसपर विचार किया है कि अनेक विचारकोंने इस प्रसंगमें अश्लीलता तथा उच्छृंखलता आदिके प्रश्न-को उठाया है। इस प्रकारका साहित्य न तो साहित्यकारके वैयक्तिक स्वातन्त्र्यका द्योतक है और न वह दूसरोंकी मुक्तिमें किसी भी रूपमें सहायक हो सकता है क्योंकि ऐसा साहित्य व्यक्तिकी कुण्ठाओं वासनाओं तथा भावनोंको आक्रान्त करके उसे निष्क्रिय करता है। पर इस प्रकारके साहित्यके लिए सामाजिक चेतना ही सबसे बड़ा प्रतिरोध होती है।

जो साहित्य समयकी कसौटीपर खरा उतरा है या जो युग-युगका साहित्य हो गया है, वह निश्चय ही लेखककी आत्मोपलब्धिका साहित्य है। इन साहित्यकारोंने अपने युगके सामाजिक जीवनको सांस्कृतिक चेतनाके रूपमें ग्रहण किया है। उन्होंने मात्र राजाओंका वर्णन घटनाओंका चित्रण तथा विभिन्न अवस्थाओंका दिग्दर्शन नहीं कराया है और न मात्र मतों सम्प्रदायों और विश्वासोंका प्रवर्तन किया है। उन्होंने युगजीवनको आत्मगत सत्यके रूपमें ग्रहण किया है और अपने साहित्यको युगीन सांस्कृतिक उपलब्धियोंका वाहक बनाया है। साहित्यकारकी आन्तरिक संवेदना उसके वैयक्तिक स्वातन्त्र्यकी शर्त है और इसीके माध्यमसे वह मानवीय मूल्योंकी प्रतिष्ठा करनेमें समर्थ हो पाता है। इस सन्दर्भमें यदि हम आजके साहित्यकारके व्यक्तित्वके प्रश्नको रखें तो निश्चय ही उसके स्वातन्त्र्यका आग्रह उसके दायित्वकी माँग सिद्ध होगा। उसके इस विशेष स्वातन्त्र्यको अस्वीकार करनेका अर्थ होगा कि हम उसकी आन्तरिक

संवेदनशीलताको नियन्त्रित करना चाहते हैं अर्थात् उसकी रचना-प्रक्रिया-को शासित करना चाहते हैं। स्पष्ट ही जिसका अर्थ है कि उसको समाप्त करनेका आग्रह प्रकट करते हैं। इस स्वातन्त्र्यको दायित्वहीन अराजक उच्छृंखल तथा समाज-विरोधी कहना व्यक्ति और समाजके सत्यात्मक सम्बन्धको अस्वीकार करनेके साथ साहित्यकारकी रचनात्मक प्रक्रिया न समझना है।

साहित्यकी सृजन-प्रक्रियाकी विशिष्ट स्थितिके कारण प्रत्येक युगमें यह सम्भव हो सका है कि साहित्यकार धार्मिक मतवादों दार्शनिक चिन्तन-पद्धतियों तथा राजनीतिक संघर्षोंके विरोधके बीच भी सामंजस्य और समन्वयका मार्ग प्रशस्त करता आया है। उन सभी पिछले युगोंमें जिनमें व्यक्तिकी सत्ता अपने व्यक्तिवादी रूपमें सारे समाजको नियन्त्रित करती रही है, साहित्यकारने अपना वैयक्तिक स्वातन्त्र्यकी रक्षा की है और सामाजिक (मानवीय) मूल्योंको गति प्रदान की है। इसका कारण यह है कि साहित्यकारका साहित्यिक-सृजनके क्षेत्रमें व्यक्तिगत कुछ नहीं रहा है। साहित्य उपलब्धिके रूपमें भी प्रेषणीय है, इसलिए उसका साथ समष्टिगत प्रश्न चिरन्तन है। साहित्यिक व्यक्तित्व और उसका स्वातन्त्र्य रचनाकी प्रेषणीयताके कारण व्यभिचारी होकर अपने-आपको कुण्ठित ही कर लेता। उसके लिए स्वातन्त्र्य मात्र-दायित्वकी चेष्टा है और वह समाज (वर्गगत नहीं) की आन्तरिक मर्यादाकी सापेक्षतामें प्रतिफलित होता है। मानवीय जीवनके अन्य क्षेत्रोंमें जो कुछ सांस्कृतिक उपलब्धियोंके रूपमें स्वीकृत होता रहा है, वह भी इसी आधारपर कि वह मानवीय प्रतिमानोंकी परम्पराको अग्रसर करनेमें अविरोधी तत्त्व है। उसने मानवीय मर्यादाको खण्डित न करके ऐतिहासिक क्रममें आगे ही बढ़ाया है। मानवताको खण्डित रूपमें माननेवाले धर्म दर्शन और नीतियाँ हमारे सांस्कृतिक विकासमें बाधक हो रही हैं। परन्तु साहित्यने, निरन्तर मानव संस्कृतिको वहन किया है, युग-विशेषकी उपलब्धियोंको व्यापक युगोंकि

लिए सुरक्षित रखा है और यह स्वातन्त्र्यका प्रतिमान साहित्यकी रचनात्मक प्रक्रियाकी आन्तरिक प्रवृत्तिसे उद्भूत है।

साहित्यकार जीवनके अन्तरसे जीवनका साक्षात्कार करता है। वह अन्य ज्ञानी-विज्ञानियोंके समान मानव-जीवनको वस्तु नहीं मानता और विश्लेषण करके उसकी परीक्षा नहीं करता। इन अनुभूत सत्योंको वह दूसरोंके लिए प्रेषणीय बनाता है। इस सर्जन और सम्प्रेषणकी स्थितिमें साहित्यकारका व्यक्तित्व इस सीमा तक सामाजिक सत्यात्मकताका अंग बन जाता है कि शायद दूसरा व्यक्ति अपने किसी क्षणमें कम ही उस सीमा तक पहुँच सकता है। इस प्रक्रियामें व्यक्ति तथा समाजकी सीमा अभिन्न हो जाती है वह सामाजिक जीवनके माध्यमसे अपने व्यक्तित्वको व्यक्त करता है। इस कारण यहाँ यह कहना अप्रासंगिक नहीं है कि साहित्यकारका व्यक्तित्व सामान्य होकर भी अपनी सर्जनशील प्रकृतिके कारण विशिष्ट है। ऐसी स्थितिमें उसके स्वातन्त्र्यकी आकांक्षा उसके दायित्वकी सबसे बड़ी स्वीकृति है, वस्तुतः यह स्वतन्त्रता उसके लिए सबसे महान् दायित्व है क्योंकि उसका दायित्व किसी वर्ग जाति अथवा राष्ट्र आदि देश-कालगत स्थिर रूपोंके प्रति न होकर सम्पूर्ण मानवताके प्रति है जिसका निर्वाह उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व ही कर सकता है।

ऐसी स्थितिमें साहित्यकार (कलाकार) के वैयक्तिक स्वातन्त्र्यका प्रस्ताव मानव-मूल्यों और प्रतिमानोंकी स्वीकृति तथा उनकी मर्यादाकी प्रतिष्ठाके लिए महत्त्वपूर्ण शर्त है। यहाँ यह भी समझना आवश्यक है कि यह स्वातन्त्र्य उसके व्यक्तिगत सामाजिक जीवनकी स्वतन्त्रतासे अभिन्न होकर भी विशिष्ट अवश्य है। परन्तु साहित्यकारका रचनात्मक परिस्थितिक सम्बन्धमें स्वातन्त्र्यका प्रश्न मौलिक (बुनियादी) और अनिवार्य है, क्योंकि जैसा कहा गया है कि इसका सम्बन्ध साहित्यकी मूल प्रकृतिसे है। समाजका वास्तविक जीवन मानवीय मूल्योंकी अप्रतम अनुभूतियोंसे संचालित और उन्हींकी उपलब्धियोंपर आधारित और विकसित होता है।

साहित्य इस सांस्कृतिक समन्वयका समर्थ और महत्त्वपूर्ण वाहक है। अब यदि साहित्यकार मानवीय स्वाधीनताको अपनी साहित्य रचनाका मौलिक प्रतिमान स्वीकार करता है तो यह उसकी रचना प्रक्रिया (क्रिएटिव प्रॉसेस) के मुक्त होनेकी स्वीकृतिके साथ अपने गम्भीर दायित्वके प्रति जागरूक होनेकी मान्यता भी है। इस प्रकार उसके लिए दायित्व और स्वातन्त्र्य अविच्छिन्न मूल्य हैं एकका भाव दूसरेमें आ जाता है, एकमें ही दूसरेकी स्वीकृति हो जाती है।

साहित्यका प्रगतिशील मानदण्ड

आज हम इस प्रश्नको क्यों उठा रहे हैं ? अनेक बार प्रश्नके उठते ही ऐसा जान पड़ता है कि यह कोई प्रश्न नहीं है। लगता है कि बीसवीं शतीके इस छठे दशकमें यह प्रश्न बिलकुल थोथा है। परन्तु सम्भवतः इस विषयको लेकर ही साहित्यमें सबसे अधिक उलझन और अस्पष्टता है। अनेक बार जन धनके समान बलशाली साहित्यिक अर्थको अत्यन्त व्यापक रूपमें लिया जाने लगता है और उस समय सामान्य जनताके लोक साहित्यके रूपमें इसे स्वीकार करनेका भ्रम किया जाता है। इस अति व्याप्तिके विपरीत एक सीमा अव्याप्ति दोषकी भी है जहाँपर कुछ विचारक *साहित्यमें प्राचीन आचार्योंकि साधारणीकरणकी व्याख्या इस रूपमें करनेका* प्रयत्न करते हैं। परन्तु साधारणीकरण साहित्यके अभिव्यक्त अर्थको ग्रहण करनेकी प्रक्रिया है, जिसका सम्बन्ध विषय-वस्तुसे निर्धारित नहीं होता जबकि प्रस्तुत प्रश्नका मन्तव्य साहित्यकी प्रयोजनीयता और विषय-वस्तुसे अनिवार्यतः सम्बद्ध है। अभिव्यक्तिका प्रश्न सभी स्तरों वर्गों और कोटियोंके साहित्यके विषयमें समान रूपसे लागू होता है। जो कुछ भी साहित्यमें अभिव्यक्त होता है वह यदि कलाकृति है तो निश्चय ही कोई पाठक या श्रोतावर्ग उस अभिव्यक्तिका रसद होगा। उस वर्गके लिए वह कृति साधारणीकरणकी सहज प्रक्रिया-द्वारा ही अनुभवका विषय बन सकती है। पर इससे एक तथ्य अवश्य स्पष्ट लगता है कि साहित्य अभिव्यक्तिके रूपमें ही मानवीय सहानुभूतिके व्यापक और सहज तत्त्वको स्वीकार करता है। एक व्यक्तिका अनुभव दूसरेकी अनुभूतिका विषय तभी बन सकता है, जब दोनोंमें कोई सामान्य भावभूमि हो। और साहित्य अपने ही युगके लिए नहीं युग-युगके लिए अभवान् है।

इस विषयमें एक सामान्य भ्रम लोकप्रियताका भी है। कुछ लोगोंका मन ऐसा जान पड़ता है कि जो लेखक जनता-द्वारा जितना अधिक पसन्द किया जाता है या जिसकी कृतियोंकी जनतामें जितनी अधिक खपत है, वह उतना ही जनवादी होगा। उदाहरणके लिए तुलसीदास और प्रेमचन्द को लिया जा सकता है। ऊपरसे यह मत जितना सीधा है उतना ही भ्रामक भी। पुस्तकोंकी बिक्रीके आँकड़े रखनेवाला फ़ौरन टोक सकता है कि इस क्रममें तो ऐसे लेखक भी हैं जो प्रेमचन्दसे अधिक जनवादी लेखक सिद्ध हो सकते हैं और इस तर्क-द्वारा 'रामचरितमानस'से तो 'किस्सा तोता-मैना' कहीं अधिक जनवादी कृति सिद्ध हो सकती है। लेकिन इस बातमें क्षण-भरके लिए भी किसीको भ्रम नहीं होता। यहाँ एक तर्क-पद्धतिकी अवतारणा की जा सकती है जो किसीके द्वारा अभीतक प्रस्तुत नहीं की गयी है। भारतवर्षका आजका समाज भी धर्म-चेतनाके उस स्तरपर है जहाँपर पौराणिकताका मोह बना हुआ है और ऐसी स्थितिमें जबतक ऐतिहासिक क्रममें वर्ग-चेतनाका विकसित स्तर यहाँ उपस्थित नहीं हुआ उस समय तक जनताकी रुचिका स्तर भी नहीं बदलेगा। पर यह हम निश्चित रूपसे जानते हैं कि इतिहासके वैज्ञानिक व्याख्याकारोंने अलग-अलग देशोंमें इतिहासके भिन्न युगोंकी कल्पना नहीं की है और न ऐसा सम्भव है कि इतिहासकी गतिको कोई चुपचाप शान्त भावसे देखा करे कि द्वन्द्वात्मक प्रक्रियाओंसे हमारे सामाजिक जीवनमें वर्गोंकी स्थिति अधिक स्पष्ट और तीखी हो रही है उसके लिए सामग्री वातावरणसे पूँजीवादी शक्तियोंका जन्म हो रहा है। फिर अपने अन्तर्विरोधकी स्थितिमें विनष्ट होती पूँजीवादी संस्कृतिको ध्वस्त कर शोषित वर्ग अपनी शक्तियोंका संगठित करनेके लिए संघर्षशील है और जब यह सब हो जायगा तब जो साहित्य लिखा जायगा वह जनताका अपना साहित्य होगा जिसमें वर्ग संघर्ष और शोषित वर्गोंकी आशाओं और महत्त्वाकांक्षाओंका प्रतिबिम्ब

होगा। परन्तु जैसा कहा गया है यह तर्क पद्धति मात्र है ऐसा स्वीकारने-का साहस तथा धैर्य किसीमें नहीं है।

फिर लोकप्रियता जनसाहित्यका मानदण्ड नहीं हो सकती। उसके साथ किसी अन्य मान का स्वीकार करना पड़ेगा। तुलसीदासका प्रश्न उठा था इस कारण नैतिकताका प्रश्न भी उठाया जा सकता है। आचार्य रामचन्द्रने मर्यादाकी दृष्टिसे ही तुलसीको हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित किया है। इस प्रकार लोकप्रियताके साथ नैतिक आचरणकी मर्यादाको भी साहित्यिक 'मान' के रूपमें स्वीकार किया जा सकता है। यहाँ पुनः दो प्रश्न उठते हैं। क्या साहित्यके लिए नैतिक मर्यादा अनिवार्य है? और यदि है तो क्या उसकी शुद्धतावादी होना चाहिए? कठोर शुद्धतावादी दृष्टिसे तो तुलसीकी भी रक्षा करनी कठिन होगी फिर कालिदास शेक्सपियर और हिन्दीके सूरकी क्या स्थिति होगी? और साथ ही संसारके समस्त यथार्थवादी साहित्यकी क्या परिणति होगी? सामान्य नैतिकताके विषयमें भी यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि किस नैतिकताको साहित्य का 'मान' स्वीकार किया जायगा। उसका दृष्टिकोण तो युग समाज देश और यहाँतक कि विभिन्न वर्गोंमें अलग-अलग स्वीकृत होता है।

इसके बाद जनकी भावनाके साथ साहित्यमें कल्याणका प्रश्न उठता है। साहित्यमें कल्याणकी समस्याको अनेक स्तरोंपर उठाया गया है, पर यहाँ 'जन कल्याण' का अर्थ ही प्रधान है। वस्तुतः जनतन्त्रके अन्तर्गत 'जन' शब्दको ही समस्त जनताके उस कल्याण अथवा हितका अर्थ दे दिया गया है जिसे बहुसंख्यक स्वीकार भी करें। शायद साहित्यके अर्थ में राजनीतिक इस अर्थका विशेष महत्त्व नहीं है। परन्तु इससे हम एक स्वाभाविक परिणाम तक पहुँच सकते हैं। साहित्यकी प्रगतिशील व्याख्याने जन शब्दकी प्रमुखता प्रदान की है और 'जन' से उनका अर्थ होता है, जनताके उस वर्गसे जो शोषित है और जो संघर्ष-द्वारा भविष्यके वर्गहीन समाजकी नींव डाल रहा है। इस प्रकार यहाँ जनवादी साहित्यका अर्थ

हुआ जाग्रत शोषित वर्गके संघर्षका तथा उसकी आकांक्षाओंका साहित्य। अगर बात यहीं समाप्त हो जाती तो समझना सरल था कि प्रत्येक साहित्य वर्गका साहित्य है और क्योंकि आज शोषित मजदूर किसानोंमें जागरण है व अपनी स्वतन्त्रताके लिए लड़ रहे हैं इसलिए इसी वर्गके साहित्यको जनसाहित्य कहा जायगा। परन्तु इस तरह तर्क-शैलीकी स्वाभाविक परिणति यह होगी कि साहित्यकी पिछली परम्परा जनवादी साहित्य नहीं कही जा सकती और दूसरे इस प्रकारके वर्गोंमें विभाजित साहित्यके 'मान' का प्रश्न तो बना ही रहेगा। अन्यथा यह भी अनिवार्य परिणति स्वीकार की जायेगी कि आजके इस वर्गका साहित्य ही एक मात्र उच्च साहित्य है, प्रगतिशील साहित्य है और पिछले युगोंका साहित्य तो निश्चय ही श्रमिक वर्गके विरुद्ध शासक वर्गका साहित्य है तथा आधुनिक युगका वह समस्त साहित्य जो किसी-न-किसी रूपमें इस वर्ग-संघर्षमें श्रमिक जनताके पक्षमें नहीं है अथवा श्रमिक संस्कृतिके निर्माणमें सहायक नहीं है, ह्रासोन्मुखी साहित्य है प्रतिक्रियावादी साहित्य है। इस प्रकार साहित्यका जनवादी होना मात्र एक साहित्यिक धाराका द्योतक न होकर उसका एक स्वतन्त्र मान भी प्रस्तुत करता है और यहीं साहित्यिक विवेचनमें सबसे बड़ी कठिनाई उत्पन्न होती है। कठिनाई यह नहीं है कि मार्क्सवादी दृष्टि साहित्यकी यथार्थवादी सामाजिक व्याख्या की है वरन् यह कि वह अपनी पद्धतिमें एक ऐसा 'मान' स्थापित करता है जिसके अनुसार 'साहित्यिकका श्रमिक जनताके जीवनके अनुसार सज्जित होना अनिवार्य शर्त हो जाती है'[1] फलतः साहित्यका समाजवादी निर्माण और सामाजिक दीक्षाका सेवक बनना भी निश्चित है।

साहित्य और समाजके सम्बन्धपर अनेक पूर्ववर्ती साहित्यशास्त्रियों और चिन्तकोंने प्रकाश डाला है इसे स्वीकार किया है। परन्तु साहित्यकी

---

१ सूडास और सामाजिक यथार्थवाद। जाकर रेमर्ट (१९५०)।

समाजवादी व्याख्याका एक अभूतपूर्व आधार प्रगतिशील विचारधाराने प्रस्तुत किया है । साहित्यालोचनके क्षेत्रमें इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है । उसका कारण यह भी है कि व्याख्याकी यह पद्धति साहित्यमें वास्तविक 'मार्गों' को स्थापित करनेमें पूर्ण सफल हुई है । विचारशील व्यक्तिके लिए इसका मार्ग लेना थोड़ा कठिन है । मार्क्स तथा ऐंगल्सने अपने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादके अन्तर्गत कला और साहित्य आदिके विषयमें पहली स्थापना की है कि 'समस्त मानवीय बौद्धिक जीवन उसके भौतिक जीवनकी उत्पादन प्रणालीसे नियमित होता है । मनुष्यकी चेतना उसकी अवस्थाका नियमन नहीं करती वरन् उसका अस्तित्व उसकी चेतनाका नियमन करता है ।'[1] समाजके आर्थिक आधार (बेसिस) के साथ उसपर खड़े हुए प्रासाद (सुपरस्ट्रक्चर) का रूप भी कम-बेश बदलता जाता है अर्थात् मनुष्यका समस्त चिन्तन तथा सृजन उसके अपने युगकी स्थितिसे निर्धारित है और क्योंकि युग अपने समाजके उत्पादनसम्बन्धी आर्थिक नियमोंसे शासित है, इस कारण सब कुछ सामाजिक वर्गोंकी स्थितिपर निर्भर हो जाता है । परन्तु स्वतः मार्क्सने 'उत्पादनकी आर्थिक परिस्थितियोंके भौतिक परिवर्तन तथा इन वैधानिक राजनीतिक धार्मिक कलात्मक तथा दार्शनिक अर्थात् समस्त बौद्धिक प्रक्रियाओंके बीच'[2] अन्तर माना है । और इस विषयमें फ्रेडरिक ऐंगेल्सने भी स्वीकार किया है कि 'बौद्धिक चेतना आर्थिक क्षेत्रसे जितनी दूर और शुद्ध कल्पनात्मक विचारधाराके जितनी निकट होगी उतना हम उसके विकासमें आकस्मिक घटनाओंका आधिक्य दिखाई पड़ेगा और उतनी ही रेखा वक्र दिखाई देगी ।'[3] आगे चलकर यह भी कहा गया है कि अनेक बार ये बौद्धिक प्रक्रियाएँ अपने मौलिक नियमपर गतिशील होती हैं और सामाजिक संघर्षोंके स्वरूप निर्धारणमें भी प्रमुख भाग लेती हैं ।[4]

---

१ क्रिटिक ऑव पोलिटिकल इकानमी : मार्क्स । २ वही । ३ लेटर स्टार्केनबर्गके नाम पत्र । ४ सेलेक्टेड करेस्पाण्डेन्स मार्क्स एंगेल्स ।

स्पष्ट है कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवादके प्रथम आचार्योंके मनमें कला तथा साहित्यसम्बन्धी सांस्कृतिक उपलब्धियोंके विषयमें सीधी और सरल बात नहीं है। उनके मनमें इस बातका निरन्तर आभास रहा है कि इन भौतिक प्रक्रियाओंके स्वरूप-निर्माणमें आर्थिक परिस्थितियों तथा आवश्यकताओंका प्रतिबिम्ब नहीं है। प्रश्न उठता है कि 'वह और' क्या है जो समाजकी आर्थिक व्यवस्थासे निर्धारित चेतनाको मुक्त रूपसे अपने नियमोंपर संचालित होनेकी छूट देता है और फिर इस चेतनाको सामाजिक प्रगतिमें निर्णायक भाग प्रदान करता है। इसका उत्तर हमको इन आचार्यों से नहीं मिलता न तो अन्तर्विरोध उत्पन्न करनेवाली इन सम्भावनाओंकी ओर संकेत कर पुन अपनी स्थापनापर लौट आते हैं। मार्क्स अपनी बातको सँभालते हुए कहते हैं कि किसी परिवर्तित हेतु युगके बारेमें हम उस युगकी भौतिक चेतनाके आधारपर ही निर्णय नहीं कर सकते। इसके विपरीत हम चेतनाके विषयमें भी हम भौतिक जीवन और उत्पादन सम्बन्धोंके अन्तर्विरोधोंको दृष्टिमें रखकर समझना-समझाना चाहिए।[1] यहीं से और भी प्रश्नोंसे मार्क्सके मनकी द्विविधा ही पोषित होती है। एंगेल्सने अधिक स्पष्टताके कारण स्वीकार किया कि आर्थिक उपादानका मूल महत्त्व अवश्यका अनिवार्य सिद्ध कर देता है।[2] इस प्रकार इतिहासकी द्वन्द्वात्मक प्रगतिके क्रममें यह चेतनाकी दरार इस सिद्धान्तमें अन्तर्विरोधकी परिचायक है क्योंकि भौतिक प्रक्रियाओं और उपलब्धियोंका कुछ भी छूट देनेसे इतिहासकी गति सीधी रेखामें प्रवाहित होनेके स्थानपर न जाने कब कौन मोड़ ले सकती है।

इस आधारपर साहित्यमें जो वस्तुवादी दृष्टिकोण विकसित हुआ है उसमें प्रारम्भिक मान्यताओंके स्थानपर जो मार्क्स एंगेल्स लेनिन तथा

---

१ क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकानमी : मार्क्स। २ सिलेक्टेड करेस्पाण्डेन्स : मार्क्स : एंगेल्स।

एक सीमा तक लेनिनमें मिलती है, विकासकालीन वैज्ञानिक रूढ़िवादिता का कम ही अधिक मिलता है। जिस प्रकार सामन्तयुगीन रूढ़िवादी धर्म और दर्शनके प्रति विद्रोह करते समय वैज्ञानिक भौतिकवादमें काफी गति परिलक्षित होती थी उसी तरह रूढ़िवादी भौतिकवादसे विद्रोह करते हुए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (समाजवाद) में जीवन और गतिकी पकड़ थी ऊपरकी विवेचनासे भी यह स्पष्ट है। पर ज्यों-ज्यों इसकी प्रक्रिया आगे बढ़ती गयी इसका अन्तर्विरोध भी प्रत्यक्ष होता गया है। साथ ही साहित्यके क्षेत्रमें अपनी पद्धतिके अन्तर्गत व्यापक तत्त्वोंको स्वीकृति देनेका व्यापक प्रयत्न भी चलता रहा है और साहित्यको शासक वर्ग (श्रमिक वर्ग) का अस्त्र हमेशा निश्चय भी किया जाता रहा है। ऐसी परिस्थितिके बीच जनवादी साहित्यकी एक सीमा यह रही है, जिसपर साहित्यकी विषय वस्तु सामाजिक यथार्थसे सजीव तथा स्पन्दित होकर ही राजनीतिक मूल्योंका सूत्रसंकेत बन सकती है। इस दृष्टिसे साहित्य यथार्थकी उन समस्त युगीन जटिलताओं और विषमताओंको प्रतिबिम्बित करता है जिनके द्वारा और जिनके माध्यमसे समाजकी आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था स्वयं गतिशील होती है। परन्तु यहाँ इस सामाजिक यथार्थके प्रतिबिम्बक सिद्धान्तसे जनवादी साहित्यके किसी स्वतन्त्र 'मान'की कल्पना न की जाने लगे इसलिए स्पष्ट करना आवश्यक है कि वे साहित्यशास्त्री इसके साथ ही स्वीकार करते हैं कि 'यथार्थ सामाजिक प्रतिबिम्बमें कलाकार अनजाने ही वर्ग-संघर्षकी उन शक्तियोंको प्रस्तुत कर सकता है, जो सचेत रूपसे मान्य और सामाजिक दर्शन-द्वारा उत्पन्न उसकी अपनी आशा-आकांक्षाओंको सिद्ध करें। और इसके साथ हम जनवादी साहित्यकी दूसरी सीमा यह मान सकते हैं जिसका निर्धारण वर्तमान साम्यवादी रूसके निर्माताओंने समय-समयपर किया है जिसका संकेत जोजेफ़ रेवाईके कथनमें पहले ही दिया गया है। इस सीमापर साहित्य जनताकी शक्तिका अस्त्र स्वीकार किया गया है।

परन्तु क्या सचमुच इन दोनों मीमांसाओंके बीच कोई मौलिक अन्तर है और यदि नहीं तो इनका मुख्य उद्देश्य क्या रहा है? इधर प्रेमनाथके सिद्धान्तोंको कुत्सित समाजशास्त्र कहकर उसकी कड़ी आलोचना करने वालोंमें माइकेल लिफशित्सका नाम अधिक आया है। वे 'लेनिनवादी साहित्यिक दृष्टि' का प्रतिपादन करते हुए जहाँ अपनी बात छोड़ते हैं वहाँ आधार रूपसे अपने प्रतिपक्षीसे अलग नहीं हो पाते। मार्क्सवादी समाजशास्त्रीका यह स्पष्ट है कि वह विश्व-संस्कृतिकी समस्त प्रगतिक इतिहासमें मानवीय क्रान्ति और समाजवादी विचारधाराकी ओर प्रगति करनेवाले ज्ञानोन्मुख विकास-क्रमको खोज निकाले जो वर्ग-विभक्त वर्गोंके जीवनकी परिस्थितियोंको प्रतिबिम्बित करता है साथ ही संस्कृतिके उन समस्त प्रगतिशील और जनवादी तत्त्वोंसे प्रतिक्रियावादी तत्त्वोंको अलग करता है।[1] क्या यह निष्कर्ष प्रेमनाथके इस निष्कर्षसे अधिक भिन्न है 'विचारोंका अधिष्ठान वर्गोंके इतिहास और उनके पारस्परिक संघर्षोंका प्रतिबिम्ब है।'[2]

विचार करनेसे मौलिक स्थापनाओंमें कोई अन्तर नहीं जान पड़ता। अन्तर केवल इतना है कि एक कहता है समाज जैसा होता है और ह्रासयुगीन कला अनिवार्यतः पतनोन्मुखी होगी — इस प्रकार समस्त उत्तम तथा समस्त साहित्यिक परम्परासे अपनेको विच्छिन्न कर लेता है। जबकि दूसरा इस परम्पराकी ओर लोकवादी दृष्टिसे देखता हुआ उसमें जनसाधारण रूपसे शोषित वर्गकी इच्छा-आकांक्षाओंके प्रतिबिम्बित होनेकी सम्भावनाकी कल्पना करता है। पहला तुलसीदासको सामन्तयुगीन संस्कृतिकी उपज कहेगा और उनके साहित्यको उसी ह्रासयुगीन संस्कृतिका परिचायक और उसका अनिवार्य अंग मानकर पतनोन्मुखी सिद्ध कर देगा। इसके विपरीत

---

१ साहित्य और मार्क्सवाद। मुम्बा० मैक्सिम ग्यारेल। २ १०वीं शतीमें योरप साहित्य और चित्र-कला : प्रेमनाथ।

कलाका तत्त्व स्वीकारा है। अतः स्वतःपर उन्होंने प्राचीन महान् साहित्यकारों और कृतियोंके विषयमें जो कुछ कहा है और उनकी भव्यताको स्वीकार किया है, उससे यह सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त 'इस और का भी' जिसका उल्लेख पहले किया गया है, पूरा मिल जाता है। सैद्धान्तिक विवेचनाएँ प्राय: अपने तर्कके आवेगमें सत्यके एक पक्षपर अधिकाधिक बल देती जाती हैं इसी कारण अनेक बार महान् चिन्तकोंके जीवन और जीवन-दर्शनमें विरोध दिखाई पड़ता है जो उनके गत्यात्मक व्यक्तित्वमें तो सँभल जाता है पर आगे चलकर अनुयायियोंकी रूढ़िवादी व्याख्या-शैलीमें अधिकाधिक उभरकर सिद्धान्तकी जीवन-शक्तिको नष्ट कर देता है।[1]

यह सार्वभौमिकताका तत्त्व इस 'और' को मानवतावाद (१९वीं सदीका मानववाद नहीं) के रूपमें प्रतिष्ठित कर सकता है। आगे 'समग्र सामाजिक जीवनको प्रतिबिम्बित करने' की बातसे इस बातका अधिक बल मिलता है। यह भी माना गया है कि वर्ग-संघर्षके दौरान साहित्यकार अपने वर्गसे अपनी समस्त सर्जनात्मक प्रेरणा ग्रहण करके दूसरे वर्गोंकी इच्छा-आकांक्षाओंको भी अभिव्यक्त (प्रतिबिम्बित) करता है। लेखक अपनी चेतनागत मूल स्रोतकी अवहेलना करके यह समस्त सामाजिक इकाई को प्रतिबिम्बित करनेमें सक्षम हो सकता है। 'अनजाने ही' का प्रश्न उठता नहीं क्योंकि इस प्रकार सर्जनात्मक प्रक्रियाके सम्बन्धमें कठिनाई उपस्थित हो जायेगी। ऐसी स्थितिमें सवाल उठेगा कि क्या साहित्यिक रचना साहित्यकारके मनकी अवचेतन प्रक्रिया है। और इस सवालपर हमारे साथ वे ही अविद चौंकेंगे जिन्होंने इसका प्रयोग किया है। इस समय

---

1 लेनिनने मूल्यवादी भाषाशास्त्रके रूपमें ही। उसके स्थानके नकारात्मक सिद्धान्तको कारगर स्वीकारात्मक अद्वैत भावकी स्थापना की थी और यह भी है कि वे इसमें पक्के थे, 'सौन्दर्यवादी (भले ही अनासामाजिक हो) का प्रमाण माना जाता है। पर्यवेक्षणकी इसी कलाभिमुखी स्थितिने मार्क्सके समन्वयवादी उपन्यासों और साहित्यको बल दिया है।

सामाजिक जीवनको प्रस्तुत करते समय साहित्य वर्ग संघर्षकी बाह्य परिस्थितियोंसे निर्धारित और प्रभावित होते हुए भी (यद्यपि उसके अपने आन्तरिक नियम भी हैं ऐसा स्वीकार किया गया है), वर्गों तथा जातियोंमें विभाजित समाजके मानवीय सम्बन्धोंको ही अधिक व्यक्त करेगा। दूसरे शब्द अर्थात् श्रमिक वर्गके स्वार्थोंको प्रतिबिम्बित करनेकी बात भी हमको एक नये निष्कर्ष तक पहुँचनेमें सहायक होती है। अर्थात् *मानवीय सम्बन्धोंको साहित्य व्यापक सहानुभूतिके आधारपर ही ग्रहण करनेमें समर्थ हो सकता है।* अन्तमें एंगेल्सकी संघर्षके स्वरूप विषयक प्रमुख बात 'केवलमात्र' बात हमारी स्थापनाओंके लिए महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करती है। उसमें परिलक्षित होनेवाली द्विविधा तो अन्तर्विरोधकी परिस्थिति मात्र है। अन्यथा हम कह सकते हैं कि इस प्रकार साहित्य मानवीय सम्बन्धोंकी व्यापक सहानुभूतिसे शासक तथा शासित दोनों वर्गों, उच्च तथा नीच दोनों जातियोंमें परिवर्तन उपस्थित कर सकता है करता भी है यद्यपि समस्त सामाजिक युगकी अपनी सीमाएँ और मर्यादाएँ उसमें विद्यमान रहेंगी।

वस्तुतः साहित्यका कोई भी वर्गवादी सिद्धान्त पर्याप्त नहीं हो सकता है जो वर्तमान अथवा अतीतके महत् और महान् साहित्यकी समुचित व्याख्या न कर सके उसकी श्रेष्ठताके रहस्यको उद्घाटित न कर सके। संसारके महान् साहित्यकी परम्परागत व्याख्या न तत्कालीन प्रगतिशील शक्तियोंकी प्रतिक्रियाओंके रूपमें हो सकती है और न उनके संघर्षोंको प्रतिबिम्बित करनेके अर्थमें। व्यासकी यथार्थकी विराट् कल्पना शेक्सपियरकी मानव-जीवनमें सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि और तुलसीकी व्यापक वैष्णव भावना इसलिए महान् नहीं है कि उन्होंने मात्र अपने युगकी प्रतिक्रियाओंको ग्रहण किया था अथवा उसमें वर्ग-चेतनाके संघर्षशील वे स्वर परिलक्षित हुए हैं जो मानव इतिहासके निश्चित विकास-क्रमके द्योतक हैं। उनकी वास्तविक महानताका मर्म है वह व्यापक मानवीय सहानुभूति जिसने

उनकी कृतियोंमें युग-जीवनको वर्गों और जातियोंमें विभक्त प्रतिबिम्बित करनेके स्थानपर समग्र और अविभाज्य मानवताके रूपमें ग्रहण किया है। इस सूत्रके सहारे, वैज्ञानिक भौतिकवाद और पूँजीवादी व्यवस्थामें विकसित होते मानवीय प्रतिमानोंके बीच उत्पन्न होनेवाले झूठे दासत्वको तथा दास्तोवस्की-जैसे प्रतिभाशाली लेखकोंकी महानताका रहस्य भी खुल जाता है। वे युग-समाजके विराट् फलकपर व्यापक मानवताकी गहरी आन्तरिक सहानुभूतिसे चित्र प्रस्तुत कर सके यही उनकी महानता है। प्रेमचन्दके 'गोदान' की श्रेष्ठता और महानता इसी सत्यमें निहित है कि वे इसमें सम्पूर्ण मानव इकाईको अपने हृदयकी सच्ची और गहरी सहानुभूति दे सके हैं। कौन ऐसा वर्ग है, कौन ऐसा पात्र है जो उनकी सहानुभूतिसे पूर्णत अभिभूत नहीं है? यह बात तो गौण है कि व अपने युगके वर्ग संघर्षको प्रतिबिम्बित कर सके और इस बातका भी कोई महत्त्व नहीं कि उनका भविष्य-बोध हारा-थका है। वास्तवमें ये दोनों बातें उनकी यथार्थ दृष्टिके अन्तर्गत स्वत आ जाती हैं।

वस्तुत जनवादी साहित्यकी दृष्टिमें सम्पूर्ण सामाजिक-जीवन मानवताकी अविभक्त और वर्गहीन अखण्डताको लेकर ही उपस्थित होता है। इसके विस्तारमें वर्ग जाति व्यक्ति और उनके प्रत्येक स्तरके संघर्ष अन्तर्निहित हैं। इस आधारपर साहित्य किसी युगवर्ती समाजके सांस्कृतिक मूल्योंको अर्थवान् करता है और साथ ही उसकी युग-युगकी सांस्कृतिक परम्पराको गति प्रदान करता है। और इसका माध्यम है साहित्यकारकी व्यापक और गहन सहानुभूति उसका संवेदनशील तथा स्वतन्त्र व्यक्तित्व जो उसे इस कठिन दायित्वको वहन करनेका विवेक और शक्ति प्रदान करता है।

साहित्यमें प्रयोगवाद

आज-कल हमारे साहित्यके आधुनिकतम काव्यको प्रयोगवादी काव्यकी संज्ञा दी जाने लगी है। और अनचाहे ही अज्ञेयको इसका नेतृत्व मिल गया है। वे कई अवसरोंपर कह चुके हैं और 'दूसरा सप्तक' की भूमिकामें लिख भी चुके हैं "प्रयोगका कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे। प्रयोग न अपने-आपमें इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविताका कोई वाद नहीं है कविता अपने-आपमें इष्ट या साध्य नहीं है। अतः हमें 'प्रयोगवादी' कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें 'कवितावादी' कहना।" प्रयोगको अज्ञेयवाद मानें या न मानें पर विवाद उन्होंने अवश्य खड़ा किया है—'तार-सप्तक' और 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशनकी आयोजना-द्वारा। प्रयोगवादी न कहकर प्रयोगशील ही कहिए, (मैं इसी पक्षमें हूँ) परन्तु आजकी कविताने एक नया मोड़ लिया है यह तो मानना ही पड़ेगा। और प्रयोगकी यह दिशा न केवल भाषा शैली तथा व्यंजनाकी दृष्टिसे निर्दिष्ट है, वरन् वस्तु-सत्यका एक नया रूप भी उसके सामने आ रहा है। इस नये मोड़से आगे बढ़नेके लिए अज्ञेयने इस पीढ़ीके कवियोंको प्रोत्साहित किया है। वे मानते हैं कि ये सभी प्रयोगशील अन्वेषीके रूपमें भिन्न-भिन्न मार्गोंके पथिक हैं और उनमें आपसमें भारी मतभेद है। पर इस काव्यमें अभिव्यक्ति (भाषा-शैली) और काव्य-वस्तु (जीवन-जगत्) के प्रति बरतते हुए दृष्टिकोणका आभास इनकी सामान्य विशेषता भी है। अज्ञेय इस युगके सशक्त कलाकार हैं इस कारण वे वाद-विवादके केन्द्र बन गये हैं। परन्तु इस युगके सभी कवि न तो अज्ञेयके दृष्टिकोणसे सहमत हैं और न स्वयं अज्ञेय ही इस सीमा तक व्यक्तिवादी हैं जितना उनपर आरोप किया

जाता है। इस प्रश्नपर कई प्रकारसे विचार किया जा सकता है, और काफी वाद-विवाद इस विषयमें हुआ भी है। परन्तु मैं यहाँ सिद्धान्त-पक्ष तक ही अपनी सीमा निश्चित करना चाहता हूँ।

अनेक विचारकोंका मत है कि काव्यमें युगोंसे प्रयोग होते आये हैं। मैं इनकार नहीं कर सकता। हजारों वर्षकी आदमीकी जिन्दगी उसके प्रयोगोंका इतिहास ही तो है फिर साहित्य प्रयोगोंसे कैसे बचेगा! मेरे मनमें अनायास एक उदाहरण याद आ रहा है मन्दाक्रान्ताकी मन्द-मन्थर गति और 'मेघदूत' काव्यकी कोमल कल्पना। क्या 'मेघदूत' कालिदासके लिए एक प्रयोग न होगा। भाग्यकी बात है कि वह एक सफल कविता सफल-प्रयोग हो गया। युगोंके इतिहासके साथ इस प्रकार न जाने कितने कवियोंके नाम लिये जा सकते हैं परन्तु यहाँ उसका लेखा-जोखा नहीं देना है। यह तो कवियोंके व्यक्तिगत प्रयोगोंकी बात हुई। कभी-कभी युगोंके सन्धिसे नवीन साहित्यिक चेतना जन्म लेती है। इस युग-चेतनाका साहित्य अपने पिछले युगकी समस्त मान्यताओं और परम्पराओंको तोड़कर नवीन स्थापनाएँ करता है। वास्तवमें भारतीय मध्ययुगके साहित्यमें इस प्रकारकी विद्रोहकी भावना मिलती है। इस युगके साधकोंने सामन्ती सौन्दर्य-भावकी चली आती परम्पराओंके प्रति विद्रोह करके अपने साहित्यमें जीवन और जगत्के प्रति एक नया दृष्टिबिन्दु उपस्थित किया। इस युगमें सौन्दर्य-भावके स्तरके साथ संवेदनाओंका क्षेत्र बदल रहा था और साधारणीकरणकी परिस्थितियाँ भी बहुत कुछ भिन्न हो चुकी थीं। सब मिलाकर मध्ययुगका साधना-काव्य जन भावनाके निकट आ रहा था। परन्तु भारतीय साहित्य और कलाका बहुत बड़ा भाग इस युगमें बहुत दूर तक स्वीकृत रहा है। भारतीय दृष्टि कलाके अभिव्यक्तिके क्षेत्रमें कविके व्यक्तित्वको महत्त्व नहीं देती। कविका व्यक्तित्व अपने काव्यमें पूर्ण रूपसे सामाजिक होकर ही स्वीकार किया जाता है। यद्यपि मध्ययुगके साधक अपनी साधनामें व्यक्तिवादी हैं परन्तु उनकी साधनाकी अभिव्यक्तिका

अधिकांश सामाजिक ही है। इसी प्रकार इस युगके बदलते हुए दृष्टिकोणमें पिछली परम्पराओंकी बहुत-सी बातें सम्मिलित हो गयी थीं और इस कालकी अपनी साम्प्रदायिक परम्पराएँ भी साथ ही विकसित हो गयी थीं। यही कारण है कि इस युगके प्रयोगशील साहित्यमें रोमैण्टिक भावनाएँ तथा जनवादी प्रवृत्तियाँ आकर भी पूर्ण रूपसे नहीं आ सकीं।

इसके बाद पुरातनके प्रति विद्रोहका तथा वस्तु-सत्यके प्रति अभ्यस्त हुए दृष्टि-बिन्दुका एक नया युग फिर आता है। यह युग छायावादका युग है। भारतीय साहित्यमें पहले-पहल कविके व्यक्तित्वकी विजय हुई। इस विषयमें पश्चिमके सम्पर्क और प्रभावको भुलाया नहीं जा सकता। परन्तु इतने बड़े आकस्मिक आन्दोलनके पीछे इस देशकी सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियोंका बहुत बड़ा हाथ रहा है। इन परिस्थितियोंके साथ मध्यवर्गकी स्थिति इस कालकी सबसे बड़ी प्रेरणा रही है। शिक्षित-युवक अनेक कवियोंमें इसकी व्यक्तिपरक स्वच्छन्दता की अभिव्यक्ति मिलती है जिसमें रोमैण्टिक भावनाका स्वस्थ विकास दिखाई दे रहा था। परन्तु छायावादकी अनेक कुण्ठाओंमें ग्रस्त छायावाद एक प्रकारसे इस मनोवृत्तिका भ्रम मिला। यह दूसरी बात है कि छायावादमें रोमैण्टिक प्रवृत्तियोंने अनेक प्रकारसे प्रश्रय पा लिया है। रोमैण्टिक प्रवृत्ति भ्रम और कुछ कवियोंमें रोमैण्टिक प्रवाहोंकी(?) स्वस्थ अभिव्यक्ति इस युगमें वस्तुपरक(?) आश्रय मिलती है परन्तु अधिकांश आश्रम मुक्त अभिव्यंजना नहीं हो सकी। छायावादमें पिछले युगोंकी नितान्त वस्तु-परकताके प्रति गहरा विद्रोह मिला है और अपने व्यक्तित्वकी स्वीकृतिके लिए जूझता हुआ एकान्त भी है। और इस प्रतिक्रियामें उसकी अपनी वैयक्तिकता इतनी अन्तर्मुखी हो गयी कि कवि वस्तु-जगत्‌की नितान्त अवहेलना करके स्वप्नों और आशाके रंगीन चित्रोंमें अपनेको सम्भालता रहा। इस कालमें भाव अनूठे रंगोंका सौन्दर्य है। परन्तु वस्तु-जगत्‌की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होनेवाली संवेदनाओंका रूप इन छायाओंमें कहीं दिखाई नहीं देता। इस कारण इस

सौन्दर्य-काव्यमें शक्तिका नितान्त अभाव है। इन कवियोंने काल्पनिक सौन्दर्य-विधानके साथ साहित्यकी भाषा, व्यंजना-शक्ती तथा छन्दके क्षेत्रमें अपने प्रयोगोंके आधारपर अनेकानेक नवीन रूप दिये हैं। मुक्त छन्दोंके क्षेत्रमें निरालाके प्रयोग नयी पीढ़ीका मार्ग प्रशस्त करनेकी क्षमता रखते हैं। वस्तु-विषयकी दृष्टिसे भी निराला और पन्त दोनोंने छायावादमें एक नये स्वरका योग किया है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि छायावादी सौन्दर्य-बोधके प्रति उन्हें स्वयं अधिक आस्था नहीं रह गयी है।

छायावादकी स्थिति बहुत दिनोंतक सम्भव नहीं थी। जीवनकी यथार्थ-कुरूपताओंको लेकर मानसिक कुण्ठाओंको छिपाकर कल्पना-लोकके छायाभास वैभवमें अपने-आपको भुलाये रखना अधिक सम्भव नहीं था। और न सामाजिक भावनाओंके लिए अज्ञातका रहस्यात्मक आधार ही अधिक टिकाऊ सिद्ध हो सका। और परिणामस्वरूप आजके काव्यमें एक नया मोड़ स्वाभाविक था। उसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि यह काव्य स्वप्न-जगत्के काल्पनिक कुहासेसे निकलकर वास्तविकताकी ओर बढ़नेका प्रयास कर रहा है। कम-से-कम नयी वास्तविक भूमिका पहचाननेका प्रयास तो कर ही रहा है। अपनी समस्त भिन्नताओंके साथ भी आजके प्रयोगशील काव्यकी यह सामान्य विशेषता स्वीकारी जा सकती है। किन्तु साथ ही इसमें छायावादी वैयक्तिकताको भी विकास मिल रहा है। अपनी शैली और सौन्दर्यबोधमें अवश्य यह काव्य अति-वैयक्तिक ही अधिक है। और यदि वास्तविक यथार्थके प्रति जागरूक होना, नयी परिस्थितियोंके संघर्षके प्रति सचेत होना इस काव्यके व्यापक दृष्टिकोण तथा शक्तिपूर्ण स्वास्थ्यके लक्षण हैं तो साथ ही व्यक्तित्वकी अति-प्रधानता इस युगके कविको व्यक्तिवादी दुरूहता और कुण्ठाओंमें भी फँसा रखती है।

इन दो विशिष्ट सीमाओंके बीच इस प्रयोगशील काव्यमें अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं जो एक-दूसरेसे भिन्न ही नहीं विरोधी भी हैं। भिन्न कवियोंमें ही यह विभेद हो, ऐसा भी नहीं है। एक कविकी विभिन्न

कविताओं और कभी एक ही कवितामें इस प्रकारका विरोधाभास आन पड़ता है। आन पड़ता है इसलिए कहता हूँ कि काव्यात्मक अभिव्यक्तिमें इस प्रकारके विरोधोंका होना सहज है। कविकी भावकता उसकी अपनी संवेदनाओंसे सम्बद्ध है। और यह संवेदना वस्तु तथा स्थितिके साथ बदल सकती है और कविकी मानसिक स्थितिसे भी प्रभावित होती है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मैं सदा काव्यमें अस्थिरता और विरोधोंका पक्षपाती हूँ। आधुनिक काव्यमें यह स्थिति इस युगके कवियोंकी मानसिक स्थितिकी परिचायक है। इस युगका कवि भी मध्यवर्गका है और वह उसीसे अपनी प्रेरणा ग्रहण करता है। मध्यवर्गकी आजकी अस्थिर मानसिक सामाजिक तथा आर्थिक स्थितिका संघर्ष इस काव्यमें प्रत्यक्ष है। आधुनिक कवि अपनेको एकाएक विरोधी संघर्षोंकी परिस्थितिमें पाता है और अपना मार्ग निश्चित नहीं कर पा रहा है। पिछले युगमें मध्यवर्गका व्यक्ति सामाजिक कुण्ठाओंसे अधिक पीड़ित था पर आज उसके मनपर आर्थिक और सामाजिक वैषम्यका प्रभाव भी तीव्र रूपसे पड़ रहा है। उसे महत्वाकांक्षाओंको बढ़ानेका अवसर मिला है, पर उन्हें परितुष्ट करनेका रास्ता नहीं। वह अधिक संवेदनशील है इस कारण अपनी परिस्थितिको लेकर वह संसारकी अनेक विरोधी मान्यताओंको एकाएक सामने-सामने पाता है। परिणाम स्पष्ट है एक ओर उसकी संवेदनाएँ अधिक वैयक्तिक होती जाती हैं और दूसरी ओर वह अपनेको अपने समयकी सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओंसे अलग नहीं कर पाता है। आधुनिक कविके सामने यही सबसे बड़ी समस्या है। उसके मनमें यही समस्या संघर्ष बन गयी है कि वह अपने अधिकाधिक संवेदक व्यक्तित्वसे आजके युगकी विषम समस्याओंका सन्तुलन किस प्रकार स्थापित कर सके। निस्सन्देह आजके काव्यकी प्रेरणा यही संघर्ष है। भाव जीवनका सत्य महत्त्वपूर्ण है परन्तु वह आगे बढ़नेकी प्रेरणा देनेवाले संघर्षसे बड़ा नहीं। इस कारण इस संक्रान्ति-कालमें हमारे कवियोंके मनमें

यह धारणा स्पष्ट होनी चाहिए कि उन्हें अपने मनको आगामी संघर्षके लिए तैयार करना है।

यह सब मैंने अपनी ओरसे आरोप किया हो ऐसी बात नहीं है। दोनों सप्तकोंके कवियोंने जो अपनी कविताके सम्बन्धमें वक्तव्यके रूपमें कहा है तथा आधुनिक युगकी कविताके स्वरोंमें भी यही प्रत्यक्ष होता है। एक प्रकारसे सभी कविताके सामाजिक मूल्यको स्वीकार करते हैं। एक भी कवि ऐसा नहीं है जो अपनी कविताके सामाजिक मूल्यके आक्षेपक पक्षमें नहीं है। साथ ही ऐसा भी कोई कवि नहीं है जो अपने व्यक्तित्वके प्रति सजग नहीं है। यहाँतक कि जो कवि अपनेको मुझे इससे मानवतावादी मानते हैं वे भी अपने विचारोंमें तथा कविताओंमें वैयक्तिक मोहको नहीं छोड़ सके हैं। जब मैं मोह कहता हूँ तब उसका मतलब आवश्यक रूपमें गलत या खतरनाक होना नहीं है। आधुनिक कवियोंमें कतिपयने व्यक्ति मात्रको बड़ा मुझे ढंगसे प्रतिपादित करनेका साहस किया है परन्तु वे भी सामाजिक मूल्योंको अस्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि व्यष्टि समष्टिकी ही इकाई है और व्यक्तिके बिना समाजकी सिद्धि होगी कैसे! इसलिए व्यक्तिगत अनुभूतियोंका महत्त्व है, हाँ उनको समष्टि तक पहुँचानेकी समस्या हो सकती है। मैं समझता हूँ समस्या इतनी नहीं है वरन् व्यक्ति और समाजके सन्तुलनकी समस्या उससे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह सन्तुलन व्यक्ति और समाजकी क्रिया-प्रतिक्रिया-भर नहीं है, इसके पीछे व्यक्तिके समस्त सामाजिक उत्तरदायित्वका प्रश्न भी छिपा है।

इस युगके काव्यकी विभिन्न प्रवृत्तियोंके विश्लेषण-द्वारा कुछ सिद्ध करनेके पहले मैं यही कह देना चाहता हूँ कि इन प्रयोगशील कवियोंसे हमको पूरी आशा रखनी चाहिए। क्योंकि जैसा कहा गया है कि इन सभी कवियोंमें सामाजिक चेतनाके प्रति जागरूकता है। इनमें-से कोई भी उस कोटिका असामाजिक व्यक्तिवादी नहीं है जिस कोटिके कवि और कलाकार योरपके पिछले युगमें ही विभिन्न वादोंके अन्तर्गत हुए हैं। योरपमें

१८५० ई० के बादसे ज्ञान-विज्ञानके क्षेत्रमें भारी परिवर्तन हुए हैं। डार्विन, फ्रॉयड तथा मार्क्स आदिने पुरानी आस्थाओंको जड़-मूलसे हिला दिया। भौतिक विज्ञानकी उन्नतिसे योरोप चमत्कृत हो उठा। इसी बीच अनेक महासंहारक युद्ध भी हुए। इन सब बातोंका प्रभाव वहाँके काव्यमें अनेक रूपोंमें देखा जा सकता है। जो बात योरोपमें क्रमशः हुई थी वह हमारे युगके सामने जैसे एकाएक एक साथ उपस्थित हो गयी है। यही कारण है आधुनिक काव्यमें वस्तु-तत्त्वको लेकर या शैलीको लेकर अनेक प्रवृत्तियाँ योरोप तथा इंगलैण्डके पिछले काव्यके समान मिल जाती हैं। इस काव्यमें विचारोंका तीव्र संघर्ष, भावोंका संकुचित उलझाव, उपचेतनके प्रभावोंका दमन, अहंकी वैयक्तिक दृष्टिकोणकी प्रमुखताके कारण मिल जाता है। साथ ही इसमें नवीन अनुभूतियों, सत्यों तथा विचारोंको व्यक्त करनेके लिए पुरानी व्यंजना-शैलीके प्रति विद्रोह उसी प्रकारका है। परन्तु असामाजिक तथा अस्वस्थ व्यक्तिवादी दृष्टिकोण इन कवियोंका योरोपके कवियोंके समान नहीं है। इस कारण इस तरहका खतरा इन कवियोंसे हमारे साहित्यको नहीं है।

बदलती हुई परिस्थितिके अनुकूल अपनी अभिव्यक्तिका माध्यम खोजना आजके कविके लिए अनिवार्य है। आजके युगमें पुरातन साधारणीकरणकी स्थिति बदल गया है, इसमें भी कुछ सन्देह नहीं। व्यक्ति और समाजकी प्रतिक्रियाओंको व्यापक आधार बना ही तो साधारणीकरण है। और कविता केवल रसकी सिद्धि नहीं खोजती, मनको संवेदन मात्रका प्रभाव देकर भी सिद्ध होती है। ऐसे लोगोंसे मुझे बहस नहीं जो सभी बातोंके लिए पाश्चात्य-काव्यका प्रभाव चाहते हैं। परन्तु भारतीय काव्य शास्त्रमें भी ध्वनि-सिद्धान्त सर्वमान्य रहा है। यदि जीवन और जगत्में नवीन सम्बन्धोंकी स्थिति उत्पन्न हो जायगी तो कविको निश्चय ही ध्वनिके रूपमें नये तथा प्रभावकी व्यंजनाके लिए नयी शब्द-शक्ति नयी व्यंजना-शैली तथा नये छन्द-विधानकी योजना करनी होगी। कवितामें

जबतक प्रभावका अधिक संवेदक रूपमें उपस्थापनकी बात स्वीकृत रहेगी तबतक किसी-न-किसी प्रकारकी छन्द-योजनाकी बात स्वीकृत होगी भले ही वह मुक्त छन्द हो। मैं आग्रहके साथ कहना चाहता हूँ कि मुक्त छन्द कविता छन्द-मुक्त कविता नहीं हो सकती। किसी भी प्रकारके शब्द, अर्थ, ध्वनि, लय, ताल या स्वरका आश्रय लेकर कविता चलेगी ही। मानसिक संवेदनाओं, प्रभावों, कल्पनाओं तथा तीव्र विचारोंको एक साथ उपस्थित करनेके लिए मुक्त-छन्दोंका प्रयोग नितान्त अनिवार्य हो गया है, यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

अबतक मैंने प्रयोगशील काव्यकी परिस्थिति तथा आवश्यकताके पक्षमें कहा है। परन्तु अब प्रश्न उठता है इस काव्यकी सफलता तथा उपयोगिताका। सामाजिक महत्त्व स्वीकार कर लेनेके बाद काव्यकी उपयोगिताके प्रश्नपर कोई आपत्ति नहीं कर सकता। जहाँतक सफलताका प्रश्न है, यह सापेक्ष्य है। परन्तु सापेक्ष्य सीमाओंसे पूर्व मैं कविकी व्यक्तिगत प्रतिभाका महत्त्व भी अधिक मानता हूँ। कभी असामाजिक भावनाओंका कवि भी अपनी प्रतिभाका लोहा मनवा ही लेता है और यह उसकी अपनी सफलता कही जायेगी। पर केवल सामाजिक भावना या आदर्शके बलपर कोई कवि महान् नहीं हो सकता। परन्तु यह भी सत्य है कि कोई कितना ही व्यक्तिवादी हो, सौन्दर्यवादी हो, स्वान्तःसुखायका भक्त हो परन्तु उसकी कविताकी सफलताको आँकनेवाला कोई दूसरा ही व्यक्ति होगा। अर्थात् कविका काव्य न उसतक सीमित होकर महान् है और न उसके स्वान्तःसुखायका ही कुछ मूल्य है। यह स्पष्ट है कि कवि अपनी किसी अनुभूतिको किसी रूपमें और किसी शैलीसे व्यक्त करनेमें स्वतन्त्र हो सकता है, परन्तु उसके काव्यके अर्थकी सिद्धि सामाजिकोंको लेकर ही होगी। अभिव्यक्तिमें प्रेषणीयताका गुण अपने-आपमें सन्निहित है।

इसके बाद ही सवाल उठता है उपयोगिताका। अभिव्यक्तिकी प्रेषणीयताके क्षेत्रसे इसका अत्यधिक सम्बन्ध है। यदि कविकी तीव्रतम संवेदनाओं

और विरुद्ध विचारोंके प्रभावके पार तक वह पाँच व्यक्ति अपनी समान मानसिक स्थिति अथवा व्यापक सहानुभूतिके कारण पहुँच सकें तो भी कविके काव्यकी स्वीकृति मानी जायेगी। इस प्रकारसे काव्यके विभिन्न स्तरोंकी स्वीकृति हो जाती है, और यह मैं मानता हूँ। काव्य कितना ही व्यक्तिवादी क्यों न हो, यदि उसे काव्यकी सत्ता मिल गयी तो कविकी स्थिति भी किसी-न-किसी स्तरपर स्वीकार की जायेगी। फिर प्रतिभाके अनुसार काव्यमें शक्ति भी होगी। लेकिन आज इस सवालको यहीं नहीं छोड़ सकते। आजका साहित्य केवल अभिव्यक्तिके सौन्दर्य-मात्रको अपना लक्ष्य मानकर नहीं चलता वह अधिक गम्भीर सामाजिक उत्तरदायित्वके निर्वाह करनेका हामी भी है, और यहींसे समस्याका पहलू भी बदल जाता है। मनुष्यके लिए उसके आनन्दकी उपलब्धि बड़ी हो चाहे न भी हो पर उसकी निजकी स्थिति अधिक सत्य अवश्य है। आज प्रश्नके इस अंगको छोड़नेवाला व्यक्ति या तो अपनी दमित कुण्ठाओंसे पागल माना जायेगा या अपने अहंकारसे आत्म-विस्मृत। यही संघर्षकी स्थिति योरोपके अनेक व्यक्तिवादी कलाकारोंके सामने आयी है। लुई अरागों पाल एलुआर पाबलो नेरुदा लोर्का ए ओडेन तथा स्पेण्डर आदि अनेक कवियोंने अपना मार्ग इसी प्रकारके संघर्षके बीचसे निकाला है। इस दृष्टिसे विचार करनेपर भी प्रयोगशील कवियोंसे दुःखित या निराश होनेकी बात नहीं है। यद्यपि ये अभी बहुत कुछ अपने व्यक्तित्व और अहंमें उलझे हुए जान पड़ते हैं परन्तु इनके मनमें भाग आज निराशाओंकी उत्कट इच्छा भी है। वे भाषा और शैलीको नये युगके अनुकूल बनानेका प्रयास कर रहे हैं जो आगत आगामी युगकी भावनाओंको सहज रूपमें वहन कर सकेगी। हमारे इन कवियोंके व्यक्तित्वके विकासमें सबसे बड़ी बाधा अहंके विस्तारसे हो सकती है। यदि वे अपने अहंके ऊपर उपेक्षित संघर्षके प्रति जागरूक हैं और अपने सामाजिक दायित्वके प्रति ईमानदार हैं (मैं मानता हूँ वे हैं) तो निश्चय ही वे अपने मार्गमें आगे बढ़ सकेंगे। नवीन

वैचित्र्यकी भावनासे आकर्षित होनेवाले कवियोंके हाथमें प्रयासशील कविता नये आयामोंकी खोज अधिक दिनोंकी वस्तु नहीं हो सकती। फिर भी नवीनताका आकर्षण कवियोंके लिए कम नहीं होता। परन्तु मुझे अपने युगकी नयी प्रतिभाओंके प्रति पूरा भरोसा है।

रस-सिद्धान्त और आधुनिक मनोविज्ञान

विषय-प्रवेशके पूर्व यह कह देना उचित है कि यह अध्ययन ऐतिहासिक क्रमसे प्रस्तुत नहीं किया गया है। यद्यपि विषयका पूर्ण निर्वाह तभी सम्भव था, पर विषयसे अधिक यहाँ निबन्धकी सीमाओंका ध्यान रखना आवश्यक हो गया है। इतिहासके नामपर यहाँ केवल आचार्योंकी ओर संकेत-भर किया जायेगा पर जिन विभिन्न सिद्धान्तोंकी इस अध्ययनमें व्याख्या की गयी है वे अपने ऐतिहासिक क्रमसे उपस्थित होंगे। भारतीय काव्य-शास्त्रकी परम्परामें रस-सिद्धान्तका महत्त्वपूर्ण स्थान है। पहले इस सिद्धान्तका विकास नाट्यशास्त्रमें स्वतन्त्र नाट्य-शास्त्रके अन्तर्गत होता रहा है। बादमें क्रमशः काव्यशास्त्रमें भी उसे प्रमुख स्थान मिलता गया। जिस समय भट्ट लोल्लट और शंकुकने भरतके रस-सिद्धान्तकी व्याख्या की है उनके समकालीन काव्य-शास्त्री अलंकार और रीतिका प्रतिपादन कर रहे थे। फिर भी भामह और दण्डीको रस-सिद्धान्तका ज्ञान कदाचित् था क्योंकि उन्होंने रसवद् अलंकारके अन्तर्गत रसोंको स्वीकार किया है। बादमें क्रमसे वामन रुद्रट और उद्भटने रसोंका अधिकाधिक उल्लेख किया पर काव्य-सिद्धान्तमें उसके स्पष्ट स्थानकी व्याख्या नहीं की है। सबसे पूर्व ध्वनिकारने अपने ध्वनि-सिद्धान्तके अन्तर्गत अभिधामूलक अर्थ व्यंग्यरूपसे भिन्न ध्वनिरूप रसको स्वीकार किया है और इस प्रकार उसे काव्यमें महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। भट्टनायकका समय ध्वनिकारके बादका है क्योंकि उन्होंने व्यंजनाको भी अन्य रस-सिद्धान्तोंके साथ अस्वीकार किया है। इनके दृष्टिबिन्दुमें नाट्यके साथ काव्य भी था। बादमें अभिनवगुप्तने ध्वनिके अन्तर्गत रस-सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हुए उसकी विशद व्याख्या की है। इनकी 'अभिनव भारती' (नाट्यशास्त्रकी टीका)

इसलिए अध्ययनके विस्तारमें जानेके पूर्व हमारे लिए तीन बातोंपर ध्यान रखना आवश्यक है—(१) प्राचीन आचार्योंके सिद्धान्तोंका उनकी समस्त प्रक्रियाके साथ सम्यक् ज्ञान यह ज्ञान ऐतिहासिक क्रममें होना आवश्यक है। साथ ही काव्य कवि तथा पाठकके विषयमें जो उनकी मान्यताएँ हैं उनका भी व्यापक ज्ञान आवश्यक है। (२) आधुनिक मनोविज्ञानके सिद्धान्तोंका नवीनतम और पूर्ण परिचय। (३) साथ ही सामञ्जस्य पूर्ण अध्ययनके लिए यह भी आवश्यक है कि आचार्यों-द्वारा प्रस्तुत सामग्री-का हम इस रूपमें प्रस्तुत कर सकें जिससे काव्यगत सत्योंकी मनोविज्ञानके स्तरपर अर्थ-सिद्धि हो सके। कुछ अपनी सीमाओंके कारण तथा कुछ निबन्धकी सीमाके कारण मैं इस व्यापक और गम्भीर अध्ययनसे दिशा संकेत मात्र कर सका हूँ।

हम डॉ॰ राकेशके अध्ययनका उल्लेख कर चुके हैं। इस अध्ययनमें ऊपर प्रस्तुत की गयी किसी भी पूर्व-निर्दिष्ट दृढ़ आधार नहीं है। डॉ॰ राकेशने इस विवेचनामें जिस शैलीका प्रयोग किया है वह तार्किक शैली न तो काव्य-शास्त्रके विषयमें उपयोगी है और न मनोविज्ञानके क्षेत्रमें। और दोनोंको एक धरातलपर लाकर व्याख्या करनेके लिए तो नितान्त भ्रामक है। तर्क कहता है ठीक या गलत वह कार्य-कारणकी परम्पराएँ ढूँढ़ता है जो ऐसे अध्ययनमें युक्ति-संगत नहीं। आचार्योंके मतको मनो वैज्ञानिक कहना (निश्चित अर्थमें) उतना ही भ्रमपूर्ण है जितना अवैज्ञा-निक। क्योंकि इससे उनके अनुभवज्ञान (मानसिक अनुभव प्रक्रिया) को हम बिलकुल अस्वीकार करेंगे। फिर डॉ॰ राकेशने आचार्योंकी काव्य कवि तथा भावक विषयक सीमाओंको समझनेका कहीं प्रयास नहीं किया है। वे स्वयं अपनी काव्यकी परिभाषाके आधारपर विचार करते हैं जो स्वतः अतिव्याप्ति दोषसे दूषित है। डॉ॰ राकेश उनकी काव्य-विषयक परिभाषाओं को अस्वीकार कर सकते हैं पर उनके सिद्धान्तोंकी मनोवैज्ञानिक आधार पर व्याख्या करनेके लिए उनको दृष्टिमें रखना आवश्यक था। डॉ॰ राकेश

न आचार्यके मतोंको उनकी मूल प्रक्रियामें समझा है इसमें भी मुझे पूरा सन्देह है। वे भट्ट लोल्लटके उत्पत्तिवादके 'अनुसन्धान बलात्' का जिसे पिछले आचार्योंने आरोपके रूपमें स्वीकार किया है किस प्रकार भ्रम मानते हैं। डॉ॰ राकेशका आधार अवश्य भ्रममूलक है। शंकुके आचार्यों ने शुक्ति-रजत रज्जु-सर्प-द्वारा (डॉ॰ राकेशने यह लोल्लटका मत माना है) आरोपवादको स्पष्ट किया है। डॉ॰ राकेशने 'रज्जुमें सर्पका भ्रम' ऐसी व्याख्या की है जब कि आचार्योंके मतमें सादृश्यके कारण रज्जुमें सर्प के आरोप (मानसिक) की बात ही कही गयी है। इसी प्रकार उन्होंने चित्रतुरग न्याय (श्री शंकुक) का प्रत्यक्ष-बोध (पर्सेप्शन) के आधार पर समझानेका प्रयास किया है। सच बात तो यह है कि उन्होंने समस्त काव्य (नाट्य) वस्तुको प्रत्यक्ष-बोधके आधारपर ही समझनेका प्रयास किया है। इस मूल भ्रमके कारण व साधारणीकरण अलौकिक संकल्प विकल्प शून्यता आदि किसीके भी मर्म तक नहीं पहुँच सके हैं। यह साधारण मनोविज्ञानकी बात है कि काव्य वस्तुको हम प्रत्यक्ष-बोधके आधारपर न मानकर कल्पना-ग्रहीत स्वीकार करते हैं। जिस काव्यात्मक उत्सुकता (इन्टरेस्ट) को डॉ॰ राकेशने स्वीकार किया है उसका आचार्योंने अपनी काव्य-परिभाषामें वैचित्र्यके रूपमें ग्रहण किया है परन्तु आपने जो उसे ही एक मात्र तत्त्व माना है उससे एक ओर काव्य रूपोंमें भावोन्मेषपूर्ण चित्रपटों और नटोंकी बाजीगरीका समावेश हो जायेगा दूसरी ओर पाठक या प्रेक्षकमें वे सभी धर्म आ जायेंगे जिनको आचार्य संस्कृत भावक नहीं मानते हैं। इस प्रकार डॉ॰ राकेशका यह अध्ययन हमको इस दिशामें एक पग आगे न बढ़ाकर भ्रमम डालता है। इनके मतोंकी विस्तृत विवेचनाकी यहाँ न आवश्यकता है और न उपयोगिता ही।

रस भावनात्मक प्रक्रियामें स्थायी भावके उद्बोधनकी स्थितिके रूपमें

भरत मुनिने रस-निष्पत्तिके लिए विभाव, अनुभाव तथा संचारियोंके संयोगको स्वीकार किया है। उन्होंने काव्यके पाठक या नाटकके प्रेक्षकके मानसमें इस रस-निष्पत्तिकी स्थितिका रूप स्पष्ट नहीं किया है। पर उनकी व्याख्यासे यह स्पष्ट है कि उनके सम्मुख ही मानसकी भावनात्मक प्रक्रिया (इमोशनल टेण्डेन्सी एण्ड एक्सप्रेशन) का रूप स्पष्ट था। और यह रूप आधुनिक मनोविज्ञानसे अपनी प्रक्रियात्मक स्थितिके विस्तारमें समान है। इस वास्तविक मानसिक घटनाको परम्परासे सभी आचार्योंने स्वीकार किया है। कुछ आधुनिक विद्वानोंने आचार्यों-द्वारा निर्दिष्ट स्थायी भावोंको स्थायी मनोवृत्तियाँ (सेण्टीमेण्ट्स) के रूपमें समझनेका भ्रम किया है। विचार करनेसे यह सत्य नहीं लगता क्योंकि उसमें बहुत-सी उलझनें पड़ जाती हैं। आगे चलकर स्थायी भाव वासना रूपसे मानव मनमें स्थित है यह बात साधारणीकरणकी व्याख्यामें और भी स्पष्ट की गयी है। इन सबसे यही सिद्ध होता है कि ये स्थायी भाव सहज वृत्तियों (इंस्टिंक्ट्स) के संस्कारके रूपमें मानवमें स्थित हैं, भावनात्मक प्रक्रिया इन्हींकी ओर संकेत करती है। इस विषयमें मनोविज्ञानका नवीनतम मत यही है। आचार्य जब कहते हैं कि रति आदि भाव वासना रूपमें मानवके संस्कारमें स्थित हैं, तो उसका मनोवैज्ञानिक अर्थ यही है कि मनोवृत्तियोंके आधारपर मानव मनोभावात्मक प्रक्रियाका अनुभव ज्ञान ग्रहण करता है। फिर मनोभावात्मक प्रक्रियाकी घटनामें विभाव, अनुभूति तथा क्रियाओंका नियम संयोग आजका मनोविज्ञान स्वीकार करता है, उनकी व्याख्या हमको आचार्योंके द्वारा प्रतिपादित विभावादिमें मिल सकती है। मनोविज्ञान मनोभावनाकी प्रक्रियामें वस्तु-जगत्के प्रत्यक्ष बोध मानसिक इच्छा-शक्ति तथा सहचारी भावों और शारीरिक अनु-

भावका संयोग स्वीकार करता है। इस मानसिक घटनामें इन्द्रिय-बोध (सम्वेदना) के विरुद्ध वस्तुका प्रत्यक्ष-बोध मानसिक है, यद्यपि वस्तुकी अपेक्षा इसमें अस्वीकार नहीं की जा सकती। इस प्रकार वस्तु-स्थिति (प्रत्यक्षके स्तरपर भी) हमारी भावनात्मक प्रक्रियाकी घटनाका कारण-हेतु वैज्ञानिक अर्थोंमें स्वीकार नहीं की जा सकती। और अनुभाव भी उसके ज्ञापक-हेतु (भाव-स्थितिके परिणाम) नहीं हैं। इस सारी प्रक्रियाकी घटनामें इच्छा-शक्तिकी प्रेरणा स्वीकृत है जो उस निश्चित अभिव्यक्तिका स्वरूप प्रदान करती है। अब यदि हम आचार्यों-द्वारा गृहीत विभावोंपर विचार करें तो उनके अन्तर्गत आलम्बन तथा उद्दीपनके रूपमें सम्पूर्ण वस्तु अपनी स्थिति-परिस्थितिमें आ जाती है। और क्योंकि वे इन विभावोंका मानसिक घटनामें संयोग मानते हैं इस कारण इससे यह प्रत्यक्ष है कि उन्होंने अपने ढंगसे विभावोंको मानसिक प्रक्रियामें (विशेष कर भावनात्मक व्यापार विषयमें) वस्तु-परक न मानकर मनस्‌परक ही स्वीकार किया है। इन्द्रिय-बोध (सम्वेदन) से नितान्त भिन्न यह प्रत्यक्ष-बोध (पर्सेप्शन) (जिसके साथ प्रत्यभिज्ञान (कन्सेप्शन) सदा लगा रहता है) ही मानसमें प्रतिफलित होता है और इस कारण यह वस्तु-जगत् से सम्बन्धित होकर भी मनस्‌-परक है। मैक्डूगल इस मनस्‌-परक पक्षको भावनात्मक घटनाकी विशेषता स्वीकार करते हैं। इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि आचार्योंने जो विभावोंको एकका व्यावहारिक रूपसे कारण माना है तत्त्वतः नहीं यह वैज्ञानिक दृष्टि उचित है।

जैसा कहा गया है, आधुनिक मनोविज्ञान भावनात्मक प्रक्रियामें इच्छा शक्तिकी प्रेरणाको महत्त्वपूर्ण स्थान देता है। इसकी व्याख्याके अन्तर्गत आचार्योंने इसका भी विश्लेषण किया है। परम्परामें अनुभावके तीन भेद किए गये हैं — कायिक मानसिक और सात्त्विक। इनपर विचार करनेसे हम देखेंगे कि सात्त्विक अनुभाव शारीरिक विकारोंसे सम्बन्धित हैं पर कायिक और मानसिक अनुभावोंको मनोवैज्ञानिक अर्थ-सिद्धिके लिए हम

इच्छा-शक्तिकी मानसिक और शारीरिक अभिव्यक्तियाँ स्वीकार कर सकते हैं इसलिए अनुभावोंको भावके पीछे चलनेवाले व्यवहारमें कहा जाता है। मैकडूगल आदि मनोवैज्ञानिकोंके अनुसार भी इस मानसिक भावात्मक घटनामें इच्छा-शक्ति शारीरिक तथा विशुद्ध मानसिक क्रियाओंमें अपना लक्ष्य खोजती है। यही नहीं इस विकीर्णताका रूप हमको व्यभिचारी भावोंके संचरणमें भी मिलता है, जिनको मनोवैज्ञानिक अभ्यन्तरित भाव कहते हैं। चिन्ता उत्सुकता आशा निराशा आदिका सम्बन्ध हमारी भाव-स्थिति (इमोशनल टेण्डेन्सी) से इच्छा-शक्तिकी प्रेरणा-द्वारा निर्धारित होता है। आचार्योंने संचारियोंकी जो संख्या और रूप निर्धारित किया है वह बहुत दूर तक वैज्ञानिक दृष्टिसे सम्मत नहीं है। पर संचारियों-की व्यापक प्रवृत्तिका विश्लेषण मनोवैज्ञानिक है। संचारी भावोंमें दो प्रकारके भावोंका उल्लेख है प्रथम तो स्थायी भाव ही हैं और दूसरे जिनको हमने अभ्यन्तरित भाव माना है। स्थायी भाव संचारी भावोंकी कोटिमें तब आते हैं जब वे किसी अन्य स्थायी-भावके उद्बोधनमें सहचरण करें। मनोविज्ञानकी भाषामें यह भावोंका सम्मिश्रण है या माध्यमिक स्थिति है। दूसरे प्रकारके संचारियोंमें वे आते हैं जिनको ऊपर अभ्यन्तरित कहा गया है। वे भावनात्मक घटनामें इच्छा-शक्तिके उद्देश्यात्मक अथवा भविष्योन्मुखी प्रयास इनका सम्बन्ध है। कदाचित् इसीलिए आशा निराशा चिन्ता विश्वास शंका धृति खेद पश्चात्ताप हर्ष आदिको काव्य-शास्त्रमें संचारी माना गया है क्योंकि इनकी गणना अभ्यन्तरित भावोंमें है। मैकडूगलने प्राथमिक भाव (स्थायी भाव) और अभ्यन्तरित भावोंमें जिन चार भेदोंका उल्लेख किया है, उनमें आचार्यों-द्वारा प्रतिपादित स्थायी भाव (जो प्राथमिक भावके मूलमें है) और संचारी भावोंका सम्बन्ध ही प्रकट होता है। (१) प्राथमिक मनोभाव किंवा वस्तुस्थितिक निकट परिणामक चिन्तनसे उत्पन्न होते हैं इनमें न किसी प्रयत्नकी पूर्व कल्पना स्वीकृत है और न क्रिया प्रक्रियाका निश्चय ही सम्मिलित है।

अभ्यन्तरित भावोंमें किसी प्रेरणाकी मूल कल्पना निहित है और वे उससे प्रभावित भी होते हैं। इसमें वस्तुगत सहीम परम्परा सहायक होती है। (२) प्राथमिक भावोंके आधारमें जैसा कहा गया है मूल प्रवृत्तियाँ (इन्स्टिंक्ट्स) स्थित हैं और उन्हींको वे सक्रिय करते हैं (स्थायी भाव)। अभ्यन्तरित भावोंका ऐसा कोई आधार नहीं है, वे मानसिक प्रक्रियाके विकाससे उत्पन्न होते हैं। (३) प्राथमिक भावमें (मूल वैज्ञानिक रूपमें नहीं) एक प्रकारकी शक्ति कही जा सकती है क्योंकि इसमें किसी वह स्पष्ट भार प्रेरणा रहती है पर अभ्यन्तरित भाव इसकी प्रक्रियामें सहायक मानसिक परमाणु मात्र हैं। (४) प्राथमिक भाव किसी विशेष वस्तुस्थितिके सम्बन्धमें मनोवृत्ति (सेन्टीमेन्ट) रूप हो जाते हैं पर अभ्यन्तरित भावोंके विषयमें यह सम्भावना नहीं होती। इस विवेचनासे आचार्योंकी रस-सम्बन्धी भावनात्मक प्रक्रियाका मनोवैज्ञानिक आधार स्पष्ट हो जाता है।

आचार्य भट्ट लोल्लटका आरोपवाद

लौकिक जीवनके वास्तविक स्थायी मनोभावोंकी प्रक्रियामें रस शब्द की व्याख्या की गयी है और उसके लिए मनोवैज्ञानिक आधार ढूँढ़नेका प्रयास किया गया है। परन्तु इस शब्दका शास्त्र तथा काव्यके सम्बन्धमें प्रयोग प्रचलित है यहाँ उसकी वास्तविक प्रक्रियाके रूपमें क्यों प्रयोग किया गया है? वास्तवमें भट्ट लोल्लटने 'रस' शब्दका प्रयोग इसी अर्थमें किया है। वे स्पष्ट कहते हैं कि 'रस' मुख्यतया अनुकार्यमें उपचित होता है। इस प्रकार 'रस' का ऊपर जिस अर्थमें लिया गया है वह आचार्य लोल्लटके अनुरूप अवश्य है। इस विषयमें भ्रम होनेकी सम्भावना उस समय उत्पन्न होती है जब अन्य आचार्य रस-निष्पत्तिके रूपमें उस काव्या-स्वादन युक्त प्रेक्षक या पाठकमें स्वीकार करते हैं। यह विषय आगे आयेगा यहाँ हम स्पष्टताके लिए रसको वास्तविक भावनात्मक प्रक्रियाके

रूपमें मानते हैं और उसकी निष्पत्ति पाठक या प्रेक्षकमें स्वीकार करते हैं। अब हम भट्ट लोल्लटके निष्पत्तिसम्बन्धी सिद्धान्तपर विचार करते हैं। अभिनव भारती में इनके मतके विषयमें आता है कि 'रस रामादि की अनुरूपताके अनुसन्धानके बलसे अनुकर्ता (नटों) में भी उपचित होता है'। आचार्यके मतसे प्रेक्षक अभिनेताओंके कला-चातुर्यके कारण रामादि पात्रोंकी अनुरूपताके अनुसन्धानके बल अर्थात् आरोपसे रसकी कल्पना करता और इस प्रकार रसानुभूति स्वयं प्राप्त करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रेक्षक (पाठक) पात्रोंकी भाव स्थितिको अभिनेताओंपर आरोपित करनेकी प्रक्रियामें इस अनुभूतिको प्राप्त करता है। कार्य-कारण का आरोप तो तार्किक है इस कारण हम यहाँ इनके विरुद्ध मनोवैज्ञानिक आक्षेप ही प्रस्तुत करेंगे। पहली बात यह है कि प्रेक्षक आरोप किस प्रकार करता है? वह पात्रोंकी घटना-स्थितियोंसे स्वयं परिचित नहीं है और फिर आरोपके लिए स्मृति-संयोगका आधार चाहिए। दूसरा प्रश्न है कि इस आरोपसे प्रेक्षकमें सघन भावनात्मक रसकी प्रक्रिया कैसे सम्भव हो सकती है? आरोप मात्रसे अन्यके जीवनकी घटना अपने जीवनमें प्रतिष्ठित कैसे हो सकती है? वास्तवमें जिन मौलिक प्रश्नोंको यहाँ मनोविज्ञानके आधारपर उठाया गया है उन्हींके समाधानके लिए बादके आचार्योंने अपने मतोंको विकसित किया है।

यहाँ प्रसंगके अनुरूप हम आरोप सिद्धान्तमें मनोवैज्ञानिक सत्यकी सम्भावनाओंपर विचार करना चाहेंगे। साथ ही एक महत्त्वपूर्ण बातकी ओर ध्यान आकर्षित करना भी आवश्यक है। ये सभी आचार्य काव्य (दृश्य भी) में कथा-वस्तुका उल्लेख करते हैं और उसकी दृष्टिसे विचार करते हैं परन्तु साथ ही काव्य-वस्तुकी कल्पना करनेवाले कविको किसीने स्वीकार नहीं किया है। काव्यके इस महत्त्वपूर्ण पक्षकी अवहेलनासे जैसे काव्य-व्यापारसम्बन्धी अन्य समस्याओंमें उलझनें उत्पन्न होती हैं वैसे ही रस-सिद्धान्तके मार्गमें भी। जब आचार्य कहते हैं पूर्ण उस समय

उन्हें कहना चाहिए काव्य-वृत्त जिसकी कल्पना कवि करता है। कविको जीवन-वृत्तसम्बन्धी कल्पनाका आधार अवश्य है पर इस अवस्थामें हम कविकी परम्पराका स्मृतियाँ तथा विचारोंके स्वतन्त्र समन्वय-रूप कल्पनाके आधारपर समझ सकेंगे। कथा-वस्तु (वृत्त) को उसने अपनी संस्कारजन्य कल्पनासे प्रस्तुत किया है। इस प्रकार जिन चरित्रोंको उसने स्थान-काल-प्रसंगकी सीमामें बाँधा है वे वास्तवमें उसके अनुभव जगत्से गृहीत हैं। फिर रचनामें चित्रित करते समय उसने उनकी अनेक स्थितियोंकी कल्पना की। और इस सारे चरित्र-चित्रणके आधारमें उसके अपने संस्कारोंका अनुभव काम करता है। यह काल्पनिक वृत्त (ऐतिहासिक भी इसी रूपमें) काव्यमें वर्णित या नाटकमें अभिनीत होता है। इस प्रकार जब आचार्य कहते हैं कि भावकी स्थिति वास्तवमें चरित्रमें है वे मनोविज्ञानके सत्यका उल्लेख करते हैं पर काव्यात्मक भावनाकी वास्तविकतासे अपरिचित भी हैं। कवि अपनी प्रतिभासे जो उद्भावना करता है, उसकी वास्तविकतापर हम सन्देह नहीं कर सकते। इसी प्रकार अभिनेताओंका प्रश्न है। वे अभिनय किस आधारपर करते हैं? मौलिक समान तो वे परिचालित नहीं हो सकते। अभिनयके सत्य तक पहुँचनेके लिए अभिनेताओं-का पात्रोंके मनोभावोंके विचार परिस्थितियोंकी सापेक्षतासे अपने अनुभव और संस्कारके आधारपर ग्रहण करना होता है। अभिनय केवल हाव-भाव दिखानेकी क्रिया मात्र नहीं है। वास्तवमें अभिनेताका नाटककारकी सब स्थिति तक पहुँचना होता है, जिसमें उसने रचना की है। इस प्रकार सफल अभिनेता दर्शकोंके समक्ष रसको प्राप्त कर सकता है। अभिनय-द्वारा प्रदर्शक जो आरोप करता है वह कवि-कल्पनाका है और उसके अभिनयका अर्थ ग्रहण करता है। इस कवि-कल्पनाको वह अपने संस्कार तथा अनुभवके आधारपर विकसित कर अपनी कल्पनासे ग्रहण करता है। भट्ट लोल्लटके आरोपवादको हम इसी प्रकार समझ सकते हैं। आरोपके लिए प्रेक्षककी मन-स्थितिमें पात्रोंकी एवं कल्पनाके लिए

आधार निश्चित है तथा इस प्रक्रियाकी प्रेरणा-शक्ति अभिनय (काव्य)-
का सौन्दर्य-बोध है ।

आचार्य श्री शंकुकका अनुमितिवाद

जैसा कहा गया है भट्ट लोल्लटके सिद्धान्तमें सत्यका अंश है परन्तु
उसमें स्पष्टता एवं व्यापकताका अभाव है । श्री शंकुकने अपने सिद्धान्तको
कुछ अधिक मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया है । उन्होंने वास्तविक पात्रमें
भावात्मक प्रक्रिया-द्वारा स्थायी भावका उद्बोधन माना है और प्रेक्षक-
द्वारा अभिनतामें अनुकरणका अनुमानसे वही भाव स्थिति रस-रूपमें
आस्वादित होती है ऐसा स्वीकारा है । यहाँ जैसा कह आया हूँ इसकी
दो स्थितियाँ स्वीकार की गयी हैं जो मनोविज्ञानसे सिद्ध भी हैं एक
साधारण जीवनमें भावनात्मक प्रक्रियाका उद्बुद्ध घटना और दूसरी काव्या
नुभूतिमें रस-निष्पत्ति । मैं पहलीको रस-स्थिति और दूसरीको रस निष्पत्ति
की स्थिति मानना अधिक वैज्ञानिक मानता हूँ । इसके अतिरिक्त श्री
शंकुकने चित्रतुरग न्यायसे अभिनयको (काव्यका रूप उनके सामने नहीं
था) अनुमितिबोध माना है जो उनके विचारसे प्रत्यक्ष-बोधकी चार
धारणाओंसे भिन्न है । यद्यपि इस मतमें भी मनोवैज्ञानिक व्याख्याका पूर्ण
आधार नहीं है पर सत्यकी दिशामें कुछ आगे बढ़ गया है । वास्तवमें
चित्रतुरग न्यायमें यथार्थतः अभिनय (काव्य)-का पर प्रत्यक्ष और स्मृतिसे
संयुक्त कल्पनाका आधार स्वीकार किया है । चित्रांकित तुरग केवल तुरगका
चित्र-रूपमें प्रत्यक्षबोधका विषय नहीं है (जैसी की शंकुकी स्थापना है)
उसमें तुरगत्वके साथ जो कल्पना और स्मृतिका संयोग है उसकी उपेक्षा
नहीं की जा सकती । अभिनय-सौन्दर्यमें चित्रतुरग न्याय न भी लगता हो
(उसमें) पर इसका मनोवैज्ञानिक मर्मका प्रतिपादन अवश्य होता है ।
अभिनय सौन्दर्य (काव्य सौन्दर्य) के द्वारा प्रेक्षक या पाठकके मनपर
जो प्रभाव पड़ता है, वह प्रत्यक्ष-बोधसे नहीं व्यापक है । जिस प्रकार

आरोपकी व्याख्यामें कहा गया है कि प्रेक्षक आरोप करनेके लिए अपने अनुभव और संस्कारोंका सहारा लेता है। यही बात यहाँ अनुमानके विषय में भी कही जा सकती है कि प्रेक्षक अपनी कल्पनाके आधारपर नाटकीय घटना (नाटककारकी कल्पनाका) अनुमान कर सकेगा।

यह सहज था कि श्री शंकुककी व्याख्याकी संकुचित सीमामें अनेक प्रश्न उठते। मनोविज्ञानकी दृष्टिसे यह आरोप महत्त्व रखता है कि यदि प्रेक्षक आश्रयकी मन स्थितिसे तादात्म्य स्थापित करके रसकी प्रतीति करता है तो उस आश्रयके समान अपनी भाव-स्थितिमें दुःख-सुख दोनोंका अनुभव होना चाहिए। पहली बात तो यह है कि इस आक्षेपके लिए श्री शंकुकके मतमें स्थान नहीं है क्योंकि उसमें आश्रयसे तादात्म्यका उल्लेख नहीं किया गया है। दूसरे यदि व्यापक भावनात्मक घटनाको प्रेक्षक सत्य समझकर (भ्रमसे) अपने अस्तित्वसे उन घटनाओंको सम्बन्धित मान ले तो वह आचार्यके मतसे संस्कृत भावज्ञ प्रेक्षक या पाठक नहीं समझा जायगा। दूसरा आक्षेप यह है कि विभावादि जो अभावात्मक सम्बन्धित हैं वे प्रेक्षकके अनुमानके विषय भी कैसे होंगे? यहाँ अनुमानको स्मृतिसे सम्बन्धित पर-प्रत्यक्षात्मक रूपमें स्वीकार किया गया है। यदि मनोविज्ञानकी दृष्टिसे हम आलोचन करना चाहें तो कह सकते हैं कि श्री शंकुक अपने मतमें स्मृति और अनुमान तो स्वीकार करते हैं, पर कल्पनाकी स्थापना नहीं कर पाते। भट्टनायकने आचार्य शंकुकके मतकी अपूर्णताकी ओर ध्यान देते हुए अपने मत भोगवादकी स्थापना की। वे शब्दकी अभिधा शक्तिके अतिरिक्त दो अन्य शक्तियोंकी कल्पना करते हैं। उनमें भावना शक्ति साधारणीकरण करती है और भोग आस्वाद या निष्पत्ति। वास्तवमें जब हम साधारणीकरणपर विचार करेंगे तो प्रत्यक्ष हो जायगा कि आचार्यको भावकत्वकी स्थापना करनेकी क्यों आवश्यकता पड़ी और मनोविज्ञानकी दृष्टिमें इसका क्या आधार और उपयोग है।

आचार्य भट्टनायकका भोगवाद

स्थायी भावकी उद्बुद्ध स्थिति और रस-निष्पत्तिके अन्तरको आचार्य भट्टनायक स्वीकार करते हैं। यहाँ यह देना आवश्यक है कि भट्टनायकने अपने मतको नाटक और काव्य दोनोंको दृष्टिमें रखकर स्थापित किया है फिर भी नाटकका विचार उनमें प्रमुख समस्या है। अब हम देखेंगे कि आचार्यकी भावना और उसके द्वारा प्रतिपादित साधारणीकरणका क्या तात्पर्य है और इस विषयमें मनोविज्ञानका आधार किस सीमा तक स्वीकृत है। वे कहते हैं कि काव्य और नाटकमें कलात्मक (सौन्दर्य) प्रयासोंके अभिप्रायसे उनका सामान्य अर्थ ज्ञात होता है जो सौन्दर्य है। इन अभिप्रायसे आचार्यका तात्पर्य परम्परा-ज्ञान (काव्यवर्णित वस्तुका पर प्रत्यक्ष) है। इस ज्ञानके आधारपर रसकी व्याख्या करनेमें असुविधा होती है और मनोवैज्ञानिक भ्रमकी सम्भावना है जैसा हम इसकी व्याख्याओंमें देख चुके हैं। ऐसी स्थितिमें वे भावना-शक्तिका विचार करते हैं उनके अनुसार इस शक्तिसे एक ओर प्रेक्षक निजत्व मोहकी स्थितिसे मुक्त हो जाता है और दूसरी ओर इसीसे विभावादि उसके मानसमें साधारणीकृत स्थितिमें प्रत्यक्षीभूत होते हैं इस प्रकार प्रेक्षकमें वह रसको आस्वादन करता है। बादके आचार्य भावन भावोंका अपना गुण मानकर भट्टनायककी इस कल्पनाको व्यर्थ स्वीकार करते हैं। इस अन्तिम अर्थके लिए निश्चय ही भावकत्वकी कल्पना व्यर्थ होगी। परन्तु पहली दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं एक निजत्व मोह निवारण और दूसरी साधारणीकरण। हम कह चुके हैं किसी भावात्मक प्रक्रियामें इच्छा-शक्तिका स्थान रहता है। यह भावना व्यापार यहाँ आचार्य-द्वारा इच्छाके रूपमें स्वीकृत है। इस सीमातक मनोविज्ञान आचार्यके साथ है। प्रेक्षकके मनमें नाटकीय कथावस्तुके प्रति जो उत्सुकता है वह इच्छा-शक्तिकी प्रेरणासे ही सम्भव है। और यह इच्छा-शक्ति न तो नाटकीय विभावोंके प्रति

देशकालातीत है और न अनुभावोंसे सम्बन्धित है, यह तो कला-वस्तु (सौन्दर्य) के प्रति उत्सुक और इच्छुक है (इसीके कारण डॉ० राकेशने भावकत्व सम्पन्न काव्यानुभूतिकी भावनात्मक प्रक्रियाको कल्पनात्मक उत्सुकता मात्र माना है)। इस प्रकार भावनाका यह व्यापार गृहीत है, परन्तु साथ ही यह भी स्वीकार किया जायेगा कि यह नाटकीय प्रदर्शन (अपने सौन्दर्य बोधके स्तरपर और भी) न तो जीवनका प्रत्यक्ष-बोध है (पर प्रत्यक्ष भी) और न स्मृति-संधान। इसी आधारपर इन आचार्योंने उत्पत्तिवाद और अनुमानवादको अस्वीकार किया है। इस कल्पनात्मक मानसिक पटलपर प्रत्यक्ष-बोध (काव्यगत परम्परा) से हम कल्पनात्मक सृष्टि कर लेते हैं जिसमें स्मृति और अनुभवोंका आधार अवश्य है पर संघातका क्षेत्र मुक्त है। इसको आचार्योंने भोग-शक्ति माना है और इस अनुभव-स्मृतिसे विलक्षण (भिन्न) स्वीकार किया है। साथ ही भावकत्वशक्तिका जो व्यापार ऊपर स्वीकृत हुआ है उससे भी यही सिद्ध होता है।

पहले हम भोग-शक्तिको लेते हैं। इसमें दो मानसिक स्थितियोंका समन्वय हुआ है, पहले प्रकार प्रत्यक्ष-बोधको इस शक्तिसे कल्पनात्मक स्तर मिलता है, दूसरे इसीसे अनुभूत्यात्मक (इस्थेटिक) वैचित्र्य (चमत्कार) के रूपमें आस्वादनका आनन्द मिलता है। इस कल्पनात्मक स्तरकी स्थिति निश्चय ही प्रत्यक्ष जगत्से भिन्न है (विलक्षण)। रसास्वाद-सम्बन्धी दार्शनिक व्याख्याओंको यदि हम मनोवैज्ञानिक रूप दें तो इन्हें मुक्त-स्मरण (सोच पैदा करने मानसिक पक्ष) के रूपमें कल्पनासे सम्बन्धित मानेंगे। काव्य (नाटक) की कल्पनात्मक स्थितिमें प्रेक्षक (जो सहृदय और संस्कृत भी होता है) अपनी भावनात्मक प्रक्रियामें भी सुख-दुःखसे भिन्न अनुभूति प्राप्त करेगा। आगे भावना-शक्ति (इच्छा शक्ति) के साथ यह अनुभूति चमत्कार-सौन्दर्यमें अधिकाधिक बढ़ेगी। प्रश्न उठ सकता है कि यदि यह अनुभूति सुख-दुःखसे भिन्न है तो उत्सुकता इच्छा-शक्तिको कैसे आकर्षित करती है ? इसका उत्तर आचार्य देते हैं। एक तो जैसा हम देखेंगे

इच्छा-शक्तिकी गति ही ऐसी है और दूसरे सत्त्वगुण (सौन्दर्य-बोध) भी संकल्प-विकल्पसे हीन आनन्दमयी है और यह आनन्द स्वयं आकर्षित करता है। इसके पश्चात् भावन-शक्तिपर हम विचार करते हैं। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि कल्पनात्मक परप्रत्ययोंके प्रति वैचित्र्यके आकर्षणसे इच्छा-शक्ति प्रभावित होती है। इस इच्छा-शक्तिमें निजत्वका भाव नहीं रह सकता है। जहाँतक भावनात्मक प्रक्रियाके उद्बोधनका प्रश्न है इसको हम तटस्थ स्थिति कहेंगे पर यह तटस्थता क्रियात्मक अथवा इच्छा शक्तिसे प्रेरित है। इसलिए इच्छा-शक्तिकी इस प्रेरणाके कारण यह भाव-स्थिति इस स्थायी भावसम्बन्धी सुख-दुःखसे अलग रहेगी। इच्छा शक्तिकी प्रेरणा इस स्थितिमें वस्तु-वैचित्र्यकी ओर रहती है। साथ ही जिस कल्पनाके आधारपर प्रेक्षक या पाठक कथा-वस्तुको ग्रहण करते हैं उसमें विभावादिको स्मृतिके अनुभवात्मक संयोगसे साधारणीकृत रूपमें ग्रहण करते हैं। यहाँपर जैसा कहा गया है (डॉ० राकेश द्वारा) साधारणीकरणका अर्थ ऐसा नहीं है कि प्रेक्षक विशेष वस्तु और पात्रको साधारण वस्तु और पात्रके रूपमें स्वीकार कर लेता है। वरन् इसका मनोवैज्ञानिक आधार कल्पनाके तत्त्वोंसे सिद्ध होता है। हम प्रत्येक वस्तु-स्थिति पात्र चरित्रको एक साधारण सहज-स्थितिमें ग्रहण कर सकते हैं। इसको कल्पनाका आधार अनुभवजन्य ऐन्द्रिय बोध परप्रत्ययोंकी स्मृतिका स्वतन्त्र संयोग है। जैसा आचार्योंने कहा है अन्यथा किसी अज्ञात कथा-वस्तु आदिका अनुभव स्मृति या निश्चय हमारे लिए सम्भव नहीं है। यह कल्पनाके स्वतन्त्र संयोगोंका व्यापार ही साधारणीकरण है। इस प्रकार भट्टनायककी शक्तियोंको कल्पनामें रस-निष्पत्तिक लिए मनोवैज्ञानिक आधारको प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है।

अब हमारे सामने रस-निष्पत्तिके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न रह जाते हैं। साथ ही अभी अभिनवगुप्त पादाचार्यके मतपर विचार करना भी शेष है।

पहली बात यह है कि प्रेक्षक या पाठकमें रस-निष्पत्तिके लिए क्या मनो-वैज्ञानिक आधार है? इसका समाधान अभीतक किसी आचार्यने नहीं किया है। प्रेक्षककी कल्पना तक तो भोगवादसे सिद्ध है पर उसके लिए उसके मनमें आधार क्या है जिसका भावनाके द्वारा वह अनुभव करता है जिसको भोग-द्वारा कल्पित और आस्वादित करता है और जिस रसानुभूतिसे आनन्द प्राप्त होता है। दूसरा प्रश्न उठता है कि काव्यार्थके वैचित्र्यमें प्रेक्षकके मनकी चमत्कृत स्थितिके अतिरिक्त रस-निष्पत्तिके लिए क्या कारण है? इन दो प्रश्नोंके उत्तरके बाद हमारे सामने रस-निष्पत्तिकी पूरी मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत हो जायेगी।

अभिनवगुप्त पादाचार्य का व्यक्तिवाद

आचार्य अभिनवने ध्वनिकारका समर्थन करते हुए आचार्य भट्ट नायककी पूर्व शक्तियोंकी कल्पनापर आक्षेप किया है। उनके अनुसार रस-प्रक्रियामें भावना और भोग व्यापार तो सिद्ध हैं पर वे शब्दके व्यापार नहीं माने जा सकते। वे स्वयं शब्दकी व्यंजना-शक्तिपर निर्भर हैं। जहाँ तक मनोवैज्ञानिक अध्ययनकी बात है दोनों मतोंमें विशेष अन्तर नहीं है। उनके दृष्टि-बिन्दुओंमें अन्तर है और इसी कारण वे एक बातको दो प्रकार से कहते हैं। भट्टनायकके सामने नाटकका आदर्श अधिक प्रत्यक्ष रहता है और अभिनवगुप्तके सम्मुख काव्यका। वास्तवमें व्यंजनाके शब्दार्थको लेकर जिस मनोवैज्ञानिक सत्यकी व्याख्या की गयी है वही भट्टनायककी द्वारा शक्तियोंकी कल्पनामें नाटकीय दृष्टिसे प्रधानतया कारण निहित है। मानसिक प्रक्रियाका भोगवादमें अधिक स्पष्ट उल्लेख है। वैसे अभिनवने रूपमें प्रत्यक्ष-गौण और पर प्रत्यक्ष, कल्पनामें स्मृतिके विभिन्न संयोग और व्यंजना द्वारा कल्पनाके स्वतन्त्र संयोगोंकी (मनोवैज्ञानिक दृष्टि) व्याख्या है परन्तु इसमें भावना केवल शाब्दिक व्यापार अधिक बना दिया गया है। इस आधारपर यह व्याख्या सत्य भी है पर इसमें मानसिक ...

अन्य दो पक्षोंका अर्थात् अनुभूति पक्ष (रागात्मक) और इच्छा-शक्ति (जिजीविषा) का स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है। इस कारण भोगवादका सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक व्याख्याके अधिक निकट है। परन्तु ऊपर जिन दो प्रश्नोंको उठाया गया था उनका समाधान अभिनवगुप्तकी व्याख्यासे अवश्य हो सकेगा।

पहली बात यह है कि इसमें रस-निष्पत्तिके लिए कल्पनाकी ओर संकेत किया गया है। सामाजिकोंकी भाव-स्थितिमें वासना-रूपसे जो स्थायी भावोंका संस्कार अभिनवगुप्तने स्वीकार किया है, उसके आधारपर सामाजिक साधारणीकृत विभावादिसे भावात्मक स्थिति (इमोशनल टेन्डेन्सी)की कल्पना करनेमें समर्थ है। जिस प्रकार हम प्रत्यक्ष-भावोंके संचित अनुभव कोषके आधारपर वस्तु-स्थितिकी स्मृति और कल्पना करते हैं उसी प्रकार वासनाम स्थायी भावोंके संचित संस्कारोंके आधारपर प्रेक्षक या पाठक भावनात्मक स्थितिकी कल्पना करनेमें सफल होता है। इस प्रकार हमारे पहले प्रश्नका समाधान हो जाता है। परन्तु यहाँ एक सम्भावित शंकाका समाधान कर देना उचित है। जब कल्पनामें भावनात्मक स्थितिका प्रत्यक्षीकरण होता है, तो उसमें केवल आनन्दकी अनुभूति क्यों होती है ? पहली बात तो यह है कि कवि या नाटककारके (जिनका उल्लेख हमारे काव्य-शास्त्र नहीं करते) मनमें कथा-वस्तुकी कल्पना इसी आनन्दानुभूतिके साथ उपस्थित होती है और प्रेक्षक (पाठक) इसीका पुनः प्रत्यक्षीकरण करता है। इसके अतिरिक्त कलात्मक कल्पना और साधारण कल्पनामें जो भेद है, उससे उनकी अनुभूतिमें भी अन्तर पड़ जाता है। काव्यकी कल्पनामें प्रेक्षकमें वास्तविक जीवनसे सम्बन्धित भावनाओंका उद्बोधन नहीं होता। भारतीय काव्यमें व्यक्तिगत विषयपरक गीतियोंका अभाव है जिनमें कवि व्यक्तिगत सुख-दुःखकी व्यंजना करता है। यह तथ्य यहाँ महत्त्वपूर्ण है। जो कवि इस प्रकारकी व्यंजना करता है उसे अपनी अभिव्यक्तिका सौन्दर्य सुख मिलता है और पाठककी साधारणीकृत स्थितिमें

रसानुभूति मिलती है। हमारे आचार्योंने काव्यसे (नाटकसे) तादात्म्य करनेवाले अर्थात् उसे वास्तविक जीवनकी घटनाओंके रूपमें मान लेनेवालेको संस्कृत मानवकी कोटिमें माना भी नहीं। इसके विपरीत साधारण जीवनकी कल्पनाका अपने जीवनका सम्बन्ध होता है और इस कारण प्रेक्षक-पाठक उसके प्रति अपनी इच्छा-शक्तिको निरपेक्ष नहीं कर पाता जो काव्यकी विशेषता है।

दूसरी बात जिसकी ओर अभिनवगुप्तने संकेत किया है, वह यह है कि *साधारणीकरणकी प्रक्रिया कथावस्तुको कल्पनामें ग्रहण करनेमें ही सहायक* नहीं होती वरन् प्रेक्षक-पाठक भावनात्मक स्थितिको अपने स्थायी भावोंकी साधारणीकृत स्थितिमें ही ग्रहण करता है। साधारणीकरणका अर्थ जैसा ऊपर बताया गया है उसी अर्थमें समझना चाहिए। यहाँ आचार्यने दोनों पक्षोंमें साधारणीकरणको लगाकर स्थितिको अधिक स्पष्ट कर दिया है। एक ओर उससे कल्पना करनेके लिए आधार मिलता है तो दूसरी ओर पाठकके मनमें भावनात्मक स्थिति साधारणीकृत स्थायी भावोंकी ओर संकेत करती है। अर्थात् यह भावनात्मक स्थिति पूर्व-संचित स्थायी भावोंके व्यापक आधारपर सम्भव होती है। इसमें हमारे दूसरे प्रश्नका उत्तर भी मिल जाता है। अब स्पष्ट हो जाता है कि काव्य (अभिनय भी) के अध्ययनमें पाठक (प्रेक्षक) के मनमें कल्पनाके सहारे भावनात्मक स्थिति व्याप्त हो जाती है जो काव्यके सौन्दर्य चमत्कारके साथ आनन्दानुभूतिसे समन्वित हो जाती है। पहले ही कहा गया है कि पाठककी इच्छा-शक्ति निरपेक्ष क्रियाशीलतामें इस समस्त मानसिक घटनाका अनुभूति-पक्ष है और भावनात्मक स्थितिकी कल्पना उसका आधार है। आचार्योंने कार्य-कारण न स्वीकार कर रस-निष्पत्तिको एक पूर्ण मानसिक घटना माना है। यहाँ अलौकिक (काव्यास्वाद) शब्दको मनोवैज्ञानिक अर्थमें लौकिक प्रत्ययोंसे भिन्न काल्पनिक मानना ही आचार्यका अभिप्राय है। आस्वादको रस निष्पत्तिमें स्वीकार करके आचार्यने काव्य-सौन्दर्यके उद्बोधमें इच्छा

छवियोंका सुचेष्ट होना स्वीकार किया है। संकल्प-विकल्प रहित मान कर काव्य-द्वारा व्यंजित भावनात्मक स्थितिको कल्पनात्मक सौन्दर्यसे समन्वित किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य अभिनव तक रस सिद्धान्त पूर्ण मनोवैज्ञानिक आधार प्राप्त कर चुका था।

परिशिष्ट :

भट्टलोल्लटप्रभृतिकी व्याख्या

भट्टलोल्लट आदिने व्याख्या की है कि विभावादिका स्थायी भावसे संयोग होनेपर रसकी निष्पत्ति होती है। इस प्रकार विभाव चित्तमें स्थायी रूपसे रहनेवाली वृत्तिकी उत्पत्तिमें कारण है। ऐसा कुछ लोगोंका कथन है अनुभाव रस (स्थिति) से उत्पन्न नहीं माने जा सकते। क्योंकि इस स्थितिमें रसके कारण रूपमें अनुभावोंकी गणना नहीं होगी वरन् केवल भावोंकी होगी। ये अनुभाव और संचारीभाव चित्तवृत्तिके रूप होनेके कारण एक ही समयमें स्थायीभावके साथ अनुभूत नहीं होते फिर भी स्थायीभाव वासना रूपमें उनके संयोगसे अभिप्रेत है। उदाहरणके लिए व्यंजन आदि में भी कुछ रस स्थायीभावकी भाँति वासनामें स्थित है और कुछ व्यभिचारी भावोंकी तरह उद्भूत होते हैं। इसलिए विभाव और अनुभावादिसे पुष्ट (उपचित) होकर स्थायी भाव रस-रूपमें उद्भूत होता है। केवल स्थायीभाव मात्र उपचित नहीं होता। यह रस दोनोंमें रामादि वास्तविक अनुकार्योंमें मुख्य रूपसे और रामादिकी अनुरूपताके अनुसन्धानसे उसके अनुकर्ता नटमें विद्यमान होता है।

आक्षेप

भट्टलोल्लटके अनुसार विभाव अनुभाव तथा संचारीभाव आदिके संयोगके बिना स्थायीभावका स्वरूप अवगत नहीं होता। इस सम्बन्धमें कारण रूप विभावादिको कार्य रूप (रस) उद्बुद्ध स्थायीभावसे पृथक्

मानना चाहिए। इस दशामें श्री शंकुकका आक्षेप है कि कारणकी विविधता और विषमताके फलस्वरूप रसों और भावोंके भेद असंख्य हो जायँगे और इस प्रकार रसके स्तर अनन्त हो जायेंगे।

मनोविज्ञानकी दृष्टिसे इस आक्षेपकी स्थिति इस प्रकार रखी जा सकती है। आचार्य लोल्लट विभावादिको रसका कारण मानते हैं। यहाँ रसका प्रयोग वास्तविक (भावात्मक) स्थितिके अर्थमें किया है। और इस स्तरपर एक सीमा तक कहना ठीक है। आधुनिक मनोविज्ञान विभाव को भाव-प्रक्रियाका कारण एक सीमातक स्वीकार करता है। (प्रथम कारणके रूपमें) पर साथ ही अनुभावों और संचारियोंकी विषम-संघात्मक स्थितिको भी मनोभावमें स्वीकार करता है और सारी मनःस्थितिके लिए इनको भी कारण कहा जा सकता है। आचार्यकी व्याख्यामें मनोवैज्ञानिक आधार है।

शंकुककी व्याख्या

विभावादि कारण अनुभावादि कार्य व्यभिचारी भावादि संचारियों-के द्वारा प्रयत्नपूर्वक अर्जित होनेपर वास्तविक रामादिगत स्थायी भावकी स्थिति, अनुमानके बलसे अनुकरण रूपमें अनुकर्तामें कृत्रिम होकर भी मिथ्या न भासते हुए, प्रतीयमान होती है। और अनुकरण रूपमें होनेके कारण ही स्थायीभाव 'रस' इस दूसरे नामसे अभिहित होता है। विभावोंका काव्यके द्वारा अनुभावोंका शिक्षाके द्वारा तथा व्यभिचारियोंका प्राप्त हुए अनुभव ज्ञानके द्वारा अनुसन्धान (अर्थ-प्रतीति) होता है। स्थायी भावकी अर्थ-प्रतीति शब्द-द्वारा नहीं की जा सकती। रति तथा शोक आदि शब्द स्वतः (रति आदि) अभिधेय कथन मात्र करते हैं न कि वाचिक अभिनयके रूपमें उसका बोध कराते हैं। जिस प्रकार अंगों-द्वारा किया गया अभिनय आंगिक कहलाता है न कि अंग उसी प्रकार वचनके द्वारा किया गया अभिनय वाचिक कहा जाता है वचन नहीं। [illegible]

अवगमन रूपा जो शक्ति है वह शब्दकी वाचकत्व रूपा शक्तिसे भिन्न अभिनयन रूप है। इसलिए उपर्युक्त सूत्रमें विभावविभावित स्थायी पदका उल्लेख नहीं किया गया है। अतः अनुक्रियमाण रति (स्थायी भाव) ही (अभिनयसे) शृंगार है और इस प्रकार उसका (शृंगार अथवा रस) तदात्मकत्व (स्थायीभावसे अनतिरिक्त) तथा तत्प्रभवत्व (स्थायीभावमूलक होना) युक्त है। काव्यके शब्दोंमें वाचकता रूपा शक्तिके अतिरिक्त अवगमन रूपा शक्ति अनुभाव्य न होकर अभिनेयरूप है साथ ही मिथ्या ज्ञानसे विविक्त है। रामके सुखी होनेके अभिनयन नर्तक (अभिनेता) सुखी है ऐसी प्रतिपत्ति (बोध) नहीं होती। यह राम नहीं है अथवा यह रामके समान है, इस प्रकारकी भी प्रतिपत्ति नहीं होती। किन्तु सम्यक मिथ्या संशय तथा सादृश्य मूलक जो प्रतिपत्तियाँ होती हैं उनसे विलक्षण चित्रतुरग — आलिखित अश्व न्यायसे — 'जो सुखी राम है — वह यह है' इस प्रकारकी प्रतीति होती है।

भट्टनायककी व्याख्या

प्रतीति होनेसे क्रमशः दुःखी होनेकी प्रतीति — यदि मान भी लें तो वृत्तके विभाव अपने प्रेक्षक कैसे होंगे (अपनी पत्नी अथवा देवता आदिके सम्बन्धमें)। स्मृतिसे पहले अनुभवकी स्मृति कैसी। फिर दूसरेकी रति आदिसे तन्मयता आयेगी तब रसकी प्रतीति मानी गयी है। रसका स्वरूप अनुभवात्मक अथवा स्मृत्यात्मक होना चाहिए, इस कारण यही बात उत्पत्तिवादके विषयमें भी नहीं घट सकती है। व्यंजनाके द्वारा प्रश्न है कि अभिव्यक्ति अपनी (स्वगत) होगी या परगत होगी ?

इसलिए काव्यमें दोषाभाव गुण तथा अलंकार रूप और नाटकमें चतुर्विध अभिनय रूपसे (अभिप्रायसिक्त निबिड स्वमोह संकट आदिके निवारण करनेवाले) विभावादि कारकके द्वारा निबिड निजत्वका मोह तथा संकट आदिका निवारण करनेवाली अभिधा शक्ति है (सौन्दर्य)।

गुण भावकत्व रूप जो शब्दकी दूसरी शक्ति है उसस इसलिए काव्यम दोषाभाव गुण तथा अलंकार रूप और नाटकमें चतुर्विध अभिनय रूपसे विभावादिको साधारणीकृत रूपमें उपस्थित कर शब्दकी दूसरी शक्ति अपने भावना-व्यापारसे निबिड़-निज-मोह-संकटताका दूर करके रसको भाव्यमान करती है और भावकके भाव्य बनाती है। फिर भोग-शक्ति जो अनुभव स्मृति आदिसे विलक्षण है, रजस् और तमस्‌के अनुवेधके वैचित्र्यके बलस द्रुति विकास तथा विस्तार स्वरूप है हृदयके विस्तार और विकासके लक्षणवाली है सत्त्व गुणके उद्रेकके कारण प्रकाशमान आनन्दमें संकल्प विकल्पम भिन्न है (विलक्षण है) उसस परब्रह्मास्वादके समान रस अनिर्वाच्य रूपसे भोगा जाता है।

आधुनिक काव्य

आधुनिक युगका पूर्वार्द्ध (१८५०-१९१८)

हिन्दी-साहित्यके आधुनिक युगका प्रारम्भ खड़ीबोलीके विकासके साथ होता है और खड़ीबोलीके विकासमें देशके नव जागरणका इतिहास छिपा है। पिछले युगोंमें हिन्दी भाषाको किसी प्रकारका राज्याश्रय प्राप्त नहीं था और जन-जीवनके आधारपर वह पनपी। परिणामस्वरूप हिन्दीके आधुनिक युगके साहित्यमें जनताकी भावनाओंका इतिहास है। जिस समय योरोपकी विभिन्न जातियाँ भारतमें अपने पैर जमा रही थीं, उस समय हिन्दी-साहित्यकी रीतिकालीन कविताका पतनोन्मुखी तथा भक्तिवादी युग था। १९वीं शताब्दी तक अंगरेजोंके पैर यहाँ जम चुके थे कम्पनीका शासन देशके विस्तृत भू भागपर स्थापित हो चुका था। इसके पूर्व ही व्यापारियोंको अनिश्चित तथा कमजोर राज्य-व्यवस्थाने जन-जीवनको प्रत्येक दिशामें एक बहुत बड़ा शून्य सा बना दिया था। इसके मूलमें राजनैतिक अतिरिक्त सामाजिक तथा धार्मिक कारण भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं थे। जन-जीवनके सामने आदर्शोंकी दिशा अस्त हो चुकी थी पर वह सामाजिक तथा धार्मिक रूढ़ियोंकी शृंखलाओंको ढोता आ रहा था। ऐसी परिस्थितिमें विदेशी नीतिके फलस्वरूप जनताके सामने आर्थिक प्रश्न भी कठोर होता जा रहा था। इस प्रकार एक ओर यदि जनताके जीवनमें शून्यता आती जा रही थी और आदर्शोंका पतन हो रहा था तो दूसरी ओर उसमें अपनी परिस्थितिके प्रति असन्तोषकी भावना भी जागने लगी थी।

विदेशियोंके पैर ज्यों-ज्यों इस देशपर जमते गये देशका सुस्पष्ट परिवर्तन बढ़ता गया। विदेशी शासनके विरुद्ध बहुत कुछ कहा जा सकता है पर पश्चिमी सभ्यताके सम्पर्कमें आनेसे हमारा लाभ भी हुआ इसमें किंचित सन्देह नहीं हो सकता। अंगरेजोंने रेल, तार, डाक आदि वैज्ञानिक

अपनेको प्रयोजक साथ देशमें पश्चिमकी नयी शिक्षाका प्रसार भी किया। इस नवीन शिक्षासे जातिमें नव-चेतनाका जागरण हुआ। यही कारण है कि राजा राममोहनराय-जैसे प्रगतिशील भारतीय भी अँगरेजी शिक्षा प्रचारके पक्षमें थे। मैकालेकी धारणा कुछ भी रही हो कम्पनी सरकारकी नीति कुछ भी रही हो पर अँगरेजी शिक्षाके माध्यमसे हमारा पश्चिमसे अधिकाधिक सम्पर्क बढ़ता गया। इस सांस्कृतिक सम्पर्कने देशके जीवनमें बहुत बड़ी क्रान्ति उपस्थित कर दी। अँगरेजी शिक्षासे भारतीय शिक्षित समुदाय योरोपीय ज्ञान-विज्ञानका महत्त्व समझने लगा। परन्तु इस शिक्षा और सम्पर्कका प्रभाव विदेशी शासनके अन्तर्गत देशपर बुरा भी पड़ा। योरोपकी नवीन शिक्षाके प्रकाशमें आये हुए व्यक्ति अपनी प्राचीन शिक्षा तथा सांस्कृतिक परम्पराओंके प्रति नितान्त उदासीन हो गये जिसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ। शिक्षित समुदाय जनताकी अविच्छिन्न जीवन-धारासे अलग-थलग अलग पड़ गया। इस वर्गके लोग पश्चिमी सभ्यतासे इस प्रकार आकर्षित हो गये थे कि उसीको पूरी तरह अपना लेना चाहते थे पर वह देशके परम्परागत स्वाभाविक जीवनके अनुरूप नहीं थी।

इस नव-शिक्षित-वर्गसे आशा यह की जा सकती थी कि वे पश्चिमी सांस्कृतिक तत्त्वोंके आधारपर भारतीय जीवनके प्राचीन आदर्शोंका मूल्यांकन करेंगे और इस प्रकार जनताके सामने नया मार्ग प्रशस्त करेंगे। परन्तु इनमेंसे अधिकांशने स्वदेशी तथा प्राचीन संस्कारसे घृणा प्रकट की अतः वे स्वयं जन-जीवनके नायक नहीं बन सके। प्रत्येक क्रियाके साथ उसकी प्रतिक्रिया छिपी रहती है। अतः इसी शिक्षित वर्गमें एक ऐसा वर्ग भी निकल आया जो देशकी माँगको ठीक प्रकारसे पहचान सका। इस वर्गमें पाश्चात्य शिक्षाके प्रभावसे धर्म तथा समाजकी प्रचलित बुराइयोंके प्रति विद्रोहकी भावना थी वह उनका विरोध करता था। परन्तु भारतीय प्राचीन परम्पराओंके प्रति इसके मनमें श्रद्धा थी वह प्राचीन मूल्योंको नवीन दृष्टिसे आँकनेका पक्षपाती था। पश्चिमी शिक्षाके अन्य भक्तोंकी भारतीय प्राचीन

संस्कृतिकी अवहेलना उसको अत्यधिक पीड़ा पहुँचाता था। विदेशी वास-वसन, आचार-विचार, खान-पानकी नकल करनेवाले नव-शिक्षित अपने देशकी बातोंको गँवारू तथा उपेक्षणीय मानने लगे थे और इस वर्गके स्वदेश भक्तोंके लिए यह बहुत बड़े कष्टकी बात थी। इस प्रकार यह वर्ग भारतकी नवोदित राष्ट्रीय चेतनाको सुधारवादी आन्दोलनोंके रूपमें जगा रहा था जिसका एक ध्येय यह भी था कि शिक्षित समुदायके दृष्टिकोणका सुधार करके उसको स्वदेशके गौरवकी भावनासे भरा जाय। इस भावनाके अन्तर्गत निज भाषा हिन्दीके प्रति प्रेम भी है, साथ ही राष्ट्रीय चेतनाके उन्नायकोंमें इस युगके हिन्दीके साहित्यिक भी आते हैं।

पश्चिमी सभ्यताके सम्पर्कमें आनेसे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक क्षेत्रमें भारतीय दृष्टिकोण बदल रहा था और इसी बदलते हुए दृष्टिकोणसे प्रेरणा ग्रहण कर आधुनिक हिन्दी-साहित्यका विकास प्रारम्भ हुआ। पूर्व पश्चिमके सांस्कृतिक सम्पर्कसे जो नयी चेतना उद्बुद्ध हो रही थी और उससे जो विचार-स्वातन्त्र्यका जन्म हो रहा था उसीके प्रभावसे हमारे साहित्यने रूढ़िके बन्धनोंको तोड़ विकासके एक नये युगमें प्रवेश किया। परन्तु हिन्दी-साहित्यके इस युगके प्रवर्तकोंमें उसी वर्गके लोग थे जो नव-शिक्षासे प्रकाश ग्रहण करके भी प्राचीन भारतके सांस्कृतिक गौरवसे प्रभावित थे और जन-जीवनको उसकी प्राचीन परम्परासे बिलकुल विच्छिन्न करनेके पक्षमें नहीं थे। इसी कारण १९वीं शताब्दीके सभी साहित्यकार सुधारवादी थे और उनमेंसे अधिकांशने सक्रिय रूपसे राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनोंमें भाग लिया था। यह दृष्टिकोण २०वीं शतीके प्रारम्भ तक बना रहा केवल इस कालमें उसे अपेक्षाकृत अधिक साहित्यिक रूप मिल गया है। १९वीं शतीके उत्तरार्द्धकी कविता, नाटक, उपन्यास, निबन्ध आदि सभी साहित्यिक कृतियोंमें इन आन्दोलनोंका प्रभाव परिलक्षित होता है। साथ ही इस साहित्यके भावों, विचारों तथा भाषा-शैलीपर अँगरेजीका प्रभाव पड़ रहा था। इस कालके साहित्यका इसी

प्रवृत्तिकी ओर संकेत करते हुए डॉ० वार्ष्णेय लिखते हैं 'उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्धके हिन्दी लेखकों और कवियोंने अपनी रचनाओंमें नवभारतकी राजनीतिक और आर्थिक महत्त्वाकांक्षाएँ प्रकट करके अपने चारों ओरके धर्म और समाजकी पतित अवस्थापर क्षोभ प्रकाशित करते हुए भविष्यके उन्नत और प्रशस्त जीवनकी ओर इंगित किया है।'

२०वीं शताब्दीके आरम्भ होनेके साथ आधुनिक साहित्यमें एक नया मोड़ लिया है। इस कालको साहित्यके इतिहासमें द्विवेदी-कालका नाम दिया गया है, वैसे यह आधुनिक साहित्यका मध्य-काल भी माना जा सकता है। प्रारम्भिक काल (१९वीं सदी उत्तरार्द्ध) जनजागरणका समय था पर उस समय तक जनताके सामने राष्ट्रीय भावना स्पष्ट नहीं हो सकी थी। परन्तु इस काल तक राष्ट्रीय भावना और आत्मकी रूप-रेखा साफ प्रकट होने लगी थी। शिक्षित मध्य-वर्गका यह साहित्य है तथा इस वर्गके सामने स्वामी दयानन्दने धार्मिक दृष्टिसे स्वामी विवेकानन्दने आध्यात्मिक दृष्टिसे और बालगंगाधर तिलकने राजनीतिक दृष्टिसे भारतीय गौरवकी स्थापना की थी। संस्कृत-साहित्यके अध्ययन पुरातत्त्वके कार्योंसे भारतका सम्मान विदेशोंमें बढ़ रहा था। जापानकी रूसपर विजय होनेसे भारतीयोंको एशियावासी होनेके नाते गौरवका अनुभव हुआ। कहा गया है कि पहले भी शिक्षित वर्ग अपने प्राचीन गौरवकी ओर आकृष्ट होने लगा था। पर अब सभी क्षेत्रोंमें आन्दोलनकी दिशा स्पष्ट हो गयी थी। पहले सामाजिक सुधार आन्दोलनोंको अधिक महत्त्व मिलता था पर अब उन सबको राजनीतिक राष्ट्रीय आन्दोलनके अंगके रूपमें ग्रहण किया गया। फलस्वरूप इस कालमें प्राचीन संस्कृतिका पुनर्जागरण हुआ। प्राचीन संगीत चित्रकला वास्तु तथा स्थापत्य-कलाको फिरसे नवीन रूपमें स्थापित करनेका प्रयास होने लगा। भातखण्डेने संगीतके क्षेत्रमें तथा अवनीन्द्रनाथ ठाकुरने चित्रकलाके क्षेत्रमें इस जागरणमें भाग लिया। कुमारस्वामीने भारतीय प्राचीन कलाओंका मूल्यांकन संसारके सामने नवीन दृष्टिकोणसे

रचना इसी कालसे प्रारम्भ किया। इस राष्ट्रीय आन्दोलनके साथ हिन्दीका महत्त्व अधिक बढ़ता गया। क्योंकि जनमें भारतीय कहलाना अब गौरवकी बात थी और इसी भावनाको इस कालके साहित्यमें अनेक प्रकारसे अभिव्यक्ति मिली है। इस दृष्टिसे यह काल विकासकी नयी सीमा-रेखा माना जा सकता है। पिछले काल तक कवियोंका विरोध सुधारक स्वर तक सीमित था पर अब साहित्यमें आदर्शोंकी दृष्टिसे स्वच्छन्द भावना विकसित हो रही थी। परम्पराको छोड़कर साहित्यमें पौराणिक तथा ऐतिहासिक घटनाओं-चरित्रोंका राष्ट्रीय जागरण-भावनाकी दृष्टिसे नया रूप मिल रहा था। ऐसे पात्रोंको महत्त्व मिला जिनकी पहले उपेक्षा हुई थी। समाजके भी साधारण देश-प्रेमी नायकोंको चुना गया। इस आन्दोलनका प्रभाव बहुत व्यापक रूपसे पड़ रहा था इस कारण इस साहित्यमें मानसिक हलचल और आवश्यकताका रूप तो है, पर साहित्यिक प्रौढ़ता उतनी नहीं मिलती।

१९वीं शताब्दी तक साहित्यमें कविताकी भाषा व्यापक रूपसे ब्रज भाषा थी और उसकी परम्परा भक्ति तथा रीतिकालसे प्रवाहित थी। पर यह काव्य जन-रुचिके निकट नहीं था क्योंकि जनताका ध्यान धीरे-धीरे अपनी दशाकी ओर जा रहा था। सेवक द्विजदेव तथा भारतेन्दुके काव्यमें साहित्यिक श्रेष्ठता मिलती है पर सभी कवियोंमें पुरानी रूढ़िको ढोनेकी भावना प्रधान है। कुछ पुराने रसिक लोग कवि-समाज तथा रसिक समाज-जैसी संस्थाओं तथा कवि-सम्मेलनों-द्वारा ब्रज भाषाके इस काव्यका अनुशीलन और प्रसार करते रहे हैं। मध्य आधुनिक कालमें भारतेन्दुके समान 'रत्नाकर' तथा सत्यनारायण 'कविरत्न'-जैसे प्रतिभावान् ब्रज भाषाके कवि हुए हैं। इन कवियोंमें विषय भाषा तथा छन्द-विधान सभी कुछ एक प्रकारसे प्राचीन है इस कारण इनको आधुनिक न मानकर प्राचीन परम्पराका अवशेष-मात्र मानना चाहिए। प्रमुख कवियोंमें कुछ

आधुनिकता लानेका प्रयास किया है। प्राचीन छन्दोंके स्थानपर लोक-प्रचलित छन्दों—जैसे कजली, बिरहा, रेखता तथा मल्हार आदिका प्रयोग किया गया। कुछ कवियोंने भाषाको अधिक सजीव बनाने सहज करनेका प्रयास किया, इनमें सत्यनारायण तथा 'रत्नाकर' प्रमुख हैं। कुछ कवियों के काव्यमें आधुनिक आन्दोलनोंका प्रभाव तथा नवीन भावनाओंकी व्यंजना भी मिलती है। देश-भक्तिकी भावना भी यत्र-तत्र मिल जाती है। परन्तु सब मिलाकर ब्रजभाषाकी कविता आधुनिक युगकी माँग पूरी न कर सकी और क्रमशः साहित्यसे बहिष्कृत होती गयी।

इसके विपरीत हिन्दी खड़ीबोलीकी काव्यकी आधुनिक धारा पुरानी परम्पराओंको छोड़कर देश-कालकी परिस्थितियोंके अनुसार नये विषयों तथा नये क्षेत्रोंकी ओर मुड़ रही थी। धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक वातावरणके इस युगमें कवितामें विभिन्न सुधार-आन्दोलनोंकी उत्साहपूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। पर जबतक हम इस युगके राष्ट्रीय आन्दोलनके रूपपर तत्कालीन परिस्थितियोंके साथ विचार नहीं करेंगे तबतक हम भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त तथा 'प्रेमघन' आदिकी कविताको भावनाका सच्चा मूल्यांकन नहीं कर सकते। इन कवियोंमें राज-भक्तिकी भावना भी पायी जाती है। वास्तवमें इस समय जनताके मनमें यह विश्वास था कि अंग्रेजी राज्यमें देशकी उन्नति हो सकेगी। अपनी सामाजिक परिस्थितियोंके कारण भी इन कवियोंका दृष्टिकोण बादकी राष्ट्रीय भावनासे भिन्न था। प्रारम्भमें जिन परिस्थितियोंमें कांग्रेसने जन्म लिया था उनमें भी यही भावना प्रधान थी कि भारतीयोंको ब्रिटिश साम्राज्यमें समताका अधिकार मिलना चाहिए और उनको अपनी उन्नति करनेके लिए पूरी सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए। इस दृष्टिसे विचार करनेपर हम इस कालके कवि और लेखकोंके आदर्शोंको समझ सकते हैं। वे जनताकी माँगोंको एक ओर सरकारके सामने रखते दिखाई पड़ते हैं और दूसरी ओर विभिन्न सुधारों-द्वारा जनताको उन्नतिके मार्गपर अग्रसर

करनेके लिए प्रयत्नशील हैं। साथ ही इसके आर्थिक शोषण और जनता की विपन्नताके प्रति कवि जागरूक तथा संवेदनशील हुए हैं। उन्होंने इस विदेशी नीतिका विरोध किया है, और कठोरसे-कठोर शब्दों तथा व्यंग्योंमें अपनी भावनाका व्यक्त किया है।

उन समस्त भावनाओंका मूल इस साहित्यमें मिलता है, जिसका आगे चलकर विकास हुआ। भारतेन्दु प्रतापनारायण मिश्र तथा बालमुकुन्द आदि कवि अँगरेजोंकी आर्थिक नीतिसे परिचित थे वे विदेश जाते हुए धन तथा इसके नष्ट होते हुए उद्यम-धन्धोंको देखकर क्षुब्ध थे। वे जनता-की दीन-हीन स्थितिको देखकर दुःखी थे। इस स्थितिके प्रति अपने क्षोभसे इन कवियोंने विद्रोहका स्वर भी ऊँचा किया है। ये कवि साधारणतः उदार नीतिके कहे जा सकते हैं—उन मेधावोंके समान जो ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत सविनय अधिकारोंकी प्राप्त करनेके पक्षमें थे। फिर भी जिस प्रकार इन कवियोंने सामाजिक-धार्मिक बुराइयोंकी आलोचना निर्ममताके साथ की है और विश्वास प्रकट किया है कि भारतका आत्मिक माध्यमसे देशकी उन्नति हो सकती है उसी प्रकार इन्होंने राजनीतिक तथा आर्थिक कारणोंसे उत्पन्न दुःख-दैन्यका वर्णन भी मार्मिकतासे किया है। इस कालकी कवितामें भाषाके प्रश्नपर भी बहुत-कुछ कहा गया है। उपर्युक्त कवियोंके अतिरिक्त राधाकृष्णदास महावीरप्रसाद द्विवेदी आदिने हिन्दी भाषाका राष्ट्रीय महत्त्व देखनेका प्रयास किया है तथा उसकी स्थितिपर क्षोभ प्रकट करते हुए समर्थनका स्वर भी उठाया है। इन कवियोंने भाषाका राष्ट्रीय उन्नतिके रूपमें देखनेका प्रयास किया है। इस कालमें अँगरेजी कविताके अनुकरणकी ओर भी लोगोंका ध्यान गया। श्रीधर पाठकका नाम इस सम्बन्धमें लिया जा सकता है। वैसे आगामी कवितामें इन्हें प्रायः अपनी स्वच्छन्द धाराके कवि हैं। वास्तवमें जैसा कहा गया है इस कालमें साहित्यके सभी क्षेत्रोंके साथ कवितामें भी नवीन शैली तथा नवीन भावना का विकास हो रहा था। प्रारम्भिक युगकी इन कविताओंमें काव्यके विभिन्न

युग नहीं है, पर आगेके साहित्यकी भूमिकाके रूपमें इस साहित्यका कम महत्त्व नहीं है।

इसके बाद द्विवेदी-कालमें जिसको यहाँ आधुनिक युगका मध्यकाल कहा गया है, अँगरेजोंके प्रभावसे कवितामें स्वच्छन्दतावादी भावनाका विकास हुआ। प्रारम्भके सुधारवादी आन्दोलनोंसे प्रेरणा ग्रहण करनेके बाद काव्य जीवनके अधिक व्यापक स्तरपर उतरने लगा। यह भाव-धारा केवल पाश्चात्य साहित्यके प्रभावसे विकसित हो रही थी ऐसा नहीं मानना चाहिए। इस कालका साहित्य जिस मध्य-वर्गसे सम्बन्धित है, वह अपनी भावनाओं आकांक्षाओं तथा आदर्शोंको इस साहित्यमें अभिव्यक्त कर रहा था। इसमें प्राचीन परम्पराओं तथा रूढ़ियोंके प्रति विरोधकी भावना पायी जाती है। कवि और साहित्यकारका ध्यान जीवनके नवीन मूल्यों और आदर्शोंकी ओर आकर्षित हो रहा था जिनकी अबतक अवहेलना की गयी थी। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त आदि कवियोंने प्राचीन पौराणिक तथा ऐतिहासिक चरित्रोंकी अवतारणा राष्ट्रीय गौरवकी दृष्टिसे की है। जिन चरित्रों को सामाजिक आधारपर लिया गया है वे भी नवीन आदर्शोंसे अनुप्राणित हैं। इस कालका अधिकांश काव्य वर्णनात्मक तथा प्रबन्धात्मक है, परन्तु जीवन और प्रकृतिके प्रति कविका दृष्टिकोण बदल चुका था। इस कारण इस कालके काव्यमें स्वच्छन्दतावादी भावनाके दर्शन होते हैं। यद्यपि जैसा डा० श्रीकृष्णलालने अपने 'हिन्दी साहित्यके विकास' में स्वीकार किया है कि यह स्वच्छन्दतावादी काव्यकी सैद्धान्तिक भूमिका-मात्र तैयार हुई थी। इसका कलात्मक पक्ष आगेके छायावादी काव्यके युगमें विकसित हुआ। १९१८ ई० के बाद छायावादी व्यक्तिपरक गीतियोंका काल प्रारम्भ होता है जिसमें कलाकी दृष्टिसे स्वच्छन्दतावादके अनेक तत्त्व पाये जाते हैं। इन काव्यके साथ स्वतन्त्र स्वच्छन्दतावादी भाव-धाराके विशेषकर प्रेम तथा प्रकृतिके कवि भी आधुनिक युगके उत्तरार्धमें हुए हैं। परन्तु भाषा, छन्द तथा अन्य साहित्यिक

परम्पराओं और रूढ़ियोंसे मुक्त होकर उन्मुक्त स्वच्छन्दतावादका जो रूप आधुनिक युगके मध्य-काल (द्विवेदी-काल) में श्रीधर पाठक तथा रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियोंमें मिलना शुरू हुआ था वह स्वतन्त्र रूपसे आगे विकसित नहीं हो सका।

१९वीं शताब्दी तक गद्यका समुचित विकास हुआ। इस कालके गद्य-लेखकोंकी शैलीमें प्रौढ़ता भले नहीं है पर व्यक्तित्व अवश्य है। इस कालके साहित्यमें आधुनिक-साहित्यकी सीमाओंके साथ उसकी विशेषताएँ भी हैं। इस गद्य-साहित्यमें जीवनका व्यापक आधार नहीं है साथ ही उसका उतना स्वाभाविक रूप भी नहीं आ सका है। परन्तु इस साहित्यमें सरल भावना सरस तथा स्वच्छन्द मनोवृत्ति विशेष रूपसे पायी जाती है जिसकी हिन्दीके भक्ति तथा रीति-साहित्यमें विशेष कमी रही है। इस कालका गद्य सीधा स्पष्ट तथा सहज-सरल है। इस समय तक ब्रजभाषाके गद्यकी परम्परा समाप्त हो चुकी थी। टीकाओंमें अवश्य ब्रजभाषा गद्यमें अब तक भाव व्यक्त करनेकी शक्ति नहीं रह गयी थी। २०वीं शताब्दीके प्रारम्भमें महावीर प्रसाद द्विवेदीके प्रयाससे गद्यका निश्चित रूप स्थिर हो गया। इस शताब्दीके प्रारम्भिक सात आठ वर्षों तक गद्यमें भाषासम्बन्धी बहुत अव्यवस्था थी पर बादमें द्विवेदीजीके सतत निरीक्षणमें भाषाका रूप निश्चित तथा स्थिर हो गया। प्रारम्भिक कालमें जिन शैलियोंका जन्म हुआ था उनको इस कालमें विकासका पूर्ण अवसर मिल गया। इस कालमें विभिन्न भाषाओंके सम्पर्कमें आकर हिन्दी-साहित्यमें विभिन्न गद्य-शैलियोंका विकास हुआ जिसमें संस्कृत बंगाली मराठी अंगरेजी तथा उर्दू आदिकी विभिन्न शैलियोंके रूप पाये जाते हैं। डा० श्रीकृष्णलालके शब्दोंमें 'हिन्दीने अपनी विभिन्न आवश्यकतानुसार अंगरेजी साहित्यकी स्पष्ट भाव-व्यंजना बंगलाकी सरसता और मधुरता मराठीकी गम्भीरता और उर्दूका प्रवाह ग्रहण किया।' इस प्रकार विभिन्न प्रभावोंके साथ हिन्दी गद्य अपनी स्वतन्त्र शैलीका विकास कर रही थी।

समस्त गद्यके अभावमें नाटकोंकी कल्पना नहीं की जा सकती। पिछड़े हिन्दी-साहित्यमें नाटकोंके अभावके कारणोंमें एक कारण यह भी रहा है। इस कालमें गद्यका विकास हुआ साथ ही नाटकोंका प्रारम्भ भी हुआ। वास्तवमें भारतेन्दुको ही हिन्दी-नाटकोंका जन्मदाता मानना चाहिए। वे प्रतिभा तथा अन्तर्दृष्टिके व्यक्ति थे। उन्होंने साहित्यके विभिन्न अंगोंके साथ नाटककी विशेष शक्ति पहचान ली थी। उन्होंने पारसी नाटक-कम्पनियोंके व्यवसायपर चलनेवाले बुरे प्रभावको देखा था वह उससे हिन्दी साहित्य तथा जनताको बचाना चाहते थे। इस कारण एक ओर उन्होंने 'नाटक' के अन्तर्गत नाटकीय सिद्धान्तोंका परिचय दिया तथा अपना मतका भी स्पष्ट किया और दूसरी ओर अनेक नाटकोंकी रचना करके हिन्दी साहित्यमें नाटकोंकी परम्परा चलायी। भारतेन्दुने अपने नाटकोंमें प्राचीन नाटकीय सिद्धान्तोंके साथ नवीन आवश्यकताओं तथा प्रभावोंको भी ग्रहण किया है। यह उनकी तथा उनके अनुवर्ती नाटककारों लाला श्रीनिवासदास किशोरीलाल बालकृष्ण भट्ट बद्रीनाथ भट्ट आदिकी रचनाओंमें स्पष्ट है। प्राचीन संस्कृत नाटकोंमें आदर्शोंकी मर्यादा है तथा रस प्रधान है, पर इस कालके नाटकोंमें सामाजिक जीवनका प्रस्तुत किया गया। देश समाज तथा धर्मकी विभिन्न समस्याओंको उठाया गया। रसके स्थानपर व्यंग्य कौतुक तथा हास्यका माध्यम स्वीकार किया गया। कथा-वस्तुकी दृष्टिसे पौराणिक ऐतिहासिक राजनीतिक धार्मिक तथा सामाजिक प्रयोग स्वीकार किया जाने लगा। हरिश्चन्द्र तथा उनके साथियोंने नाटक नाटिका भाण नाट्य रासक गीति-नाट्य आदि अनेक प्रयोग किये पर संस्कृतमें प्रचलित रूप नामके भिन्न आधारपर भी इनका रूप नवीन है।

नाटकोंका विकास उचित रंगमंचके अभावमें जैसा होना चाहिए था आगे नहीं हो सका। आधुनिक साहित्यमें नाटकोंका स्थान २ री पंक्तिका प्रारम्भमें भी विशेष महत्त्व नहीं पा सका। पारसी कम्पनियोंके प्रभावमें चलनेवाली सभाओंके लिए नाटकोंका प्रारम्भ किया गया था परन्तु वे अपनेका

पारसी रंगमंच तथा नाटकोंके प्रभावसे बचा नहीं सके। साहित्यिक नाटक स्तर कथा-वस्तुके आरम्भकी रचना तो कर सके पर कलात्मक रचनाकी दृष्टिसे विकास सम्भव नहीं हो सके। राधाकृष्ण दास, माधव शुक्ल, मिश्रबन्धु आदिमें समान रूपसे नाटकीय कथा तथा शिल्प-रचनाकी दृष्टिसे दोष पाये जाते हैं। इनके नाटकोंके कथानक असम्बद्धित तथा अस्वाभाविक और संवाद असंगत हैं। समानुपात तथा निर्देशनका ज्ञान इनमें नहीं है। इसका कारण यह है कि इन नाटककारोंको रंगमंचका समुचित अनुभव नहीं था। इनमें प्रयुक्त हास्य पारसी कम्पनियों-द्वारा प्रदत्त हास्यसे अधिक भद्र नहीं है। बदरीनाथ भट्टने इस दृष्टिसे कुछ सफलता पायी है। उन्होंने कथावस्तुका विकास औचित्यपूर्ण समुचित ढंगसे किया है। वे चरित्र-चित्रण अधिक सफलतासे कर सके हैं। निर्देशनका ज्ञान तथा कलात्मक सौन्दर्य भी इनमें विशेष है। २० वीं शताब्दीके प्रारम्भमें पारसी कम्पनियोंमें नारायणप्रसाद बेताब, आगा हश्र काश्मीरी, हरिकृष्ण जौहर, तुलसीदत्त शैदा तथा राधेश्याम कथावाचक आदि नाटक लिख रहे थे। इनमें साहित्यिक रुचि पायी जाती है पर ये पारसी कम्पनियोंके नाटकोंके स्तरको बहुत कम सुधार सके हैं। वस्तुतः इस कालमें चमत्कार तथा उत्तेजक दृश्यों और परिस्थितियोंका समावेश विशेषतः प्रभावसे अधिक ही हुआ है। मात्रा और संख्याकी दृष्टिसे कुछ विकास माना जा सकता है।

इस कालमें मुख्यतः नाटकके साथ साहित्यके अनेक नये रूपोंका भी विकास हो रहा था। इन शैलियों और रूपोंपर पाश्चात्य साहित्य तथा विचार-धाराओंका स्पष्ट प्रभाव था। इसी कालमें गद्य-काव्य निबन्धोंका रूप मिलने लगता है। भारतेन्दु-साहित्यका वातावरण इस साहित्यिक रूप तथा शैलीके अनुरूप था। भारतेन्दु-साहित्यका उन्मुक्त और स्वच्छन्द वातावरण तथा उसकी आत्मीय आवर्जकता निबन्ध शैलीकी प्रारम्भिक विशेषताएँ हैं। यही कारण है कि आधुनिक युगके प्रारम्भिक लेखक प्रताप-नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त आदि प्रमुख निबन्धकार

भी थे। भाषाका रूप निश्चित न होते हुए भी इनकी शैलीमें व्यक्तित्वकी छाप पायी जाती है। इनका उन्मुक्त स्वभाव तथा इनका व्यंग्य और हास्यप्रियता इनके निबन्धोंमें भी परिलक्षित होती है। इनके निबन्धोंके विषय सभी क्षेत्रोंसे चुने गये हैं। भट्टजीकी भाषा शिष्ट तथा परिमार्जित है पर मिश्रजीमें ग्रामीणताकी पुट विशेष है। गुप्तजीकी भाषा गति तथा प्रवाहपूर्ण है। भट्टजीका व्यंग्य तथा हास्य मार्मिक और अवैयक्तिक है पर मिश्रजीमें परिमार्जनकी कमीके साथ वैयक्तिकता अधिक है। गुप्तजीका व्यंग्य तीखा अधिक है। नयी-नयी पत्र-पत्रिकाओंके प्रकाशनसे विभिन्न साहित्यिक रूपोंके साथ निबन्धोंको भी विकासका अधिक अवसर मिला।

आगे चलकर २०वीं शताब्दीमें निबन्धोंके स्थानपर लेख तथा प्रबन्धोंका विकास अधिक हुआ। इस कालमें व्यक्ति-प्रधान तथा आत्मीय भावनापूर्ण शैलीमें लिखनेवाले चन्द्रधर शर्मा गुलेरी तथा पूर्णसिंह आदि कुछ ही निबन्धकार रह गये। फिर भी निबन्ध-शैलीका पर्याप्त विकास हुआ। कुछ निबन्धोंमें स्वप्नों तथा चित्रोंका साहित्यिक व्यंजनाका रूप दिया गया और कुछमें कवित्वपूर्ण भावात्मकताका आश्रय ग्रहण किया गया। क्रमशः गद्य शैलीके विकासके साथ कहानी वार्तालाप भाषण आदिका प्रभाव निबन्धों-पर पड़ा। परन्तु विचार और उनकी प्रधानतामें निबन्धके स्थानपर लेखका प्रचार बढ़ गया। महावीरप्रसाद द्विवेदी रामचन्द्र शुक्ल तथा श्यामसुन्दरदासके निबन्धोंमें विवेचनाका क्रम अधिक निश्चित है तथा विषय प्रतिपादनकी चेष्टा है इस कारण वे शुद्ध निबन्धकी कोटिमें नहीं आते। आगे चलकर निबन्ध-शैलीकी विभिन्न विशेषताओंने कहानी भाषण स्केच तथा संस्मरण आदिका रूप धारण किया। इसी समयसे विवेचनात्मक समीक्षाओंका युग प्रारम्भ होता है पर समालोचनाका अपना वास्तविक स्वरूप स्थापित नहीं हो सका था। इस समय तक समालोचना तुलनात्मक तथा प्रशंसात्मक ही अधिक रही है। इस क्षेत्रमें आगे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा श्याम

सुन्दरतापर विचार व्यक्त किया है। आचार्य शुक्लने बादमें भारतीय साहित्य-शास्त्र तथा पाश्चात्य आलोचना-शास्त्रका समन्वय किया।

नाटकोंके साथ आधुनिक युगमें उपन्यासोंका भी विकास हुआ। इसके पहले कुछ पौराणिक तथा लौकिक प्रेम-कथाएँ अवश्य मिलती हैं परन्तु आधुनिक उपन्यासोंसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। इस युगके प्रारम्भमें कौतूहल तथा वैचित्र्यमूलक तिलस्मी और जासूसी उपन्यासोंका प्रचलन हुआ। देवकीनन्दन खत्री तथा गोपालराम गहमरी इस प्रकारके प्रधान लेखक थे। किशोरीलाल गोस्वामी तथा गंगाप्रसाद गुप्त आदिके ऐतिहासिक उपन्यासोंमें इतिहासका आधार नाममात्र है, उनमें प्रेम और रोमांसको विशेष महत्त्व दिया गया। इसके अतिरिक्त सामाजिक उपन्यासोंका प्रचलन हो चला था। बालकृष्ण भट्ट, श्रीनिवासदास, गोपालराम गहमरी, राधाचरण गोस्वामी तथा हनुमन्तसिंह आदिके उपन्यासोंमें उस समयके समाजका रूप है। पर इनमें सुधारका दृष्टिकोण प्रधान है। इस प्रारम्भिक कालके उपन्यासोंपर संस्कृत कथा-साहित्य, लोक-प्रेम-कथा-साहित्य तथा बँगलाके साधारण कोटिके उपन्यासोंका प्रभाव था। अनेक भाषाओंसे अनुवाद भी हुए। परन्तु यह उपन्यासोंकी प्रारम्भिक स्थिति थी जिसमें कौतूहल, प्रेम तथा सुधारकी भावना प्रधान थी। मनोरंजक उपन्यासोंमें यथार्थवादी वातावरण तथा स्वाभाविक चरित्र-चित्रणका रूप भी सामने नहीं आ सका था। हमारे आलोच्य युगके समाप्त होते-होते साहित्यमें प्रेमचन्दके प्रवेशसे ही उपन्यासोंमें विकास परिवर्तनकी स्थिति दिखाई देती है। प्रेमचन्दके सेवासदन (१९१८) प्रेमाश्रम (१९२१) तथा रंगभूमि (१९) में वास्तविक चरित्र-चित्रणका रूप मिलना प्रारम्भ होता है। उसके पहले अयोध्यासिंह उपाध्याय, लज्जाराम मेहता, मन्नन द्विवेदी आदिके सामाजिक उपन्यासोंमें चरित्र-चित्रणका प्रयास किया गया है पर इनमें आदर्श (टाइप) चरित्रोंका रूप ही सामने आ सका है। उपन्यासोंमें व्यक्तित्वका चित्रण इस बातमें प्रेमचन्द तथा कौशिकजीके साथ प्रारम्भ होता है। उपन्यासकार

उपन्यासोंमें कलात्मक गठनका अभाव भी है। उनमें केवल सामाजिक तथा पारिवारिक जीवनके चित्र यत्र-तत्र स्वाभाविक बन पड़े हैं। साथ ही इस समय तक उपन्यासोंमें नैतिक आदर्शोंका विशेष प्रभाव रहा है और इस कारण भी कलाकी दृष्टिसे विशेष उन्नति नहीं हो सकी। ब्रजनन्दनसहाय तथा चण्डीप्रसाद 'हृदयेश'के उपन्यास भाव-प्रधान हैं परन्तु इनमें कवित्वपूर्ण व्यंजनाके अतिरिक्त कलात्मक या चरित्र-चित्रणकी कोई विशेषता नहीं है। बादमें प्रसादजीने इस शैलीको अधिक कलात्मक रूप दिया है।

१९ वीं शताब्दीके अन्त तक कहानी-कलाका विकास नहीं हो सका था। कहानीका इतिहास केवल २० वीं शताब्दीसे प्रारम्भ होता है। *प्रारम्भमें अँगरेजी तथा संस्कृतके नाटकोंकी कथावस्तुको कहानियोंके रूपमें* प्रस्तुत किया गया। ऐसी कहानी बहुत लोक-प्रचलित शैली है पर उसका *आधुनिक रूप अपने गम्भीर अर्थके कारण सम्भवतः इन्हीं अनुवादोंके* माध्यमसे हमारे साहित्यमें आया। किशोरीलाल गोस्वामीकी इन्दुमती कहानी (१९०० ई०) पर डॉ० श्रीकृष्णलाल 'टेम्पेस्ट' का प्रभाव मानते हैं। पार्वतीनन्दन तथा बंग-महिलाकी अनेक अनुवादित तथा रूपान्तरित कहानियाँ इस बीचमें 'सरस्वती' में प्रकाशित करायी। यह आश्चर्यकी बात है कि कहानियोंमें उपन्यासोंसे पूर्व यथार्थवादी दृष्टिकोण विकसित हुआ। बंग-महिला (दुलाईवाली—सरस्वती १९०७) तथा जयशंकरप्रसाद (ग्राम-इन्दु, १९११) से कहानियोंका युग प्रारम्भ हो जाता है। बंग-महिलाकी सामाजिक यथार्थवादी कहानियोंका विकास आगे चलकर प्रेमचन्द, सुदर्शन तथा कौशिक आदिकी कहानियोंमें हुआ। प्रसादजीके साथ भावात्मक तथा वातावरण प्रधान कहानीकारोंमें *राधिकारमणसिंह* चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' तथा गोविन्दवल्लभ पन्तका नाम लिया जा सकता है। आधुनिक युगके पूर्वार्द्ध तक कहानीके क्षेत्रमें साहित्य काफी आगे बढ़ चुका था और भविष्यकी सम्भावनाएँ भी थीं। कथावस्तुका भारतीय विकास भारतीय वातावरण यथार्थवादी चरित्र-चित्रण मानसिक

अन्तर्गत भारतकी दृष्टिसे कहानी-कला इतने थोड़े समयमें काफ़ी विकसित हो चुकी थी। पत्र-पत्रिकाओंके प्रकाशनसे कहानियोंके विकासको अधिक गति तथा प्रेरणा मिली है।

प्रथम महायुद्धके समाप्त (१९१८) होते-होते आधुनिक हिन्दी साहित्यके पूर्वार्द्धका अन्त हो जाता है। इस काल तक मध्यम वर्गकी स्थिति अधिक निश्चित हो गयी थी। वह देशमें सबसे अधिक शिक्षित तथा सचेत वर्ग था। उसमें स्वाभिमानकी भावना भी इसी कारण विशेष थी। इस वर्गने पाश्चात्य दृष्टिकोणको अपनाया था परन्तु उसकी प्राचीन संस्कृति उसे झुकना पड़ रहा था। वह अपने देशके प्राचीन गौरवके प्रति सचेष्ट था परन्तु देशकी वर्तमान स्थितिके प्रति उसके मनमें बहुत बड़ा क्षोभ था। महायुद्धके विनाशका प्रभाव भी उसके मनपर पड़ा था। अभीतक साहित्यमें समाजका दृष्टिकोण प्रधान था साहित्यकारकी समस्या देश तथा समाजकी समस्या थी। परन्तु इस आनेवाले युगमें व्यक्ति अपनी ओर मुड़ा उसने समस्याओंको अपनेको केन्द्रमें रखकर सोचनेका प्रयास किया। इस कारण आनेवाला युग व्यक्तिवादी साहित्यका युग है। ऐसा नहीं कि राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओंके प्रति कवि और लेखक जागरूक नहीं है वरन् वह अपनेको प्रधान मानकर सभी समस्याओंपर विचार करने लगता है। साथ ही इस युगके साहित्यिकके मनमें साहित्यकी समस्त प्राचीन परम्पराके प्रति विद्रोह जाग्रत होता है जिसमें साहित्यिकके व्यक्तित्वको अभिव्यक्तिका अवसर ही नहीं मिला था। इस प्रकार इस आनेवाले युगका साहित्यिक अधिक व्यक्तिवादी तथा अन्तर्मुखी हो उठा उसने कल्पनाको अधिक प्रधानता दी युगोंसे साहित्यके मूल आधारको अमूर्त सांकेतिक कल्पनाओंमें सजाना प्रारम्भ किया। और यह छायावादी युग है जिसके लिए आधुनिक युगके पूर्वार्द्धमें काफ़ी विस्तृत भूमिका तैयार हो चुकी थी।

छायावादसे प्रयोग-युग तक (१९१८–४७)

प्रथम महायुद्धके समाप्त होते-होते (१९१८) आधुनिक हिन्दी साहित्यके पूर्वार्द्धका अन्त हो जाता है। आधुनिक साहित्यका उत्तर-काल वर्तमान युग है। इस काल तक देशमें पूँजीवादी व्यवस्था कुछ अधिक निश्चित हो चुकी थी और इसकी उपज मध्यवर्गकी स्थिति भी स्पष्ट हो चुकी थी। द्विवेदी-युगकी पुनरुत्थानवादी कवितामें सामन्तयुगीन तथा पूँजीवादी आदर्शोंकी छाप है। इस कवितामें एक ओर नियम मर्यादा परम्परा मान्य तथा धर्मके प्रति आस्था है तो साथ ही इसमें व्यक्तिवाद तथा मानवतावाद भौतिकता तथा अध्यात्मवादका प्रभाव भी मिलता है पूँजीवादी आदर्शों — समानता स्वतन्त्रता तथा बन्धुत्वका स्वर भी सुनाई पड़ने लगता है। पर वर्तमान युगके प्रारम्भसे स्थिति बदल चुकी थी। महायुद्धके प्रभावसे देश औद्योगिक विकासकी ओर बढ़ा था पर इससे देश स्वतन्त्रताकी ओर किंचित् भी बढ़ न सका था। इस परिस्थितिमें मध्यवर्गका व्यक्ति अपने 'स्व' अहंभावके प्रति जागरूक हो उठा था। अब देशमें सबसे अधिक शिक्षित तथा सचेत वर्ग था। उसमें इस कारण स्वाभिमानकी भावना विशेष थी। इस वर्गने पाश्चात्य बहिरंगमें स्वच्छन्दताका आदर्श अपनाया पर इस देशकी प्राचीन रूढ़ियों परम्पराओं तथा आदर्शोंसे सम्बन्ध बना रहा था। महायुद्धके विनाशका प्रभाव भी उसपर पड़ा। अतीतके साहित्यमें समाजका बहिर्मुखी प्रभाव था साहित्यकारकी समस्या समाज और देशकी समस्या थी। यह ठीक है कि उस समय तक समाजको केवल सुधारकी दृष्टिसे देखा गया था और देशके सम्बन्धमें राष्ट्रीय भावना भी स्पष्ट नहीं थी। आगे चलकर वर्तमान युगमें यदि राष्ट्रीय भावनाका विकास हुआ है तो समाजवादी विचार-धाराका भी

निश्चित आधार लिया है। परन्तु वर्तमान युगके प्रारम्भ तथा विकासमें कविका व्यक्तिवादी दृष्टिकोण प्रधान है। युग-युगसे भारतीय कविपर व्यक्तिगत संवेदनाओंको व्यक्त करनेके क्षेत्रमें प्रतिबन्ध रहा है। समाजी-कृत तथा साधारणीकृतकी शर्तें उसके सामने रही थीं। आधुनिक युगके पूर्वार्द्ध ही से बन्धन ढीले पड़ने लगे थे, सीमाएँ मिटने लगी थीं। पर वर्तमान युगके कविने व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका मुक्त उद्घोष किया। उसकी दृष्टि देश-व्यापी विभिन्न समस्याओंकी ओर न रही हो, ऐसा नहीं है, पर व्यक्तिको केन्द्र रखकर वह सबके प्रति क्रियाशील हुआ है। स्वतन्त्रताके इस आन्दोलन वर्तमान युगका कवि प्रारम्भसे विद्रोही रहा है। यह अवश्य है कि व्यक्ति-कल्पित होनेके कारण विद्रोहका स्वर मात्र समाजको अस्वीकार कर समाजको व्यवस्थाका न होकर समाजकी प्राचीन रूढ़ियोंसे अपनेको मुक्त करनेका ही प्रयास है। यह उसके मनमें स्पष्ट नहीं था कि अपना समाज किस ढंगसे 'व्यवस्था' स्वतन्त्रताके लिए या अब कुछ नहीं होगा। कवि प्राचीन परम्पराओंसे विद्रोह कर सका पर उसके सामने कोई नया समाज अपनी नयी परम्पराओंके साथ नहीं आ सका। परिणामस्वरूप अन्तर्मुखी होकर वह अधिकाधिक व्यक्तिवादी होता गया है। हाँ जिसके सामने किसी नये समाजका (निश्चित ही किसी विशिष्ट ढाँचा या रूप भी नहीं) चित्र आ गया है उनके स्वरकी वर्तमान कविताका नया स्वर भी मिला है। इस प्रकार वर्तमान कविताकी प्रधान विशेषता व्यक्तिवादी स्वतन्त्रता है।

साहित्यमें इस व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य आन्दोलनको व्यापक रूपसे स्वच्छन्दतावादी (रोमैण्टिक) आन्दोलन माना जा सकता है। इस सम्पूर्ण काव्यमें व्यापक भावनाके सम्बन्धमें उत्कट रोमैण्टिक प्रवृत्तिका आभास मिलता है। रोमैण्टिक काव्यमें व्यक्तित्वकी प्रधानता स्वीकृत है क्योंकि व्यक्तित्वके आधार भाव, भावना तथा कल्पना-शीलता इस काव्यमें विशेष महत्त्वका स्थान रखते हैं। कवि न केवल विचारात्मक शक्ति तथा

परम्पराके विरुद्ध होता है वरन् इस साहित्यिक प्रेरणामें रूढ़ियोंके प्रति विद्रोह रहता है। इस काव्यमें व्यक्तिकी स्वतन्त्रता सामाजिक तथा राष्ट्रीय भावनाका समावेश होता है साथ ही इसमें आन्तरिक संवेदनशीलता और अनुभूतियोंकी गम्भीर अभिव्यक्ति रहती है। इन समस्त दृष्टियोंसे वर्तमान युगकी कविताका प्रारम्भ रोमण्टिक आन्दोलनके रूपमें स्वीकार किया जा सकता है। इस युगकी कवितामें जो अप्रत्याशित विकास और अनियमित मोड़ दिखाई पड़ते हैं उन सबकी भूमिका आधुनिक युगके पूर्वार्द्धमें पड़ चुकी थी। भारतेन्दु-युगकी कवितामें कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ ऐसा माना जाता है पर उसकी मूल भावनापर विचार करते यह स्पष्ट हो जायेगा कि इस युगमें ही आगेके विकासकी युगकी भूमिकाकी नींव पड़ चुकी थी। यद्यपि इस युगकी कवितामें भाषा भाव तथा शैली सभी कुछ एक प्रकारसे प्राचीन परम्पराका है पर यदि ध्यान दिया जाये तो नवचेतनाका उद्बोधन इस युगके कवियोंमें पाया जाता है। ब्रजभाषाके साथ खड़ीबोलीका प्रयोग होने लगा था प्राचीन छन्दोंके स्थानपर लोक प्रचलित छन्दों – जैसे कजली बिरहा रंगता तथा मल्हार आदि – का प्रयोग किया गया। इस काव्यमें नवीन आदर्शोंके प्रति आग्रह भी मिलता है। रीतिकालीन रूढ़िगत प्रेमके आदर्शके स्थानपर इस युगमें प्रेमको अधिक स्वस्थ तथा उन्मुक्त वातावरण मिला है। व्यक्ति स्वातन्त्र्य तथा राष्ट्रीय भावनाकी भी अपने ढंगसे अभिव्यक्ति हुई है यद्यपि इस समय उसको व्यापक अर्थमें नहीं समझा जा सकता। इन कवियोंमें मस्ती तथा निर्द्वन्द्वता है जो उनके कल्पनाशील तथा संवेदनशील होनेकी साक्षी है। वर्तमान परिस्थितियोंके प्रति असन्तोष परम्परागत रूढ़ियोंके प्रति विद्रोह तथा सामाजिक बन्धनके प्रति क्षोभ इस युगमें जाग रहा था जिस भूमिकापर रोमैण्टिक-काव्य विकसित होता है। परन्तु देशकी राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रगति देशी सामन्तवाद तथा विदेशी साम्राज्यवादके दो किनारोंमें टकराकर आगे बढ़ रही थी। इस काव्य

इसका इतिहास सापेक्ष प्रयत्निक इतिहाससे भिन्न रहा है। इसीके प्रभावसे हिन्दी-जग रोमैण्टिक-काव्यका स्वच्छन्द पथ न लेकर पुनरुत्थानकी भावधाराका साधन लाया। सुधारवादी आन्दोलनोंसे प्रेरणा ग्रहण कर काव्य नैतिक व्यापक स्तरपर उभरने लगा। यह भावना केवल पाश्चात्य साहित्यसे प्रभावित विकसित हुई हो ऐसी बात नहीं है। यह काव्य जिस सन्दर्भसे सम्बन्धित है वह अपनी मान्यताओं भावनाओं तथा आदर्शोंको अभिव्यक्तिका रूप दे रहा था। इसमें भी वर्तमानके प्रति बहुत कुछ क्षोभ और असन्तोष है और अतीतके प्रति विस्मयकी भावना भी है पर वे कवि नवीन मूल्यों तथा आदर्शोंकी स्थापनाके लिए गौरवपूर्ण अतीतकी ओर मुड़ गये हैं। इस प्रकार भारतमें साहित्यसे रोमैण्टिक उन्मुक्त तथा स्वच्छन्द मनोवृत्ति दब गयी है और उसके स्थानपर आदर्श मर्यादा तथा नैतिकता-का आग्रह बढ़ गया है। पर इस युगके काव्यमें शुद्ध रोमैण्टिक धारा भी चल रही है। श्रीधर पाठक रामनरेश त्रिपाठी मुकुटधर पाण्डेय आदिमें प्रकृति-प्रेम साथ-साथ जीवन तथा जगत्के प्रति रोमैण्टिक दृष्टिकोण मिलता है। परन्तु जिस प्रकार इस स्वच्छ और मुक्त रोमैण्टिक-काव्यको द्विवेदी-युगके आदर्शवाद तथा इतिवृत्तात्मकताके कारण पनपनेका अवसर नहीं मिल सका उसी प्रकार वर्तमान युगमें भी परिस्थितियोंके कारण इसका किंचित् भिन्न रूप मिल गया है। ऐसे वर्तमान छायावादी युग कविताका रोमैण्टिक-युग स्वीकार किया जा सकता है उसका अधिकांश प्रवृत्तियाँ रोमैण्टिक-काव्यके समान है।

कहा गया है कि छायावादी काव्यको रोमैण्टिक-धारा कविताके रूपमें स्वीकार किया जा सकता है। यह आवश्यक इसलिए भी है कि इस प्रकार विचार करनेसे इस कविताके सम्बन्धमें हमारा दृष्टिकोण स्पष्ट हो सकता है और साथ ही उसके पूर्ववर्ती विवादका भी हल हो जायगा। कहना चाहिए कि समस्त छायावादी कविताकी आधार रोमैण्टिक भावना मान लेनेसे इस युगकी साहित्यिक पीठिका अधिक स्पष्ट हो जाती है काव्यकी

विभिन्न प्रवृत्तियोंका विवेचन अधिक सरलतासे हो सकता है। यह ठीक है कि युगकी परिस्थितियोंने इस युगके काव्यको मुक्त रूपसे रोमैण्टिक भावधाराके अनुकूल नहीं होने दिया है पर अपनी मूल प्रवृत्तिके आधारपर यह इस भावधाराके अत्यन्त समीप ठहरता है। वास्तवमें रोमैण्टिक आन्दोलनने तत्कालीन परिस्थितियोंके अनुसार किंचित् भिन्न रूप धारण कर लिया है। इन प्रतिक्रियात्मक शक्तियोंकी ओर ध्यान जानेसे रोमैण्टिक आन्दोलनके एक भिन्न युगका स्मरण आ जाता है। 'इस युगके आरम्भमें काव्य स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियोंसे विकसित हुआ है साथ ही उसमें कुछ प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तियाँ भी क्रियाशील रही हैं और इन्होंने काव्यको पूर्णतः जीवनके उन्मुक्त धरातलपर नहीं आने दिया।' (प्रकृति और काव्य हिन्दी मध्ययुग)। यही बात आंशिक रूपसे वर्तमान युगके लिए भी सत्य है। हिन्दी मध्ययुगके रोमैण्टिक आन्दोलनके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा उस युगके काव्यमें विरक्तिके प्रधान स्वरका होना है। सांसारिक विरक्ति भक्तिकाव्यकी मूल प्रेरणा मानी जा सकती है जब कि रोमैण्टिक मनोवृत्तिमें जीवनके प्रति प्रबल आसक्तिका भाव होता है। मध्ययुगके काव्यमें इस आन्दोलनकी असफलताका कारण यदि आध्यात्मिक है तो वर्तमान युगमें रोमैण्टिक काव्यका मुक्त रूप न मिल सकनेका कारण सामाजिक-राजनीतिक माना जा सकता है। कहा गया है महायुद्धके बाद औद्योगिक उन्नति हुई थी ऐसे पूँजीवादी व्यवस्थाका प्रवेश हो चुका था। पर विदेशी शासनमें इस व्यवस्थाको विकासका पूरा अवसर नहीं मिल सकता था। इस कारण मध्यवर्गके व्यक्तिके सामने स्वच्छन्दताका आकर्षण और सम्भावना तो आ चुका था पर वह सब प्रकारसे अपनेको निरुपाय पा रहा था। औद्योगिक क्रान्तिके समय सामन्तवादकी ढहती हुई दीवारोंपर खड़ा हुआ व्यक्ति भ्रम ही नहीं पर यह मानता है कि स्वच्छन्द आकाश अपनेको मुक्त होनेके लिए विद्रोह करता है। प्रारम्भमें यह रोमैण्टिक कवि स्वप्न-द्रष्टा होता है कल्पना जगत्‌में रहता है और

अपनी दमित इच्छाओंको व्यक्त करता है। यह कविता भी वास्तवमें मानसे पिछली कविताके प्रति विद्रोह करती है और इसमें संवेदनात्मक भावना तथा वासना रहता है। रोमैण्टिक युगकी प्रारम्भिक कविताएँ व्यक्तिगत प्रेम तथा मनःप्रवृत्त जीवनकी अभिव्यक्तिमें उन्माद तथा भावना रहता है। पर आगे चलकर कविका व्यक्तिवाद उसको अभिन्त-विक अन्तर्मुखी कर देता है और उसके सामने व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी प्रति-क्रिया सीमाएँ हाथ लगती है। सामाजिक मर्यादाओंसे अपनेको मुक्त समझ कर भी वह अपना कोई सन्तुलन स्थापित नहीं कर पाता और इस प्रकार समाज तथा बाह्य जगत् दोनोंसे असन्तुष्ट होकर वह अपने काल्पनिक लोक-के स्वप्नोंमें आन डाल जाता है। अन्तर्मुखी रोमैण्टिक कवियोंमें असन्तुलित आवेगके साथ मानसिक कुण्ठाओंकी अभिव्यक्ति अधिक होती है। उनमें रोमैण्टिक मुक्ति उन्माद तथा आवेगका स्थानपर कुण्ठा अवसाद तथा विरक्ति ही प्रधान हो जाती है। छायावादी युगकी जिन प्रवृत्तियोंका उल्लेख किया गया है उनमें रोमैण्टिक आन्दोलनके साथ ही उसकी पतन-न्मुखी प्रवृत्तियोंका समावेश होना सम्भव हो गया। इस कारण छायावादी काव्यमें दोनों ही प्रकारकी रोमैण्टिक प्रवृत्तियोंका ऐसा घाल-मेल हो गया है कि उसकी प्रमुख धाराएँ तथा स्वच्छन्दतावादी आवनाओंका पहचानना कठिन है।

इतनामयी रोमैण्टिक भावनाका उदाहरण 'प्रसाद' की राहीक कवि शान्तेच्छाकी कविता है। वह महाभिव्यक्तिवादी कवि है जिसको रोमै-ण्टिक तथा प्रतीकवादियोंके मध्यम माना जा सकता है। उसका प्रधान स्वर रोमैण्टिक है। उसके काव्यमें भावनाओं और अनुभूतियोंका व्यक्ति-गत अभिव्यक्ति है। उसके स्वरमें दीनात्मकता भी है पर बौद्धिकता कितना अधिक है। उसकी कविता आत्माकी अन्तर्मुखता प्राप्ति निराशा आत्मघातकी इच्छा तथा सामान्य विरक्ति नहीं है। उसने इस रोमैण्टिक अवसाद वेदना दुःखमयता और कण्ठ आह्लादका सम्पादित शैली और कोमलता किन्तु आवरक दीर्घता व्यक्त किया है। वास्तवमें

एक टूटते हुए युगका प्रतिनिधि है जिसमें व्यक्ति अपने विश्वासका आधार खो चुका था जिसमें किसी आस्थाके लिए स्थान नहीं रह गया था। परन्तु छायावादी युगकी परिस्थिति न तो रोमैण्टिक आन्दोलनके प्रारम्भिक युगसे पूर्णतः मिलती है और न पतनकालीन इन परिस्थितियोंसे ही पूरी तरह समान है। यदि इस युगमें साम्राज्यवादी बन्धनोंके कारण रोमैण्टिक अपार आशा उल्लास तथा विश्वासका वह रूप नहीं मिलता है तो पतनकालीन निराशावादिता तथा आस्थाहीनताको भी इस युगके काव्यमें उस सीमा तक स्थान नहीं मिला है। राजनीतिक तथा सामाजिक कारणोंसे इस युगका व्यक्तिवादी कवि निराश और कुण्ठित हुआ है, पर उसने आस्थाका सम्बल नहीं छोड़ा है। राजनीतिक क्षेत्रमें गान्धीय आन्दोलनकी असफलताके बीचमें भी जनताको धार्मिक आस्थाके बलपर निराश नहीं होने दिया था। इसी प्रकार इस युगके व्यक्तिवादको आध्यात्मिकतासे बहुत बल मिला है। राष्ट्रीयताके विकासमें आध्यात्मिक चामत्कारका हाथ भी रहा है यह इस बातसे सिद्ध है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनको रामतीर्थ विवेकानन्द दयानन्द तथा अरविन्दके आध्यात्मिक सन्देशोंसे बल मिला है। यद्यपि मैं शम्भूनाथ सिंहकी इस बातसे सहमत हूँ कि इस युगकी आध्यात्मिकता प्रधानतया एक दृष्टिकोणके रूपमें थी जिसमें साधनाका स्थान नहीं था वह धार्मिक परम्परा और रुढ़िवादके विरुद्ध विद्रोहके रूपमें आयी थी। उसका लक्ष्य व्यक्तिकी आत्माको स्थूल सामाजिक नियन्त्रणसे मुक्त करना था यद्यपि वह इस प्रतिक्रियाके प्रभावमें स्वयं भौतिकताका विरोध करनेवाली हो गयी है। इसमें अन्तिम वाक्यको मैं यों रखना चाहूँगा 'वह स्वयं भौतिकताका विरोध करनेवाली जान पड़ने लगी' क्योंकि छायावादी आध्यात्मिकता जिस प्रकार भ्रामक है उसी प्रकार उसमें भौतिकताकी अस्वीकृति भी भ्रम-मात्र है। जो भी हो इस आध्यात्मिक दृष्टिकोणने इस युगकी कविताको प्रभावित किया है। इसने एक ओर छायावादी काव्य प्रेम और सौन्दर्य सम्बन्धी रोमैण्टिक काव्यसे भिन्न रखा और दूसरी ओर अतिव्यक्तिवादी भावना"

वेदना तथा दुःखप्रियता और मृत्यु आह्वानकी पलायनमुखी रोमैण्टिक प्रवृत्तियोंसे भी बच सका। इस आध्यात्मिक भ्रमका आश्रय तत्कालीन राष्ट्रीय जागरणकी चेतनाके अनुकूल तो था ही उस समयकी सामाजिक स्थितिमें अपने व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यके दृष्टिकोणके अस्तित्वकी रक्षाके लिए भी आवश्यक हो उठा। प्रमुख छायावादी कवियोंमें व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका समाज-विरोधी स्वर दबा हुआ है। वास्तवमें ये द्विवेदी-युगके नैतिक मान्यों तथा गान्धीकी राष्ट्रीयताके नैतिक आदर्शकी भूलकर अवहेलना नहीं कर सके। इनसे अधिक स्पष्ट व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी माँग इनके बादके कुछ कवियोंमें पायी जाती है। इसीलिए ये कवि रोमैण्टिक प्रभावके अधिक निकट भी हैं। आध्यात्मिक रूपक उतरते ही कुछ अनजान कवियोंमें पलायनमुखी निराशा वेदना तथा कभी-कभी मृत्यु-आह्वानकी भावना मिलने लगती है। पर नयी कविताकी विस्तृत धारामें यह भावना क्षीण हो रही है क्योंकि हमारे समाजमें छिन्नभिन्नता, निष्क्रियता और स्वार्थपरता कितनी ही क्यों न बढ़ गयी हो पर निर्माणके प्रति उसका विश्वास बना हुआ है।

छायावादी काव्यकी सामान्य प्रवृत्तियोंकी व्याख्या करनेके पूर्व हमें एक ऐसी प्रवृत्तिके अभावकी बात कह देनी आवश्यक है जिसके कारण इस काव्यकी समस्त रोमैण्टिक भावधारा प्रच्छन्न हो गयी है। सामन्तयुगीन संस्कारवादी (क्लैसिसिज़्म) काव्यके विरोधमें जब रोमैण्टिक काव्य अपनी अभिव्यक्तिका माध्यम ढूँढ़ता है उस समय वह मुक्त व्यक्तिवादी होकर भी लोकगीतोंकी उन्मुक्त जन भावनाओंसे प्रेरणा ग्रहण करता है। संस्कारवादी काव्यमें (इसी प्रकार हिन्दीके रीति काव्यमें) सामाजिक मर्यादाओं तथा नैतिक मान्यताओंके साथ साहित्यिक अभिव्यक्तिमें भी परम्परागत रूढ़ियाँ आ जाती हैं। रोमैण्टिक विद्रोहकी कविता उन मर्यादाओं तथा आदर्शोंके साथ परम्परागत रूढ़ियोंका विरोध करती है और अक्सर जिस प्रकार यह काव्य मुक्त जीवन-दर्शनके लिए लोकगीतोंकी स्वच्छन्द भावधाराकी ओर मुड़ता है उसी प्रकार भाषा तथा शैलीके लिए उसकी

जीवन्त परम्पराका आश्रय भी लेता है। इस प्रकार रोमान्सवादी काव्यकी प्रारम्भिक प्रवृत्ति लोक-जीवन और काव्यमें सम्बन्ध स्थापित करनेकी होती है। बादमें स्वातन्त्र्यकी चेतना व्यक्ति-केन्द्रित होनेके कारण यह काव्य आत्मगत होकर अधिकाधिक मनस्परक कल्पनाप्रवण स्वप्निल आदर्शवादी तथा अभिव्यंजनात्मक होता जाता है। पहले ही कहा गया है कि द्विवेदी-युगके कुछ कवियोंमें स्वाभाविक तथा स्वस्थ रोमैण्टिक भावना विकसित हो रही थी जिसमें भाषा शैली तथा भाव सभी रूपोंमें जन जीवन तथा लोक-गीतोंसे प्रेरणा ग्रहण की गयी थी। परन्तु छायावादी काव्यने इस परम्पराको आगे नहीं बढ़ाया। छायावादके आन्दोलनमें रोमैण्टिक दृष्टिसे सबसे बड़ी कमी यह थी कि इस काव्यने लोक जीवनकी भूमि प्रारम्भमे ही छोड़ दी है — क्या भाव क्या भाषा और क्या छन्द-विधानकी दृष्टि। इस युगके जिन अन्तर्विरोधोंका उल्लेख किया जा चुका है उनके अतिरिक्त एक यह भी है कि छायावादी काव्य अपनी प्रेरणाएँ इस दिशामें बहुत-कुछ विदेशी साहित्यसे प्राप्त कर रहा था जब कि सामाजिक भूमिकाकी दृष्टिसे उसे लोक-जीवनकी ओर मुड़ना चाहिए था। यहाँ यह बात कहना प्रासंगिक होगा कि इस समय तक योरोपमें रोमैण्टिक कविताके युगको समाप्त हुए लम्बा अरसा बीत चुका था। यह ठीक है कि छायावादी कवि पाश्चात्य रोमैण्टिक कवियोंसे अधिक प्रभावित हुए हैं पर बादके कवियोंसे नितान्त अपरिचित न थे। इसके अतिरिक्त इन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कविताका प्रभाव ग्रहण किया है जिसमें पश्चिम और पूर्वके जीवन-दर्शन तथा सौन्दर्य दृष्टिका समन्वय हुआ है। लोक-सम्पर्कहीन रोमैण्टिक आन्दोलन होनेके कारण छायावादी काव्यमें प्रारम्भसे ही जीवनकी अभिव्यक्ति अत्यन्त व्यक्तिवादी और बौद्धिक हो गयी है और उसकी शैली लाक्षणिक तथा प्रतीकात्मक रही है। छायावादी गीति-भावनामें लोक-गीतोंके ताल और लयके स्थानपर वर्णोंकी स्वर-मैत्री तथा छन्दमयता प्रधान है। भाषामें सहज बोधगम्यता तथा प्रसादगुणके स्थानपर लाक्षणिकता ध्वन्यात्मकता तथा प्रतीक

विधान विरोध है। वास्तवमें उपर्युक्त अभावके कारण छायावादी काव्यम रोमैण्टिक काव्यकी ताजगी उन्मुक्तता भावाकुलता सीधे प्रभाव डालनेकी शक्ति तथा उल्लासपूर्ण उमंगकी कमी है। इसी कारण यह काव्य कलावादी नी हो गया है। इसकी अन्य प्रवृत्तियाँ शैली और शिल्प-विधिमें सन्निहित हो गयी है। इसी कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्लने छायावादके आन्दोलनको शैलीगत स्वीकार किया है। यह भ्रम इसी कलावादी प्रवृत्तिके कारण हुआ है।

छायावादकी पहली प्रवृत्ति उसका व्यक्तिवादी दृष्टिकोण है जो रोमैण्टिक कविताकी आधार भूमि है। छायावादमें पिछले युगोंकी नितान्त वस्तुपरकता तथा विषयकी प्रधानताके प्रति गहरा विद्रोह किया है और अपने व्यक्तित्वकी स्वीकृतिके लिए घुमा हुआ एलान है। जैसा कहा गया है इस प्रतिक्रियामें उसकी अपनी वैयक्तिकता इतनी अन्तर्मुखी हो गयी कि कवि वस्तु-सत्यकी नितान्त अवहेलना करके सूक्ष्म भावात्मक स्वप्नों आधार वायवी रंगीन चित्रों तथा कल्पनाकी चित्र-विचित्र घाटियोंमें रमता रहा। साधारण जीवन और जगत्से सम्बन्ध न होनेका कारण इन कवियोंकी आत्माभिव्यक्तियोंमें व्यक्तिगत जीवनकी सुख-दुखमयी संवेदनाओं आशा-निराशाके अन्तर्द्वन्द्वोंका भी बहुत कम आ सका है। काव्यमें जिन कवियोंमें प्रेमका मुक्त रूप है और जिन्हें आध्यात्मिक मार्ग नहीं चाहिए थी उनमें यह रूप अवरुद्ध हो सका है। परन्तु प्रमुख छायावादी कवियोंने समस्त जगत् तथा प्रकृतिको अपनी भावना तथा कल्पनाके रंगोंमें देखा है और उसी रूपमें उन्हें चित्रित किया है। इस काव्यमें भाव अनेक रंगोंका सौन्दर्य है उसके सूक्ष्मसे-सूक्ष्म छायातप (शेड) को चित्रमय करनेका प्रयास किया गया है। परन्तु वस्तु जगत्की प्रतिक्रियामें उत्पन्न होनेवाली स्वस्थ संवेदनाओंका रूप इस छायामें कहीं दिखाई नहीं देता। इस कारण इस काव्यमें भावात्मक तथा कल्पनात्मक सौन्दर्य है पर वस्तुका नितान्त अभाव है। रोमैण्टिक काव्यकी प्रेम तथा सौन्दर्यसम्बन्धी प्रवृत्ति छायावादमें लगभग समानरूपमें पायी जाती है।

रोमैण्टिक प्रेम उन्मुक्त प्रेम है, साथ ही आदर्शोन्मुखी भी। प्रेम करनेका सबका समान अधिकार है। समाजकी प्राचीन मर्यादाएँ इसके मार्गमें बाधक होती हैं, इस कारण उनसे मुक्त होना है। छायावादमें भी प्रेमका बहुत-कुछ ऐसा रूप है। मर्यादावादी नैतिकताकी बाधाके कारण इस युगके काव्यमें प्रेमकी वासना कुण्ठित और दमित रह गयी है, इस कारण कुण्ठा तथा निराशाका स्वर सुनाई देता है। रोमैण्टिक दृष्टिसे सौन्दर्य मनस्परक है वस्तुपरक नहीं। छायावादी भी सौन्दर्यको मनस्परक स्वीकार करते हैं। वास्तवमें व्यक्तिवादी भावनाके कारण सौन्दर्य तथा प्रेमका यह रूप अतीन्द्रिय तथा भाव प्रधान था। रोमैण्टिक काव्यके समान छायावादमें मानवतावाद तथा प्रकृति-प्रेमका महत्त्वपूर्ण विकास हुआ है। सौन्दर्य तथा प्रकृतिके आकर्षणके मूलमें जिज्ञासा, विस्मय आदि भावनाएँ भी हैं। अत्यधिक आत्म-केन्द्रित होनेके कारण प्रेमके प्रति कवि मानसिक सहानुभूतिमात्र प्रकट करता है, उसमें उसके लिए कोई सक्रिय आकर्षण नहीं जान पड़ता। प्रकृतिके प्रति आत्मीयता, सहानुभूति आदिकी भावनाएँ बहुत कम व्यक्त हुई हैं। छायावादी कविने यद्यपि रोमैण्टिक कविके समान प्रकृतिके भयानक तथा कोमल दोनों रूपोंमें सौन्दर्य तथा आकर्षण पाया है, पर छायावादी कविमें आत्मीय सम्बन्धकी भावनाके स्थानपर बौद्धिक सहानुभूति ही विशेष है। कभी कविने प्रकृतिपर अपनी मानसिक स्थितियों, संवेदनाओं तथा भावनाओंका आरोप किया है और कभी अपने मनकी विभिन्न स्थितियोंके सूक्ष्म सौन्दर्यमय व्यंजनाके लिए प्रकृतिकी स्थिति-परिस्थितियोंको चुन लिया है। ऐसे कविने अपने व्यक्तित्वका प्रकृतिपर आरोप किया है और प्रकृतिमें स्वतन्त्र चेतना तथा सत्ताको भी स्वीकार किया है। इस दृष्टिसे ये कवि सर्वात्मवादी हैं जिसके मूलमें प्रकृतिवादी सौन्दर्योपासना है। प्रकृतिवादी रोमैण्टिक प्रकृतिके बिखरे हुए सौन्दर्यके प्रति आकृष्ट होकर उसके रूप और गतिशीलतापर मुग्ध होता है। इस माध्यमसे वह प्रकृतिमें किसी अनन्त व्यापक चेतनाका आभास पाता है। छायावादी कवियोंमें पन्तकी प्रकृति सम्बन्धी कविताओं

में इस प्रकार सौन्दर्य तथा आकर्षण है। पर व्यापक रूपसे इन कवियोंने मुक्तभावसे प्रकृतिसे सीधा सम्बन्ध नहीं स्थापित किया। इन्होंने प्रकृतिको अपनी मानसिक छवियोंके सौन्दर्य-बोधके रूपमें लिया है।

पीछे जिस आध्यात्मिक भ्रमका निर्देश किया गया है उसपर यहाँ किंचित् विस्तारसे विचार कर लेना चाहिए क्योंकि इसके कारण छायावादी कविताके रहस्यवादकी व्याख्या की जाती रही है। इस भ्रमके सामाजिक कारणका उल्लेख किया गया है। देशके तत्कालीन आध्यात्मिक आन्दोलनकी बात भी कही गयी है। इसके अतिरिक्त इस देशमें आध्यात्मिक परम्पराओंका सदा गहरा प्रभाव रहा है। इस कारण इस युगके कवियोंको आध्यात्मिक जीवन तथा परम्पराओंका ज्ञान था, यह स्वीकार करनेमें कोई कठिनाई नहीं है। पर रहस्यात्मक अनुभूति तथा अभिव्यक्तिके लिए आध्यात्मिक जीवनसे बौद्धिक परिचय-मात्र पर्याप्त नहीं है। उसके लिए आवश्यक है कि इसमें जीवन (आध्यात्मिक) यापन किया जाय, इसमें रहकर अनुभव प्राप्त किया जाये। इसी आध्यात्मिक जीवनके अनुभवों उसकी मार्मिक संवेदनाओंकी अभिव्यक्ति रहस्यवाद है। इस अलौकिक जीवन और उसके साक्षात्कारका अनुभव आधुनिक रहस्यवादी कहलानेवाले कवियोंमें खोजना व्यर्थ है। परन्तु इनकी कविताओंमें जो रहस्याभास है उसके लिए पर्याप्त आधार है। वह केवल आरोपित व्याख्या-मात्र नहीं है। समुचित व्याख्या और विश्लेषण करनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन रहस्याभिव्यक्ति तथा आधुनिक रहस्याभास कविताओंमें क्या अन्तर है। पर दोनोंमें समानताकी ऐसी सीमा रेखाएँ भी हैं जिनसे यह भ्रम और आभास सम्भव हो सका है। साधनाका आध्यात्मिक जीवन अपने-आपमें पूर्ण है उस स्तर तक उठनेमें व्यक्तिके लिए अभिव्यक्तिका माध्यम स्वीकार करना आवश्यक नहीं है। पर जब इस जीवनकी अभिव्यक्ति साधक करता है तो वह रहस्यात्मक होती है। केवल साधक जिस भाषा और व्यंजनाका आश्रय इस अभिव्यक्तिमें लेता है वह

लौकिक है, सादृश्य तथा विभेदके आधारपर ही स्थित है। इस कारण साधकको एक ओर लौकिक भावनाओंका ही किसी-न-किसी रूपमें आश्रय लेना पड़ता है और दूसरी ओर काव्यात्मक प्रतीकोंका माध्यम स्वीकार करना पड़ता है। लौकिक जीवनको अलौकिक स्तर तक पहुँचानेमें तथा काव्यात्मक प्रतीकोंसे आध्यात्मिक अर्थ ग्रहण करानेके लिए रहस्यवादी अभिव्यक्ति अधिकाधिक सूक्ष्म अतीन्द्रिय अभ्यन्तरित तथा व्यापक आधार प्राप्त करती है। इसके विपरीत छायावादी कवियोंने भिन्न कारणोंसे (जिनका उल्लेख किया गया है) अपनी वैयक्तिक अनुभूति संवेदना तथा भावनाको सूक्ष्म तथा अवैयक्तिक रूपमें व्यक्त किया है। उनमें लौकिक प्रेमका आवेग है सौन्दर्यके प्रति आकर्षण है तथा जीवन-जगत्के प्रति सहज जिज्ञासा है। लेकिन उन्होंने अपने आवेग तथा आकर्षणको मानसिक प्रभाव तक सीमित रखा है अपनी जिज्ञासाको व्यापक आधार प्रदान किया है। आत्म-व्यंजक सूक्ष्म तथा अशरीरी होनेके कारण उनमें प्रेम तथा सौन्दर्यसम्बन्धी अभिव्यक्तियाँ रहस्यात्मक स्तरकी हो गयी हैं इनकी जीवन-जगत् सम्बन्धी व्यापक जिज्ञासाएँ दार्शनिक कोटिमें आ जाती हैं और इनका प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण 'स्व' के आरोपकी पृष्ठभूमिमें सर्वात्मवादी हो उठा है। छायावादी शैलीकी लाक्षणिकता प्रतीक-पद्धति तथा अप्रस्तुत-योजनाने सौन्दर्य-बोधको अनुभवके सूक्ष्म आधारपर ग्रहण किया गया है और इसमें इस अभिव्यक्तिका रूप रहस्यवादी भावाभिव्यक्तिके निकट पहुँच गया है। बादमें इस भ्रमसे आकर्षित होकर कुछ कवियोंने अपनी छायावादी कविताको रहस्यात्मक भूमिका प्रदान करनेका सचेष्ट प्रयास भी किया है। बौद्ध-दुःखवाद आनन्दमूलक अद्वैतवाद (शैवागमोंका) तथा सूफी और सन्तोंके प्रेममूलक अद्वैतवाद आदिका आधार प्रस्तुत किया गया। पर इस बौद्धिक प्रेषणीयतामें रहस्यात्मक स्तरका आत्मिक आश्वासन और आश्वासन नहीं है। प्रतीकोंका उदात्त तथा व्यक्तिगत प्रेम आदि भावनाका निर्वैयक्तिक आधार प्रदान करनेमें इस मार्गमें रहस्यात्मक अभि

व्यक्तिका आभास अवश्य आ गया है। पर इस काव्यमें आत्मोत्सर्गकी भावनाका नितान्त अभाव है क्योंकि मूलतः छायावादी कवि अहंवादी है। और इस 'अहं'की भावनाके रहते आत्मोत्सर्ग सम्भव नहीं और बिना आत्मोत्सर्गके (अहंके पूर्ण विलयके) आध्यात्मिक जीवनमें मिलन-सुखकी कल्पना नहीं की जा सकती। इस प्रकार आधुनिक छायावादी कविताके रहस्याभासको प्राचीन साधनात्मक रहस्यवाद मानना भ्रामक है और ऐसा मानना कि इससे इस कविताका महत्त्व बढ़ता है असंगत है।

छायावादकी यह स्थिति बहुत दिनों तक सम्भव नहीं थी। जीवनकी स्वीकृतियोंको गौरवान्वित करके मानसिक कुण्ठाओंको छिपाकर कल्पनालोकके छायाभास और रहस्याभास-वैभवमें अपने आपको भुलाये रहना अधिक सम्भव नहीं था और सामाजिक-भावनाओंके लिए अज्ञात अशरीरी आलम्बनका रहस्यात्मक आधार भी अधिक टिकाऊ सिद्ध नहीं हो सका। परिणामस्वरूप आजके काव्यमें एक नया मोड़ स्वाभाविक था। इस नये काव्यकी सबसे बड़ी विशेषता है कि एक यह काव्य भाव जगत्के काल्पनिक कुहरेसे निकलकर जीवनकी वास्तविकता तथा यथार्थकी ओर बढ़नेका प्रयत्न कर रहा है। कमसे-कम नवीन यथार्थवादी दृष्टि आजका कवि जीवनकी वास्तविकताकी ओर बढ़नेका प्रयास कर रहा है। इस नवीन युगकी कवितामें न तो एक-सी मान्यताएँ हैं और न समान प्रकारकी अभिव्यक्ति। पर अपनी समस्त विभिन्नताओंके बावजूद यथार्थका आग्रह उसकी सामान्य विशेषता मानी जा सकती है। व्यापक रूपसे तीन प्रमुख धाराएँ स्पष्ट होती हैं जिनमें यह आधुनिक कविता विकसित हुई है। इन तीनोंने एक-दूसरेसे प्रभाव ग्रहण किये हैं। पहले ही कहा गया है कि छाया-वादमें पलायनोन्मुखी रोमैण्टिक काव्यकी मनोवृत्ति थी। आगे चलकर इसी तथा सौन्दर्य-बोधके रूपमें यह काव्य अतिवैयक्तिक होता गया और इसका प्रयोगशील अथवा प्रयोगवादी काव्यकी सत्ता नाम-अभिधान सा [illegible] है।

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि यह अतिवैयक्तिकता छायावादी सूक्ष्म काल्पनिकताके स्थानपर यथार्थपर आधारित है। सामाजिक भावनाके विकासके साथ इस युगके काव्यने जो प्रभाव ग्रहण किये हैं और उनके अनुसार उनका दृष्टिकोण भिन्न हो गया है। एक कवियोंका ऐसा वर्ग सामने आता है जो साम्यवादियोंकी राजनीतिक प्रेरणा ग्रहण करता रहा है। इनके सामने मार्क्सका द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और उसकी समाजवादी व्यवस्था रही है। वास्तवमें अपने देशकी स्थिति यूरोपकी स्थितिसे भिन्न है। इसके अतिरिक्त साम्यवादके मूल स्थान रूसमें भी साहित्यके सम्बन्धमें दृष्टिकोण बदलता रहा है। पर यहाँकी प्रगतिवादी कविता कुत्सित समाज-शास्त्री आलोचकोंके प्रभावसे वर्गसंघर्ष तथा सामाजिक क्रान्तिका जयघोष स्वर भरती रही है। अधिकतर प्रगतिवादी कवि अपने देशके सामाजिक यथार्थसे अपरिचित रहकर रूस तथा चीनकी सामाजिक क्रान्तिके गीत गाते रहे हैं। इन दोनोंके अतिरिक्त नयी कविताकी एक तीसरी परम्परा भी रही है जिसने यथार्थकी भूमिपर उतरकर मुक्त रोमैण्टिक स्वर पहचाना है और साथ ही अपने देशकी सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियोंके प्रति जागरूकता प्रकट की है। इस काव्यमें व्यक्तिकी मानवीयता तथा सामाजिक यथार्थवादमें सन्तुलन स्थापित करनेका प्रयास है। पर आजकी इस कविताके विषयमें निश्चित रूपसे कुछ कहना कठिन है। यदि वास्तविक यथार्थके प्रति जागरूक होना नयी परिस्थितियोंके संघर्षके प्रति सचेष्ट होना इस काव्यके व्यापक दृष्टिकोण तथा शक्तिपूर्ण स्वास्थ्यके लक्षण हैं तो साथ ही व्यक्तित्वकी अनियन्त्रणता इस युगकी कविता व्यक्तिवादी कुण्ठा और कुहासेमें भी फँसा सकती है।

इस या विशिष्ट सीमाओंके बीचमें इस नये काव्यमें जो अनेक प्रकारकी प्रवृत्तियाँ हैं वे एक-दूसरेसे भिन्न ही नहीं विरोधी भी हैं। भिन्न कवियोंमें ही यह विभेद हो ऐसा भी नहीं है। एक कविकी विभिन्न कविताओं और कभी एक ही कवितामें इस प्रकारका विरोधाभास पाया जाता है।

वर्तमान युगकी नवीन कवितामें यह स्थिति इस युगके कवियोंकी मानसिक स्थितिका परिचायक है। इस युगका कवि भी मध्यवर्गका है और वह इसी वर्गसे अपनी प्रेरणा ग्रहण करता है। यह वर्ग द्वितीय महायुद्धके समयसे ही अन्तर्विरोधोंकी स्थितिसे गुजर रहा है। इस युद्धने इसी वर्गको सबसे अधिक प्रभावित किया है। युद्धके बाद स्वतन्त्रता-प्राप्तिके समयमें भी उसकी स्थितिमें कोई सुधार नहीं हुआ है। महँगाई चोरबाजारी घूसखोरी आदिका सबसे अधिक शिकार यही रहा है। देशके स्वतन्त्र होनेके बाद इसकी आकांक्षाओंको और धक्का लगा है, क्योंकि उसकी स्थितिमें कोई सुधार नहीं हो सका। भारतके कामयमें उसीकी अस्थिर मानसिक सामाजिक तथा आर्थिक-स्थितिका संकट प्रत्यक्ष हुआ है। यह वर्ग अपनेको एकाएक विरोधी संघर्षोंकी परिस्थितिमें पाता है और अपना मार्ग निश्चित नहीं कर पा रहा है। पिछले छायावादी युगमें मध्यवर्गका व्यक्ति सामाजिक कुण्ठाओंसे अधिक पीड़ित था पर आज उसके मनपर आर्थिक और सामाजिक वैषम्यका प्रभाव ठोस रूपमें पड़ रहा है। लेकिन इसके साथ यह स्पष्ट है कि इन परिस्थितियोंमें भी मध्यवर्गको टूटनेसे बचा लिया गया है। युद्धकालीन उद्योगों तथा भारतमें राष्ट्रीय योजनाओंके कारण इसका अधिकतर बेकारीका सामना नहीं करना पड़ा है। इसके अतिरिक्त उसकी सामाजिक चेतनाको निम्न वर्गकी अपेक्षाकृत सुधरी हुई स्थितिसे भी आश्वासन मिला है। उसकी स्थितिका यही अन्तर्विरोध है। एक ओर राष्ट्रीय स्वाधीनता और उन्नति (कितनी ही कम रफ्तारसे हो पर इसका अस्वीकार नहीं किया जा सकता) से उसके मनमें आस्था और विश्वास जमता है तो दूसरी ओर अपनी बढ़ी हुई महत्त्वाकांक्षाओंके परितृप्त न होनेसे निराशा और अवसाद भी बढ़ता है। इसके अतिरिक्त उसमें आत्ममग्नता (सेल्फ कान्शसनेस) और संवेदनशीलता विशेष है जिसके कारण वह अपनी स्थितिको लेकर संसारकी अनेक विरोधी मान्यताओंपर तटस्थ चिन्तन-विचारण करता है। परिणाम स्पष्ट है एक ओर उसकी

संवेदनाएँ अधिक वैयक्तिक होती जाती हैं और दूसरी ओर वह अपनेको समयकी सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओंसे अलग नहीं कर पा रहा है। आजके कविकी सबसे बड़ी समस्या यही है। इस समस्याको लेकर उसके मनमें संघर्ष चल रहा है कि वह अपने अत्यधिक संवेदनशील व्यक्तित्वमें आजके युगकी विषम समस्याओंका सन्तुलन किस प्रकार स्थापित कर सके। नयी-पुरानी सीमाके अन्तर्गत सब कुछ समझ लेनेवाले आलोचकोंने नयी कविताकी खोजपर प्रश्न-चिह्न लगाया है। पर मेरा आग्रह है कि आजकी कविताकी प्रेरणा यही संघर्ष है। मार्ग खोजनेका संघर्ष कम महत्त्वपूर्ण नहीं परन्तु यह ठीक है कि आगे बढ़नेकी प्रेरणा देनेवाले संघर्षसे यह बड़ा नहीं। जिनके लिए सब कुछ निश्चित है मार्ग स्पष्ट है उनकी समझमें मार्ग खोजनेके संघर्षकी बात आ ही नहीं सकती है।

वर्तमान नयी कविताको लेकर प्रतीकवादका जिक्र भी जरूरी हो जाता है। बहुत-से आलोचक इस कविताको इस पूर्वाग्रहके आधारपर अन्तर्मुखी अति अहंवादी असामाजिक तथा अस्पष्ट कहते हैं। फ्रान्सकी जिस सामाजिक स्थितिमें प्रतीकवाद तथा अन्य और व्यक्तिवादोंका जन्म हुआ था उससे इस देशकी स्थिति नितान्त भिन्न है। साधारण असन्तोष और निराशासे उस युगकी घोर असामाजिक आत्महन्ता प्रवृत्तियोंकी तुलना नहीं की जा सकती। बौद्धिक दृष्टिसे इस कविताका प्रभाव अवश्य कुछ कवियोंपर माना जा सकता है पर यह भी विशेष महत्त्वका नहीं। फ्रान्सके प्रतीकवादियोंमें बर्गसनने रोमाण्टिक कल्पनाओंको बौद्धिक भाषा दी। उसने कुछ अनुभूतियोंको कल्पना-बिम्बोंके माध्यमसे व्यक्त किया है। वह अभिव्यक्तिको आकस्मिक तथा अनुभूतिको निरुद्देश्य मानता है। बिम्बोंके द्वारा वह मनके गूढ़ कल्पनालोकों और अनुभूतिकी अतल घाटियों तक पहुँचनेका दावा करता है। कल्पना अणुओंमें तथा विचरणशील आधार क्रिया भी इस अनुभूतिको आकस्मिक मानता है। जिस प्रकार पत्थर फेंकनेसे पानीमें लहरियाँ उठती हैं उसी प्रकार जीवनकी आकस्मिक पर्गीहट ही

वास्तविक अनुभूति है। कविका काम इसकी व्याख्या करना नहीं है वह तो केवल प्रतीकोंमें उसे व्यक्त कर दे। उसने संगीतसे प्रभाव ग्रहण किया है। इस प्रकार कविता अब समझनेकी वस्तु नहीं वरन् उसकी कल्पनाओंका अनुभव करना चाहिए। मेलार्मेने यथार्थ संसारसे भिन्न आनन्दमय 'विशुद्ध संसार' स्वीकार किया है। पाल वर्लेन और भी अधिक व्यक्तिवादी था। उसने 'विशुद्ध ध्वनि' का सिद्धान्त अपनाया है। इस प्रतीकवादी कवितामें भावात्मकताकी तृप्ति विरोधी स्वर था। प्रतीकवादियोंके अनुसार साधारण भाषा और उसके शब्द कविताके लिए उपयुक्त नहीं हैं। इसलिए इन कवियोंने साधारण उपकरणोंको छोड़ रहस्य संकेत तथा प्रतीकका आश्रय लिया है। भावात्मक महत्त्व अब व्यक्त करनेके लिए कम रह गया और शब्दोंके लिए अधिक। प्रचलित छन्दकी संगतिसे इन्होंने वेदनाके एक स्वतन्त्र छन्द आत्मका भय माना। इसके अनुसार जब वस्तुओंका बिम्ब कल्पनामें सीधा पड़ता है और अपनी चमक फैलाता है, उस समय उसकी अभिव्यक्ति मुक्त छन्दोंमें ही सम्भव है। इन प्रतीकवादियोंका जीवन-दर्शन आपके कठिन भिन्न है, पर-उन सब-साम्य अन्तर्मुखी प्रवृत्तिके कारण सम्भव हुआ है। संगीतसे साम्य किंचित् विशेष है और वो आमको विषम मानसिक स्थितिकी अभिव्यक्तिके लिए आवश्यक है। प्रतीकवादियोंने योरोपके काव्यको एक नवीन शैली प्रदान की है और हम अपने प्रयोगशील कवियोंमें भी यह आशा कर सकते हैं। प्रतीकवादके बाद घनवाद, भविष्यवाद, दादाइज्म आदिमें घोर व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँसे समाज भर मान स्मृतियाँ, भविष्य तथा वर्तमान मिथ्या देखता सकल्प किया। इनका विध्वंसक स्वर अतिशय समाज-विरोधी था। आगे चलकर अति यथार्थवाद तथा अभिव्यंजनवादमें व्यक्तिवाद अपने चरम अन्तःस्पर्शमें सामने आ जाता है। अतियथार्थवादमें सभी प्रचलित शास्त्रों तथा मर्यादाओंके प्रति विद्रोह है इसपर मनोविश्लेषणका गम्भीर प्रभाव है। इस कारण जीवनके आन्तरिक समूहको सबसे अव्यवस्थित रूपमें गहराइयोंकी मान इसमें है। अति

स्वभावमें आत्मविश्वास विशेष है इस कारण वह आशान्वित है पर व्यक्तिवादी होनेके कारण उसने भी संसारको नग्न-रूपमें उपस्थित किया है। इन बातोंका प्रभाव आजकी कवितापर नहींके बराबर है। वास्तवमें हमारे कवियोंका सम्बन्ध इलियट एजरापाउण्ड ऑडेन तथा स्पेण्डरसे अपेक्षाकृत अधिक है और इन अंग्रेजी कवियोंने काव्यके विभिन्न वादोंका प्रभाव किंचित् भिन्न रूपमें ग्रहण किया है यह प्रभाव भावका कम शैलीका अधिक है। इस प्रकार इन विभिन्न वादियोंकी अतिवैयक्तिकता तथा असामाजिकताके कारण हमारे कवियोंपर बिना विचार किये करना अनुचित है।

आजके नये कवियोंमें कोई भी इस कोटिका असामाजिक व्यक्तिवादी नहीं है जिस कोटिके कवि और कलाकार योरोपके पिछले युगमें ही भिन्न कारणोंसे उत्पन्न हुए हैं। योरोपमें १८५० ई० के बाद ज्ञान-विज्ञानके क्षेत्रमें भारी परिवर्तन हुए हैं। डारविन फ्रायड तथा मार्क्स आदिने पुरानी मान्यताओंको जड़-मूलसे हिला दिया है। भौतिक-विज्ञानकी उन्नतिसे योरोप चमत्कृत हो गया। इसी बीच अनेक संहारक युद्ध तथा क्रान्तियाँ हुईं। इन सब बातोंका प्रभाव वहाँके काव्यपर अनेक रूपोंमें देखा जा सकता है। जो बात योरोपमें क्रमशः हुई है वह हमारे युगके सामने जब एकाएक उपस्थित हो गयी है। परन्तु परिस्थितिकी यह समानता वास्तविकसे अधिक आभास-मात्र है। एक तो हमारे देशकी परिस्थिति भिन्न है और दूसरे ये सब विचार योरोपके बाद यहाँ आये हैं इस कारण इनका प्रभाव कम हो जाता है। फिर भी इन सभी नवीन विचारों तथा बदले हुए मान्यताओंकी पीठिकापर इस काव्यमें वस्तु-सत्यको या शैलीको लेकर अनेक प्रवृत्तियाँ योरोप तथा इंग्लैण्डके पिछले काव्यके समान मिल जायें तो आश्चर्य नहीं। इस काव्यमें विचारोंका तीव्र संघर्ष भावोंका संतुलित उन्माद अथवा प्रभावोंका दमन मिलता है। उसी प्रकार इसमें नवीन अनुभूतियों सत्यों तथा विचारोंको व्यक्त करनेके लिए पुरानी व्यंजना

धार्मिक प्रति विद्रोह है। पर घोर व्यक्तिवादी कविताका यह अन्त इष्ट नहीं है और इसलिए उस सीमाकी असामाजिकता भी इसमें नहीं है। मैं कह चुका हूँ कि साधारणकी पिछली परिस्थितिसे हमारे युगकी आजकी स्थिति भिन्न है पर साथ ही यह भी निश्चित है कि पिछली परिस्थितिसे आजकी स्थिति बदल रही है तब नयी मान्यताओंका निर्माण करनेकी जिज्ञासा बढ़ गयी है। इस बदली हुई परिस्थितिके अनुरूप भावोंकी अभिव्यक्तिका माध्यम खोजना आजके कविके लिए अनिवार्य है। आजके युगमें पुरातन साधारणीकरणकी स्थिति बदल गयी है। व्यक्ति और समाजकी प्रतिक्रियाओंका व्यापक आधार देना ही साधारणीकरण है और कविता केवल रसकी सिद्धि नहीं रहती वरन् उसकी संवेदन-भावना प्रभाव देकर भी सिद्ध होती है। भारतीय काव्य-शास्त्रमें भी ध्वनिका सिद्धान्त सर्वमान्य रहा है। यदि जीवन और जगत्‌में नवीन सम्बन्धोंकी स्थिति उत्पन्न हो जायगी तो कविको निश्चय ही ध्वनित रूप अब तथा प्रभावकी व्यंजनाके लिए नयी शब्द-शक्ति नयी व्यंजना-शैली तथा नये छन्द-विधानकी योजना करनी होगी। कविताका जबतक प्रभावका अधिक सुधारक करनेकी बात स्वीकृत रहेगी तबतक किसी-न-किसी प्रकारकी छन्द-योजना भी मान्य रहेगी भले ही वह मुक्त छन्द ही क्यों न हो। मानसिक संवेदनाओं, प्रभावों तथा तीव्र विचारोंका एक साथ अभिव्यक्त करनेके लिए मुक्त-छन्दोंका प्रयोग अनिवार्य हो गया है।

आजका साहित्य केवल अभिव्यक्तिके सौन्दर्य-भावको अपना लक्ष्य मानकर नहीं चल सकता। वह अधिक गम्भीर सामाजिक उत्तरदायित्वका निर्वाह करता है। यह इस बातसे सिद्ध होता है कि आजका कोई कवि व्यक्तिवादको चरम करके स्वीकार नहीं कर रहा है। इसके अतिरिक्त वह सामाजिक प्रेषणीयताको महत्ता देता है। मनुष्यके लिए जगत् आनन्द भी उत्पन्न करनेवाला हो चाहे न भी हो पर उसकी निजकी सामाजिक स्थिति अधिक सत्य है यथार्थ है। आज प्रश्नोंके इस संसारमें छायावादी व्यक्ति

या तो अपनी दमित कुण्ठाओंसे पागल मात्र आवेश या अपने अहंकारमें
आत्म-विस्मृत। सामाजिक प्रयोजन तथा वर्गहीन समाजके आदर्शको लेकर
चलनेवाले नये प्रगतिशील कवियोंका उल्लेख किया गया है। पर दुर्भाग्यसे
ऐसा कहा गया है कुत्सित समाजवादी विचारकों तथा आलोचकोंसे प्रभावित
रहनेके कारण वे मार्क्स तथा लेनिनकी साहित्यकी यथार्थवादी समाजशास्त्रीय
व्याख्याके वास्तविक अर्थको समझनेमें असमर्थ रहे हैं। माक्सेवास्की अवेर
बाख तथा फ्रीचे आदि संकीर्ण समाजवादी विचारकों तथा आलोचकोंने
सभी साहित्यको संकीर्ण और वर्गवादी सीमाओंमें बाँध दिया था। इनके
प्रभावमें साहित्य अपनी समस्त शक्तिशाली परम्परासे विच्छिन्न हो गया।
पर रूसमें यह स्थिति बहुत दिन तक नहीं रह सकी। जिन परिस्थितियोंमें
यसेनिन-जैसे भावुक और कोमल कविको आत्महत्या करनेपर बाध्य
होना पड़ा था और जिनका बोझा अन्तमें मायकावस्की-जैसे कविके लिए
असह्य हो गया उनका निराकरण रूसमें शीघ्र ही होना शुरू हो गया।
फ्योदोर लेविन मार्क रोजेन्थाल तथा माइकेल लीफशित्स आदि आलोचकोंने
संकीर्ण वर्गवादियोंका तीव्र विरोध किया और उन्होंने स्वस्थ समाजवादी
यथार्थकी व्याख्या की। गोर्कीने अपने जीवन और साहित्यमें इसी विचार
धाराका पोषण किया है। इस व्याख्याके अनुसार परम्पराको स्वीकार
किया गया स्वस्थ रोमैंटिक भावनाको ग्रहण किया गया इसी कारण आज
रूसमें पुश्किन तथा टाल्स्टायका महत्त्व स्वीकृत हुआ। इधर कुछ प्रगति
वादी आलोचकोंने संकीर्ण समाजवादियोंका विरोध किया है और साहित्य
को सही मान्यता देनेका प्रयत्न किया है। पर यहाँ एक बातकी ओर
संकेत कर देना आवश्यक है। प्रगतिशील कहलानेवाले कवि केवल पाश्-
विक यथार्थसे अपरिचित रहे हैं पर उनकी कविताका महत्त्व अस्वीकार
नहीं किया जा सकता। इनको स्थितिसे भागकी कविताकी धार व्यक्ति
वादी तथा असामाजिक प्रवृत्तियोंसे विकासमें बाधा पहुँची है इस प्रकार
इन्होंने सम्पूर्णताका नाश किया है।

अन्तमें उस परम्पराकी ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है जो अभी स्पष्ट रूपसे सामने नहीं आयी है पर जो गति और शक्तिका परिचय छायायुगके आरम्भ देती आ रही है। इस वर्गके कवियोंने छायावादी शैलीके गत्यात्मक तत्वोंको ग्रहण करके शुद्ध रोमैण्टिक काव्यका प्रारम्भ किया था। प्रगतिवादमें समाजवादी यथार्थवादी उदार दृष्टि ग्रहण कर इन्होंने देशकी वास्तविक समस्याओंको जीवनकी भावशीलताके आधारपर ग्रहण किया है। इन कवियोंने समस्त परम्पराको स्वीकार करके भी लोक-जीवन और लोक-साहित्यसे प्रेरणा ग्रहण करना प्रारम्भ किया है। इस परम्परामें प्रयोगशील तथा प्रगतिशील दोनों वर्गके कवि आ जाते हैं। यौरोपमें भी इसी प्रकार लुई अरागाँ पाल एलुआर पाब्लो नेरूदा, लोर्का आर्डेन तथा स्पेण्डर आदि कवियोंने अपना मार्ग संघर्षके बीचसे निकाला था। इस दृष्टिसे विचार करनेपर अभी कवितामें सीमित अथवा निराश होनेकी बात नहीं है। यद्यपि ये अभी बहुत कुछ अपने व्यक्तित्व तथा अहंमें उलझे हुए जान पड़ते हैं पर इनके अन्दर जीवनके स्वस्थ मार्गकी खोज निकालनेकी उत्कट इच्छा है। ये भाषा और शैलीको नये युगके अनुकूल बनानेका प्रयास कर रहे हैं जो आगत युगकी भावनाओंको सहज रूपसे ग्रहण कर सकेगी। इस प्रकार नवीन काव्यकी सम्भावनाओंके प्रति हम पूर्ण आस्थावान् हैं और अपने युगकी प्रतिभाओंके प्रति हमको पूरा भरोसा है।

स्वातन्त्र्योत्तर काव्यकी दिशा

सोलह वर्ष पहले देश स्वाधीन हुआ है और ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना राष्ट्रके इतिहासमें हजारों वर्षोंमें घटित होती है। साहित्यके इतिहासका अन्वेषक जब ऐसी घटनाओंको अपने अध्ययनकी सीमा-रेखा बनाता है तब उसका मन अनेक सम्भावनाओंसे आन्दोलित रहता है। हमारे लिए इस स्वाधीनताका दोहरा अर्थ रहा है एक ओर हम विदेशी साम्राज्यवादसे स्वतन्त्र हुए तो साथ ही हमने अपने राष्ट्रतन्त्रमें प्रजातन्त्रका प्रवेश किया है। स्वाधीनता-प्राप्तिकी यह घटना या आरम्भमें हमारे द्वारा सहज रूपमें ग्रहण नहीं की जा सकी। दूसरे महायुद्धके बाद हमारे देशके लिए यह स्वाधीनताकी उपलब्धि बहुत कुछ आकस्मिक रही है, हमारी जनता को इस बातपर विश्वास नहीं था। इसके अतिरिक्त देश-विभाजनकी स्थितिसे सम्बद्ध रक्तपात उत्पीड़न अत्याचार अमानुषिक व्यवहारने हमारी सारी संवेदनाओंको कुण्ठित और विगलित कर दिया था। ऐसी स्थितिमें हम अपनी स्वाधीनताका स्वागत खुले मनसे नहीं कर सके और न हम उस सहज उल्लासका ही अनुभव कर सके जो सम्भव था। पर किसी रूपमें क्यों न हो, राष्ट्रके लिए यह अत्यन्त महत्त्वकी घटना थी और इसकी प्रतिक्रिया हिन्दीके विस्तृत काव्याकाशपर होनी अनिवार्य थी। अनेक मनोवृत्तियों तथा परम्पराओंके कवियोंपर इसका प्रभाव विभिन्न रूपोंमें पड़ा। द्विवेदी-युगीन पुनरुत्थानकी भावनासे अनुप्राणित कवियोंने इसका स्वागत इस रूपमें किया कि भारतके गत वैभवका युग वापस आ गया है और वे अपने अपने भारतीय-सांस्कृतिक भाव विचारोंका अभिमान करनेके साथ-साथ निर्यातका विजयघोष करनेके लिए प्रस्तुत हो गए हैं। उनके राष्ट्रगरम गाथा और प्रभावी स्थिति इस प्रकार निश्चित है

कि वे गतानुगतिक सामाजिकताको अस्वस्थताका भार सौंपकर निश्चिन्त हो जाते हैं। उनसे इससे अधिककी आशा करना व्यर्थ भी था। ये कवि कवि-कर्ममें संलग्न रहकर भी युग जीवनकी धारासे बहुत पहले कट चुके थे।

छायावादी धाराके कवियोंने भी स्वाधीनताको एक मानव उपलब्धिके रूपमें स्वीकार किया है। पन्तने भारतकी स्वाधीनताको जन-जागरणके रूपमें लिया है और उसे मानवके ऊर्ध्व संचरणकी एक स्थितिके रूपमें स्वीकारा है। उनके अनुसार मानव इतिहास चेतनाके जिस उच्च स्तरकी ओर अग्रसर हो रहा है उसकी यह भूमिका है

आ गया युग का नव प्रभात,
आभा नव क्षितिजों पर छाया।
स्वर्णिम शिखरों के प्रकाश में
भू के शिखरों का मद छाया।

[अणिमा : आवाहन]

यहाँ स्पष्ट है कि पन्तका युग अनिश्चय विभ्रम द्विविधा तथा कटुता स्वर्णिम आत्मावास्य विश्वमिश्र नहीं कर पाते और उनका नया युग 'गान्धी-युग' का नया संचरण ही जान पड़ता है

गान्धी युगके सूक्ष्म सुदाम थे वह
और यन्त्र युग के मार्क्सवादि शास्त्रों पर वह
उतर रहा था मूर्त रूप धर
जन समाजवादी चरणों पर
भारत युग निर्भय भरित मा दावर,
पावन शासन।

कवि बच्चन युगका मानस सखा है और इस आत्मविश्वासका ईमानदारी बना आ सकता है। गान्धीवादी युग जिस प्रकार सूक्ष्म सुदामका युग था उसी प्रकार छायावादी कवका बाह्य सूक्ष्म सुदामका भाव्य स्वप्नों-

की रचना करता था। परन्तु कठिनाई यह है कि पन्त मानवीय चेतनाके जिस स्तरपर संचरण करते हैं उसमें इतना अधिक प्रकाश है कि हमारे युग-जीवनका सन्दर्भ और उसका यथार्थ दोनों ही उसकी चकाचौंधमें आच्छन्न हो जाते हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी जैसे छायावादके अन्तर्गत राष्ट्रवादी कवियोंने स्वाधीनताका आवाहन आदर्शवादी उन्मेषके साथ किया है। जिस स्वरमें वे देश-प्रेमके गीत गाते थे स्वाधीनताके बाद उसमें देश-गौरवका वही भाव मुखरित हुआ है

कल पूरब के प्रहरी, पश्चिम आँख रहा पर तेरा!
साधित था, तेरे कर पहुँचा ढाला विश्व सबेरा।
तुम पर चढ़ जो किरणें फूटें
हो जातीं जग पाला
आँखें रूके ये मस्तक धूप के—
मीनी माप्य बिछाता।

उनके लिए देश 'माँ' की कल्पनाका एक प्रतीक था और वीर-पूजाकी भावना उनकी मूल प्रेरणा रही है। इसी आदर्श भावनाके परिणाम-स्वरूप उनके लिए विभाजनके समयकी सम्पूर्ण नृशंस और अमानवीय घटनाएँ भारतके खण्डित अथवा अखण्डित रहनेकी समस्यामें उलझ गयी हैं

लाल किले का झण्डा हो
अंगुलि-निर्देश तुम्हारा
और अब चढ़ जाता अर्पित
तुम को देश तुम्हारा।
[युगचरण : मुक्त गगन है मुक्त पवन]

इसी प्रकार गान्धीकी हत्या हमारे देशके लिए बहुत बड़े आत्म-मन्थनकी अपेक्षा रखती थी। वह किसी मसीहाको मसीहाई विकासवाली घटना न होकर देशके लिए बहुत बड़े आन्तरिक संघर्ष झेलनेकी चुनौती थी। किन्तु पिछले युगके सभी कवियोंने बापूको जिस अवतारके रूपमें देखा था, उसका सहज परिणाम यह भी है कि उनकी हत्याको एक मसीहाई गरिमासे अधिक महत्त्व नहीं दिया गया :

मत कहो वह रह गया इनसान बन कर,
आज वह घर घर रमा भगवान बन कर।

[युगचरण : आज झोंपड़ियाँ अनन्त सुहागिनी हैं]

परन्तु छायावादी भावभूमि तथा उससे प्रेरणा ग्रहण करनेवाली उत्तर युगीन मानवतावादी भावभूमिने गान्धीको इसी प्रकार अवतारी-पुरुष रूपमें ग्रहण ही किया था। यह वीरपूजा तथा आध्यात्मिक पलायनकी सम्मिलित उपलब्धि है। पन्तकी 'बापूके प्रति' और दिनकरकी 'बापू' नामक कविताओंमें भाव-साम्य देखा जा सकता है। यद्यपि दिनकरकी कविताएँ भावावेश तथा ओजस्विताके साथ परिस्थितियोंकी कल्पना कम अधिक स्फुट काव्य-गुण प्रदान करती हैं पर युगके समस्त युगोंके आदर्शीकरण तथा देशके और मानवताके उद्धारकी एक मात्र आशाके रूपमें बापूका चित्रण समान रूपसे दोनों कविताओंमें हुआ है:

तुम शुद्ध-बुद्ध आत्मा केवल
हे चिर पुराण! हे चिर नवीन!
तुम पूर्ण इकाई जीवन का
जिसमें असार भवशून्य लीन
आधार अमर, होगा जिस पर
भावी का संस्कृति समासीन![1]

[पन्त : युगान्त]

१

दिनकरकी भावना इससे अति निकट है

तू आकारधि का महास्तम्भ आत्मा के नभ का तुंग केतु,
बापू! तू मर्त्य-अमर्त्य स्वर्ग-पृथ्वी भू-नभ का महासेतु।
[बापू]

ये दोनों कविताएँ स्वतन्त्रतासे पूर्वकी हैं पर इनमें छायावादी युगकी वह मनोवृत्ति अन्तर्निहित है जिसके कारण आज गान्धी युगकी सत्यात्मक और विस्फोटक शक्तिके रूपमें स्वीकृत न रहकर केवल श्रद्धा और समर्पण के उपादान रह गये हैं।

स्वाधीनता प्राप्तिकी महान् घटनासे कई प्रकारके कवि विभिन्न कारणोंसे अप्रभावित भी रहे। प्रगतिवादियोंने तो इसे देशकी वास्तविक स्वतन्त्रताके रूपमें तब माना ही नहीं। छायावादी युगकी मुक्तधाराके अन्यतम वरेण्य तथा नवीन आदि कवियोंने देशके लिए आशीर्वादस्वरूप इसे स्वीकार कर इसकी अभ्यर्थना की है। इनका प्राय यही भाव है कि देश स्वतन्त्र हो गया था और अब अपने-आप हो जायेगा इसी कारण से उसका अभिनन्दन करते ही देखे जाते हैं

किन्तु अब तिमिरमयी निशा चली गयी
पापपुञ्ज पापपुञ्ज, हो रही नयी!
तिमिर-व्यूह ध्वंस भानु भासमान है—
नव विहान नव विहान मानसी नयी!
[नरेन्द्र : अग्निशस्य]

अन्य स्वच्छन्दतावादी गीतकारोंमें स्वाधीनताके प्रति उत्साह अल्पमात्र ही दिखाई देता है यद्यपि उनके आशा निराशा प्रेम व्यथा सम्बन्धी भावोंमें इसका प्रभाव ढूँढ़ा जा सकता है। सम्भवतः इन कवियोंकी मनः प्रवृत्ति यह प्रतिकूल था कि वे सीधे स्वाधीनताको पुकारकर अभिनन्दन-वन्दन करते।

परन्तु स्वाधीनताको किसी दायित्वके रूपमें ग्रहण करनेवाले कवि इन समस्त पिछली परम्पराओंके कवियोंसे भिन्न हैं। आवश्यक नहीं है कि इन कवियोंने स्वाधीनता-दिवसका स्वागत करके ही कविताएँ लिखी हों पर उनमें स्वतन्त्रताके प्रति कठोर दायित्वकी चेतना मिलती है। दिनकर-जैसे कुछ सजग कवियोंमें भी स्वतन्त्रताको लेकर आत्म-मन्थनका भाव देखा जा सकता है

सबसे विराट् जनतन्त्र जगत का आ पहुँचा,
तैंतीस कोटि-हित सिंहासन तैयार करो
अभिषेक आज राजा का नहीं, प्रजा का है,
तैंतीस कोटि जनता के सिर पर मुकुट धरो।

[जनतन्त्रका दिवस]

पर कवि आज वातावरणमें इतना बह जाता है कि उसकी यथार्थ दृष्टि अवरुद्ध हो जाती है। उसके मनमें सिंहासन और राजमुकुटोंका वैभव और उसकी चकाचौंध इतनी व्यापी हुई है कि वह मुक्त सन्दर्भमें बिल्कुल हट पड़ा है। इसके स्थानपर प्रयोगवादी परम्पराके कवियोंमें दायित्वका भाव अधिक स्पष्ट है उनकी दृष्टि देशके यथार्थके अधिक निकट है। गिरिजाकुमार माथुरकी 'पन्द्रह अगस्त' शीर्षक कवितामें स्वाधीनताके आरम्भ क्षणोंमें सावधान किया गया है। इस कवितामें मुक्तिका उल्लास तो है, पर दायित्व वहनकी चिन्ता भी है

ऊँची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया, लेकिन उसकी
छायाओं का डर है

शोषण से मुक्त है समाज
कमज़ोर हमारा घर है
किंतु आ रही नयी ज़िन्दगी
यह विश्वास अमर है।

[धूपके धान]

यही दायित्वका भाव अज्ञेयकी 'जनवरी छब्बीस' नामक कवितामें अधिक आत्मपरक तथा आत्माभिव्यक्तिके रूपमें व्यक्त हुआ है। इसमें उल्लासके भावावेगके स्थानपर सुस्थिर चिन्तन और आत्मोपलब्धि है। इसमें राजा, राजमुकुट, सिंहासन-जैसे वैभवशाली उपकरणोंका अस्वीकार तो है ही नहीं साथ ही जनता, जनतन्त्र-जैसे नारोंको भी त्याग कर केवल वैयक्तिक चिन्तन और आत्म-विवेचनके स्तरपर दायित्वको आकारित किया गया है। सचमुच 'युगोंके स्वप्नको नयी आलोक-मंजूषा समर्पित' करते समय बहुत बड़े संयमकी आवश्यकता है

आज हम अक्लान्त ध्रुव अविराम गति से
बढ़े चलने का कठिन प्रण धर रहे हैं
आज हम समवाय के हित स्वेच्छया
आत्म-अनुशासन नया यह वर रहे हैं।

[बावरा अहेरी]

यहाँ सिर्फ दो कवियोंकी काव्य-धाराओंपर विचार करते समय विभिन्न कल्पनाओंके कवियोंका स्वतन्त्रतासम्बन्धी दृष्टिकोण प्रस्तुत करनेका उद्देश्य है। वस्तुतः हिन्दी काव्यके विस्तार और प्रसारके बीचमें आजकी कविकी युग-धर्मी काव्यधाराका मूल्यांकन इसमें सहायता मिलती है।

छायावादी काव्य एक विशेष वर्गकी मनःस्थितिसे सम्बद्ध रहा है। उसकी गरिमा, उपलब्धि और उसकी सारी सीमाएँ अपने युग-जीवनसे

माध्यममें ही विकसित हो सकी है, उसकी आत्मानुभूति सौन्दर्यबोध जिज्ञासा विस्मय और प्रकृतिके प्रति सचेतनशील दृष्टिकोण सामाजिक राजनैतिक धार्मिक साहित्यिक विद्रोह तथा उन्मुक्त प्रेमकी प्रवृत्तियाँ स्वच्छन्दवादी आन्दोलनके समान हैं। प्रथम महायुद्धके बाद गान्धीके नेतृत्वमें हमारा स्वाधीनताका संघर्ष इस भाव भूमिको प्रस्तुत करनेमें सहायक हुआ था। परन्तु इसके साथ ही देश जिन सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियोंसे गुजर रहा था उनके परिणामस्वरूप इस युगके काव्यने भारतीय नवजागरणके तत्त्वोंका भी आत्मसात् किया है जिसके कारण इसमें भारतीय सांस्कृतिक उद्बोध दार्शनिक आध्यात्मिक चिन्तन राष्ट्रीयताके साथ विदेशीपनके प्रति विद्रोहकी भावनाका विकास सम्भव हो सका है। गान्धी-वादी राजनीति अपने अन्तर्गत भारतीय धर्म और समाजकी परम्पराओंको स्वीकार करके चली है। पुनरुत्थानवादी नीति अतीत परम्परा और संस्कृतिकी स्वीकृतिपर आधारित होती है। गान्धीके सामने विदेशी शासनसे संघर्ष करनेका सवाल था और उसके लिए समस्त भारतीय जनताको संगठित करनेकी बात थी। परन्तु उस समय भी समस्या मात्र विदेशी शक्तिको देशसे निष्कासित करनेकी नहीं थी क्योंकि भारतीय जन-समाज स्वतः इतनी विभिन्न प्रकारकी मान्यताओं रूढ़ियों और कुण्ठाओंसे विजड़ित था कि उसकी सारी शक्ति अवरुद्ध हो चुकी थी। इस प्रकार उस समय देशके सामने एक ओर विदेशी शक्ति और दूसरी ओर अवरुद्ध शक्तिहीन कुण्ठित जन-समाज और साथ ही ये दोनों स्थितियाँ एक दूसरेपर प्रतिक्रियाशील भी थीं। अब प्रश्न था कि इन प्रतिक्रियात्मक स्थितियोंके बीच रास्ता किस प्रकार निकाला जा सके। विदेशी शक्तिसे लोहा लेनेके बाद अपनी ओर मुड़ा जाय अथवा अपने अन्दर विद्रोह तथा विध्वंस करनेके बाद विदेशी शक्तिसे लोहा लिया जाय। तत्कालीन इतिहासको देखनेसे इन दोनों ही विचार-धाराओंके प्रतिनिधि इस युगमें मिल सकेंगे।

परन्तु उस समयका हमारा संघर्ष प्रमुखतः विदेशी-शक्तिसे और

उन्मुख हो गया। जन-जीवनको संगठित तथा प्रेरित करनेके लिए जनताके विवेक तक निर्णय-बुद्धि तथा सम्मुखमको विकसित करनेकी अपेक्षा उनमें भावोद्वेग जगाना, श्रद्धा समर्पण भावनाको जगाया गया और इन सबके प्रतीक उस समयके हमारे नेता बन गये। जैसा कहा गया है श्रद्धा और वीर-भावनाके संयोगसे इस युगमें अवतारी पुरुषोंकी कल्पना की गयी। जनताके लिए यह सब ग्रहण करना आसान था एक तो इस जनताके पौराणिकतामें उसके पिछले संस्कार सहयोगी थे दूसरे इसमें आत्म-विग्रह और सम्भ्रान्ती पीढ़ीसे बचनेकी सुविधा भी थी। इस भावनासे गान्धी जन जीवनको एक शक्तिके रूपमें संगठित तथा संचालित तो कर सके पर ऐसा नहीं है कि उनको समय-समयपर इस बातका अनुभव न हुआ हो कि जन जीवन जिन टूटे-गाये संस्कारोंको लेकर चल रहा है जिन रूढ़ियों तथा पूर्वाग्रहोंसे उसका जीवन ग्रसित है वे उनके मार्गकी सबसे बड़ी बाधायें बन-बन जाती हैं। अनेक बार उनको युद्ध स्थगित करना पड़ा था अनेक बार उनको आत्म-परिष्करणके लिए अनशन करना पड़ा था यह इस बातका निर्देशक है। पर फिर भी युगके विशिष्ट व्यक्तियों तथा गान्धीके व्यक्तित्वके आकर्षणसे जन-जीवनका नेतृत्व चलता रहा और अनेकानेक विरोधी तथा असंगती स्तरोंके बीच सामंजस्य संग्राममें कन्धेसे-कन्धा मिला कर चल न सके। द्विवेदी छायावादी काव्य इसी युगकी मनोवृत्तिका प्रतिनिधित्व करता है। जिस प्रकार जनताका जीवन समस्त आदर्श कल्प-नाओं रचना तथा उपचारोंके बावजूद अन्दरसे जागरूक और जीना था उसी प्रकार इस काव्यका द्वारा सौन्दर्य भावी कल्पना सारे आदर्श वायवी रहे हैं। जिस प्रकार जनताका जीवनका मार्ग अध्यात्म भक्ति समर्पण आदर्शों आस्था तथा विश्वासपर आधारित न होकर मात्र बाह्य आचरण और सम्भ्रान्तोंमें ग्रसित थे उसी प्रकार छायावादका सारा सौन्दर्य आत्म-प्रसार मानवतावाद अन्तः अथवा बाह्य यथार्थ सन्दर्भसे हीन मात्र गोपन था।

इस शताब्दीके चौथे दशकके उत्तरार्द्ध तक इस स्थितिका विरोधाभास दिखाई भी देने लगा था। मार्क्सवादी तथा समाजवादी विचार-धाराओंने इन असंगतियोंकी ओर ध्यान आकर्षित करना प्रारम्भ किया था। परन्तु जिन समस्याओंकी ओर इनका ध्यान गया वे ऊपरी थे। असंगतियों तथा विरोधाभासोंकी आन्तरिक प्रक्रियाको न समझ सकनेके कारण ही प्रगतिशील आन्दोलन वास्तविक यथार्थ दृष्टि तथा उससे प्रेरित शक्तिका परिचय नहीं दे सका। वह विदेशी विचार-धारा और नारोंमें उलझकर अपनी वास्तविक क्षमताकी भाव भूमिको स्पर्श नहीं कर सका। फिर भी यथार्थकी ओर देखनेके आग्रहकी आवाज इन्होंने अवश्य उठायी थी। यही कारण है कि एक बार इसकी ओर हिन्दी साहित्यके सभी प्रमुख लेखकों और कवियों का ध्यान आकर्षित हुआ। पन्त तथा निराला जैसे छायावादी कवियोंने सामाजिक विषमता तथा शोषणको अपनी कविताका विषय बनाया। यह बात दूसरी थी कि किस कविने किस स्तरपर और किस भाव-बोधके साथ इसको ग्रहण किया है। पन्तने बौद्धिक सहानुभूति अधिक दी है पर निराला ने मुक्त रहकर भी अधिक क्रान्तिकारी स्वरका परिचय दिया है। इन्होंने जिस शक्तिके साथ सामाजिक विरोधाभासको अपनी इस काल युगकी कविताओं (जैसा नये पत्ते तथा कुकुरमुत्ता) में व्यक्त किया है उसी प्रकार इन्होंने भाषा तथा छन्दोंके रूपके सम्बन्धमें विद्रोह किया है। पन्तकी 'ग्राम्या' तथा 'युगवाणी' में प्रगतिशील जीवन-दर्शनके प्रति सैद्धान्तिक सहानुभूति ही अधिक है और उसमें भी वह अपने छायावादी समन्वयको नहीं छोड़ सके हैं।

दूसरे महायुद्धके प्रारम्भ होनेसे पूर्व ही जब अनेक प्रान्तोंका शासन कुछ समयके लिए कांग्रेस मन्त्रिमण्डलके हाथ आ गया था उससे सामने स्वाधीनता-संग्रामके अन्तर्गत स्वीकृत विरोधी तत्त्वोंका रूप उभरने लगा था। परन्तु उसी बीच सारा संसार महायुद्धकी भयानक छायामें आ गया और देशमें इसी स्वाधीनताका जो इतना सपना सम्मुख रहा था वह भी

आरम्भ हो गया साथ ही उसे अपनी असमर्थता तथा दयनीयताका बोध हुआ। देशने देखा संसारके सन्दर्भमें असहयोग अहिंसा सत्याग्रह-जैसे उज्ज्वल सिद्धान्त थोथे हैं देशोंकी महान् शक्तियोंके सामने हम कितने अकिंचन हैं। यहीं पता लगता है कि जनताके जीवनकी मर्यादा और भक्तिके गुह्यतम जो सत्य और अहिंसाका सम्बल दिया गया था वह उनके लिए गुह्यतमके मिटते ही ओझल हो सकता है। ऐसी स्थितिमें एक ओर प्रगतिशील विदेशी नीतिमें परिचालित होकर संसार-व्यापी युद्धके प्रति अपना दृष्टिकोण निर्धारित करनेमें ही लगे हुए थे तो दूसरी ओर उत्तर छाया-वादी कालके अनेक कवि तथा गीतकार घोर निराशावाद निरुपाया" अहंकार अराजकतावाद तथा असामाजिक प्रवृत्तियोंसे पीड़ित तथा शासित थे। उनके लिए देशके सारे उथल-पुथल आन्दोलन निरर्थक रहे। बंगालका अकाल तथा १९४२ की जनक्रान्ति-जैसी घटनाओंसे ये दोनों वर्ग विभिन्न कारणोंसे अछूते रहे।

जिस सामाजिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमिमें छायावादी काव्यकी प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई, उसकी कई परिणतियाँ सामने आयीं। प्रगतिशील आन्दोलनके सामाजिक यथार्थके आग्रह और उसकी जनपक्षधरताकी ओर संकेत किया गया है यद्यपि भाषा तथा अभिव्यक्तिके क्षेत्रमें इसकी अपनी उपलब्धियाँ भी हैं। दूसरी प्रतिक्रियाके विषयमें भी कहा गया है, ये कवि व्यक्तिवादमें अपने निजी सुख-दुःख प्रेम-विरह निराशा-अवसाद ऐन्द्रियता तथा मधुचर्यामें व्यस्त हो गये। परन्तु एक तीसरी प्रकारकी प्रतिक्रिया भी हुई जिसको प्रयोगवादके नामसे बादमें पुकारा गया है। यद्यपि इन तीनों प्रतिक्रियाओंका रूप कहीं-कहीं उलझा हुआ है और कई कवियोंमें दो प्रकारकी प्रतिक्रिया एक साथ देखी जा सकती है पर इनकी दिशाएँ स्पष्ट अलग हैं। आगे आनेवाले युग और उसकी संवेदनाओंकी दृष्टिसे प्रयोगवादी प्रतिक्रिया सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह मात्र प्रतिक्रिया न रहकर काव्यको एक नवीन धाराके रूपमें (नयी कविता) प्रस्तुत करता

प्रवाहित हुई है। प्रयोगशील कवियोंको परम्परावादी तथा प्रगतिशील दोनों वर्गके आलोचकोंकी कटु आलोचना सहनी पड़ी है। इन कवियोंको दुरूह, संस्कृति-च्युत चौंकानेवाले नवकाम परम्परा-विरोधी असामाजिक व्यक्तिनिष्ठ शिल्पवादी बुद्धिवादी तथा केवल तृष्णाकी उपलब्धि माननेवाला कहा गया है। परन्तु काव्यजगतके इन प्रयोगशील अन्वेषियोंने व्यक्तिगत निष्ठा तथा ईमानदारीके साथ अपने युग-जीवनके यथार्थको देखनेका प्रयत्न किया है और उस नये परिप्रेक्ष्य सौन्दर्यबोधके नये धरातल तथा संवेदनाओंके बाह्य और आन्तरिक तादात्म्यके रूपमें अभिव्यक्त किया है। वस्तुतः स्वतन्त्रता प्राप्तिके समयसे काव्यके क्षेत्रमें आधुनिकताका जो दृष्टिकोण अधिकाधिक स्पष्ट होकर विकसित हो रहा है और नये मूल्योंकी उपलब्धि कर रहा है उसकी भूमिका प्रयोगकालीन कवियोंकी बौद्धिक जागरूकता आत्मान्वेषणकी प्रवृत्ति वैज्ञानिक दृष्टि तथा युगके विघटित मूल्योंके प्रति अनास्थामें देखी जा सकती है। वास्तवमें प्रयोगशील कहलानेवाले कई प्रमुख कवि आज नयी कविताके साथ हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्तिके समय देशकी मनःस्थिति अस्थिर रही। यही नहीं कि विभाजनके परिणाम बहुत कुत्सित तथा बीभत्स रूपमें हमारे सम्मुख थे वरन् ऐसी महान् घटनाको आत्मसात् करने-जैसे चरित्रबलका हममें नितान्त अभाव था। युद्धकी विभीषिकाने सारे संसारके साथ हमारे इस चरित्रको और भी विघटित किया था। पहले देशकी स्वाधीनताके संग्राममें जिस चरित्रबलका हमने संग्रह किया था जैसा कहा जा चुका है वह आन्तरिक विवेकसे शासित या नियन्त्रित न होकर, केवल भावावेगमें संचालित तथा वीर-पूजाकी भावनासे नियन्त्रित था। ऐसी स्थितिमें हमारी स्वाधीनता देशके जीवनमें बहुत बड़ी संक्रान्तिके रूपमें उपस्थित हुई वास्तवमें जिससे होकर हम आज भी गुजर रहे हैं। हमारे देशकी राजनीति और शासन-व्यवस्था जिन हाथोंमें उसके बाद गयी है वे जिस भावावेगमें सदा संघरत रहे न उनमें उनको जन जीवनके वास्तविक यथार्थको

जानने-समझनेका यथेष्ट अवसर नहीं मिला था। जो दृष्टि संघर्ष-युगीन वास्तविक आदर्शवाद तथा स्वाधीनोत्तर यथार्थका सन्तुलन कर सकती थी वह बापूकी हत्याके साथ जैसे हमारे सामनेसे ओझल हो गयी। देशके पुराने नेताओंको आज इस बातकी खीझ होती है कि जनतामें योजनाओंके नामपर उत्साह नहीं आता है, देशमें जातिवाद है, सम्प्रदायवाद है, अवसरवादिता है, आदि-आदि। पर उनके सामने आज भी यह यथार्थ स्पष्ट नहीं हो सका है कि किसी नये निर्माणकी उन्होंने भूमिका ही कब तैयार की है। उनकी परम्परा अबतक समन्वय, समझौते और सबको साथ लेकर चलनेकी रही है। उन्होंने उस आत्म-विश्लेषण और आत्म-विवेचनकी पीड़ाको ही कहाँ सहा है जिसमें न जाने कितना पुराना और परम्पराका अपनी चारोंओरसे तोड़ना-फोड़ना और छोड़ना पड़ता है।

देशकी राजनीतिक तथा सामाजिक स्थितिके समान ही हमारे साहित्य में आज बहुत अस्थिरता और विभ्रमके चिह्न हैं। देशकी स्वाधीनताके साथ सहज ही हमारे पुराने तथा प्रतिष्ठित नेताओंकी शक्ति और प्रभाव बढ़ा है और देशके भावी निर्माणमें उनका ही हाथ है। दूसरी राजनीतिक शक्तियोंके सामने भी देशके यथापेक्षित अधिक शक्ति और शासनका आकर्षण है। यही कारण है कि सम्प्रति यह कह सकना कठिन जान पड़ता है कि किस राजनीतिक दलके हाथमें देशकी भावी व्यवस्था अधिक प्रगतिशील तथा जनहितकी होगी। अवसरवादिता, व्यक्तिनिष्ठता, विघटन, विवेकहीनता, स्वार्थपरता, रूढ़िवादिता आदि अनेक भाव आजकी राजनीति तथा समाजमें समान रूपसे देखे जा सकते हैं। आजके हिन्दी काव्यमें वे सभी परम्पराएँ क्रियाशील हैं जो द्विवेदी-युगसे चली आ रही हैं और उनके अध्ययनके माध्यमसे हम युगके इस जीवनकी प्रतिच्छाया देख सकते हैं। पर ठीक है कि काव्यकी चालू धारामें ये सभी परम्पराओंके कवि कम हुए जा रहे हैं क्योंकि हिन्दी-साहित्य और काव्य आज इस संक्रान्तियुगीन दायित्वको न केवल समझ रहा है वरन् उसका वहन भी

कर रहा है। परन्तु प्रत्यक्षमें स्थिति यह है कि काव्यधाराके महत्त्वपूर्ण कवि आज भी सम्प्रतिष्ठ द्विवेदीयुगीन तथा छायावादी कवि माने जाते हैं। परन्तु यह उनकी स्थिति उनकी ऐतिहासिक प्रतिष्ठाके रूपमें ही स्वीकृत है। आज भी ये कवि प्रायः अपनी पिछली उपलब्धियोंमें जी रहे हैं यही इनकी थाती है। साहित्यकी वास्तविक काव्यधारा नये हाथोंमें आ चुकी है ये हाथ कितने ही कच्चे और शौकिया क्यों न हों पर आधुनिक युगकी सारी सम्भावनाएँ इन्हींपर केन्द्रित हैं अब आनेवाले युवक मुक्तकोंकी उपलब्धिका सारा दायित्व इन्हींके कन्धोंपर है। यह संक्रान्तिका समय भटकावका समय है, और इस भटकावमें न जाने कितना बिखराव है उलझाव है कितनी-कितनी धाराएँ-उपधाराएँ मिलकर दिशाओं और सीमाओं-को प्लावित कर रही हैं। फलतः इस प्रवाहमें कूड़ा-करकट, मैल-कुचैल सब एकसाथ उमड़ता आ रहा है। इस भटकावमें यह कहना कि मुख्य धारा कहाँ है और किधर है, कठिन है। परन्तु सारे भटकावका वास्तवमें आन्तरालमें कहीं धारा मुख्य होती है जो भविष्यकी नदीकी धारको निश्चित करनेवाली है। और आजकी नयी कविता हिन्दी काव्यकी वही धारा है।

पिछले दस वर्षोंमें लिखे गये महाकाव्योंकी संख्या शायद इतनी अधिक रही जितनी पिछले किसी दशकमें नहीं है। ऐसा नहीं कि इनमें-से किसी-के द्वारा स्वाधीनताके उपरान्त देशकी युगीन समस्याओंको स्पर्श किया गया हो। वे सरकारके द्वारा पुरस्कृत होनेका सम्मान अवश्य पा सके हैं पर कदाचित् इनका इससे अधिक कुछ महत्त्व है भी नहीं। इनमें-से अधिकांशमें द्विवेदी-युगके 'प्रियप्रवास'-जैसी वर्तमान युगके अनुरूप चरित्रोंकी उद्भावना भी नहीं की गयी है। 'अंगराज' तथा 'पार्वती'-जैसे महाकाव्य स्वयं बड़े आनुष्ठानिक हैं या प्रस्तुत युगके सन्दर्भमें प्रकाशित इनमेंसे किसी ही शायद लिखी गयी है। परन्तु गुप्तजीके 'जयभारत' तथा दिनकरकी 'उर्वशी' न तो इस अर्थमें महाकाव्यकी कोटिमें आते हैं और न ये युग सन्दर्भसे एक च्युत ही हैं। दोनोंमें अलग-अलग ढंगसे महाभारतके कथानक-

को लेकर युद्ध और शान्तिकी समस्याको उठाया गया है। गुप्तजीने महाभारतके पात्रोंकी स्थितिको उसी रूपमें स्वीकार किया है, वे मर्यादावादी हैं। परन्तु महापुरुषोंकी विभीषिकाओंसे उनके मनमें युद्ध और शान्तिकी समस्याको किसी-न-किसी रूपमें उपस्थित किया है

> कब तक इस कुरु-वंश का ही नाश करना मुझे है,
> केवल हुआ इस युद्ध में यह देश नाश समूल है।

गान्धारीके मनमें यह सहज प्रश्न भी आता है

> तुम रोकते तो रोक सकते सहज दुष्कर काण्ड का
> पर फूटना ही था हमारे भाग्य के इस भाण्ड का।
>
> [जयभारत कुरुक्षेत्र]

परन्तु गुप्तजीके लिए इस भाग्यवादी समाधान और प्रभुके प्रति समर्पणकी भावनाके अतिरिक्त गति नहीं है। वे अन्त तक इस काव्यमें धर्मराजके चरित्रके उन्नयनमें संलग्न रहे हैं वे उनको आदर्श सम्राटके समान धर्मराज्य अथवा स्वराज्यकी स्थापनाका प्रतीक मानते हैं और इसके लिए उन्होंने धर्मराजकी सभी कायरताओं और अन्यायोंसे रक्षा करनेका प्रयत्न किया है। गुप्तजीके लिए अपने युगकी सम्पूर्ण विषमताओं तथा विकृतियोंके बावजूद स्वराज (जो उनकी भावनामें दैवी राज्यसे भिन्न नहीं है) धर्मराज्य है और उनकी भक्ति-भावनाके सामने नारायणके प्रति समर्पित हो जाना ही जीवनका परम लक्ष्य है

> सस्मित नारायण प्रकट हुए
> आओ हे मेरे भर आओ!
> जो कुछ है यहाँ, तुम्हारा है
> तुमको पाकर सब कुछ पाया।”
>
> [स्वर्गारोहण]

गुप्तजीकी भाषा और शैली परिचित है, केवल कथोपकथनकी भाट कीमताम किंचित् प्रौढ़ता परिलक्षित होती है।

दिनकरके पिछले काव्य 'कुरुक्षेत्र' का स्वर था न्यायके लिए युद्ध करना अमोघ है और कायरतापूर्ण शान्ति माँगनेका विषसे भरा दंश है। उनका ओजस्वी प्रश्न था

पापी कौन ? मनुज से उसका न्याय चुरानेवाला ?

या कि न्याय खोजते विघ्न का शीश उड़ानेवाला ?

'कुरुक्षेत्र' में अन्त तक कवि न्यायके पक्षसे किये गये युद्धका समर्थन करता है। पर युद्धोपरान्त कविने अनुभव किया है कि युद्धकी कल्पनाके साथ न्याय-अन्यायकी पक्षधरताको निभा पाना सम्भव नहीं रह गया है—'संग्राम धर्मयुद्धका विशेष्य किस तरह भला हो सकता है!' साधन और साध्यका विवेक युद्धकी विभीषिकामें कुण्ठित हो जाता है। कौरव-पाण्डवोंके इस युद्ध धर्मयुद्ध न्यायपर प्रश्न करना आधुनिक युगका सन्दर्भ है—'सत्यपथ दोनों न्यो दौड़कर विजयबिन्दु तक आनेमें।' छायावादी कवियोंमें प्रमुखतः पन्त तथा उनके उत्तरकालके मानवतावादी कवि दिनकर-ने युगके परिवर्तनको पहचाना है और स्वीकार किया है और यह उनकी दूर दृष्टि तथा संवेदनशीलताका परिचायक है। वरन् अपनी सहज ओजस्विताके कारण युगकी पीड़ा तथा व्यथाको दिनकरने अनेक बार मनस्वि अभिव्यक्त किया है। आधुनिक मनोभावको न पहचान सब है यह उनके बातचीत की भूमिकासे स्पष्ट है 'कविता पुनर्जन्म लेनेकी तैयारीमें है और यह तैयारी नयी कविताके जन्मके पूर्व बहुत काल तक चलनेवाली है। और यह बात मैं इसलिए नहीं कहता कि अपने चारों ओर युवकोंका कोलाहल सुनाई देता है मैं उनसे प्रभावमें हूँ। सच तो यह है कि आगामी कविताकी पगध्वनि मुझ अपनी रचनाओंके भीतर सुनाई पड़ी है।'—इस संदर्भ (नील कुसुम) की विशिष्टता इन कविताओंमें

देखी जा सकती हैं जिनका छन्द गद्यकी सीमाको छुए हुए है तथा जिनकी भाषा बिलकुल साधारण बोल-चालकी है। और इन्हीं कविताओंमें भावुकता भी बौद्धिकताके अनुशासनमें चलती है। पन्तने भी मुक्त भावसे नयी कविताका स्वागत किया है। नयी कविता विश्व-काव्यसे प्रेरणा ग्रहण करके तथा आजके प्रत्यक्ष पथ बदलते हुए युग-पटको अपने मुक्त छन्दोंके इंगितोंकी तीव्र-मन्द गति-लयमें अभिव्यक्ति कर युग-मानवके लिए भाव भूमि प्रस्तुत कर रही है। यहाँ नहीं 'अतिमा' में ऐसी रचनाएँ भी संकलित हैं जिनकी प्रेरणा युग-जीवनके अनेक स्तरोंको स्पर्श करती हुई नूतन चेतनाके नवीन रूपों तथा प्रतीकोंमें मूर्त हुई है। हिन्दी काव्यकी इस नयी धाराको पिछले एक महत्त्वपूर्ण कविका समर्थन प्राप्त हो गया है, यह उसकी बढ़ती धाराकी शक्तिको प्रकट करता है।

पन्त छायावादी काव्यके प्रमुख उन्नायकोंमें होकर भी तीव्रगतिसे बदलती हुई विभिन्न काव्य-भूमियोंपर संचरण कर सके हैं और यह कविकी सर्जनात्मक शक्तिका परिचायक है। पिछले दस वर्षोंमें उनकी प्रमुख भूमिका अरविन्द अध्यात्मकी रही है। उन्होंने 'स्वर्णकिरण' तथा 'स्वर्णधूलि' की परम्पराका अधिक प्रौढ़ स्वर्ण 'उत्तरा' से लेकर 'अतिमा' तक अग्रसर किया है। मानव-चेतनाके ऊर्ध्व संचरण और जन-जीवनमें उसका सामंजस्य यही उनका प्रमुख सन्देश रहा है जिसे उन्होंने छायावादी शैलीके अलौकिक रूपमें अभिव्यक्त किया है। यही सन्देश उनके गीतिनाट्योंमें भी सृष्टिकी विराट् कल्पनाके साथ व्यक्त हुआ है। परन्तु उनके इस अध्यात्म-दर्शनने उनकी दृष्टिको युगके कठोर यथार्थको पहचाननेमें बाधा पहुँचायी है। यह ऊर्ध्व संचरण बाधक भले न हो पर इतना ऊँचा है कि युगकी भूमिका उससे प्रायः इतनी दूर नीचे खिसक जाता है। आगत युगके प्रति आस्तिकता कितनी ही दृढ़ विश्वास इनके काव्यसे व्यक्त हुआ हो पर इस संक्रान्तिके युगकी व्यथा और पीड़ासे यह काव्यभूमि सम्पर्कहीन है। इसमें अस्पष्टता दूर तो है ही नहीं वह शक्ति भी नहीं जिसके बलसे काव्यको

सम जाता है। इसी ऊर्ध्वाकि स्तरसे पन्तका देशका सारा जीवन भी प्रगतिकी दिशाओंमें बढ़ता दिखाई देता है और वे देशकी वस्तु-स्थितिमें पूर्ण परितोष प्राप्त करते हैं। ऐसा नहीं कि वे युगके सारे विघटनसे परिचित नहीं हैं पर वे मनुज-चेतनाके आरोहणके निर्भ्रान्त मार्गकी निष्ठाके साथ सब कुछ अपनी बाँहोंमें समेटे हुए हैं

इसीलिए मैं शान्ति क्रान्ति संहार सृजन का,
विजय पराजय प्रेम घृणा उत्थान पतन का।
भाता कुरूप को युग के सुन्दर कुत्सित को···
[अतिमा शान्ति और क्रान्ति]

'अतिमा के अन्तर्गत पन्तकी वे कविताएँ जिनके विषयमें ऊपर निर्देश किया गया है काव्यकी नयी भावभूमिसे निकट हैं। इनमें – घुमघुमी या कौए, बतखें और मदक प्रकाश पत्तियें और छिपकलियाँ कानून पगली तितली देती है स्वप्नमय आदि हैं। यद्यपि कवि इन कविताओंमें साधारण भाषा तथा नव प्रतीकों प्रयोगोंकी ओर आकर्षित हुआ है पर उनके माध्यमसे सन्देश तथा उपदेश देनेकी प्रवृत्ति ही परिलक्षित होती है।

उत्तर छायावादके कवियोंमें दिनकरने स्वातन्त्र्योत्तर युगमें सबसे अधिक स्पष्ट दक्षिण परिचय दिया है। उन्होंने भारतीयोंके आदर्शकी दयनीय स्थिति पर दृष्टि डाली है और अन्धेपनकी विकृतियोंको समझा है। उनकी नया, 'भारतका यह रेशमी नगर', 'जीवनका हाहाकार' आदि कविताएँ इस युग सन्दर्भकी इनकी सोचके अनुरूप हैं

लाद दो इसको, सड़क की पसल भी मवाद कर दो।
भीख की ईंटें डराता।
दब गये हैं आ, अभी तक आ रहे हैं।
आदमियों को इन सड़क के नाम से बाहर कर दो।
[नील कुसुम जीवनका हाहाकार]

छायावादी मानवतावादकी जिस भावभूमिपर दिनकरके व्यक्तित्वका विकास हुआ है उसकी आदर्श भावनाके कारण इस ओर दृष्टि डालकर भी वे न तो देश तथा समाजके जीवनके यथार्थमें अधिक गहरे उतर सके हैं और न उनके मनमें आत्म-मन्थनकी वह स्थिति ही परिलक्षित होती है जो युग-सत्यको धारण करनेके लिए अपेक्षित है। यही कारण है कि व्याज-विजय 'भूदान' किसको नमन करूँ मैं? 'कोहेके पेड़ हरे होंगे' 'भग्न मन्दिर बन रहा है'-जैसी कविताओंके आधारपर और उत्साहसे कविने अपने मनका समाधान ढूँढ लिया है। वास्तवमें संक्रान्तिकालमें अतिरंजित आशावाद यथार्थ-दृष्टिका आविष्ट ही करता है। छायावादके उत्तरकालमें बालकृष्ण राव एक सौन्दर्यग्राहक रूपमें स्वीकृत रहे हैं पर पिछले वर्षों में युगसे सम्पृक्त नयी अनुभूतियोंके साथ काव्यके क्षेत्रमें आये हैं। इनमें भी नयी कविताके प्रति सहानुभूति है और एक प्रकारसे अपने छायावादी संस्कारोंके साथ ये नयी कविताकी भावभूमिपर प्रयास कर रहे हैं। परन्तु रचना प्रक्रियाकी आन्तरिक संवेदनशीलताके अभावमें इनकी कविताओंपर अब भी छायावादी प्रभाव देखा जा सकता है। अनेक कविताओंमें युग-मानसके मन्थन और आत्मविश्लेषणकी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है पर इनमें अनेक बार कवि इस सीमा तक उलझ जाता है कि आन्तरिक संवेदनकी उपलब्धिके रूपमें व्यक्त न होकर 'आत्माका निग्रह' लगता है।

स्वातन्त्र्योत्तर युगमें प्रमुख छायावादी धारासे भिन्न उस युगके कवियों-का योग भी महत्त्वहीन है। उनका अन्य कारण उनका युगके सन्दर्भसे अलग पड़ जाना ही है। बच्चनकी शैली और दृष्टिकी सीमा 'सतरंगिनी' पूर्व और 'सूतकी माला' तक परिलक्षित हो चुकी है। आजके युगमें वे एक पड़ गये हैं कि उनका बारेमें अन्य मानना चाहिए। सम्यक् कथ्य ता उनके पास कदाचित् कभी नहीं था पर अनुभूतिकी ईमानदारी अवश्य उनकी बड़ी विशेषता थी जिसे उन्होंने खो दिया है। बालकृष्ण शिवनी

ईमानदारी जिस अनुभूतिके स्तरकी थी उसको आज बनाये रखना सहज नहीं है और उन्होंने अपने लिए नयी भावभूमि कभी तैयार नहीं की। बच्चनके साथ प्रेम तथा सौन्दर्यके रोमैण्टिक कवियोंमें नरेन्द्र शर्मा तथा अंचलका नाम लिया जाता रहा है। युगके साथ ये भी आगे बढ़नेमें असमर्थ रहे हैं। नरेन्द्र शर्माने आध्यात्मिक रहस्य-भक्तिलोक अपनेको विस्मृत कर दिया है और उनके संकलन 'अग्नि शस्य'में यही प्रवृत्ति प्रधान है। अंचलके 'वर्षान्तके बादल'में उनकी यौवन और सौन्दर्यसम्बन्धी भावना का ही अभिव्यक्तीकरण है यह अवश्य है कि कवि अपने मनोभावोंकी ताजगीकी रक्षा कर सका है। विशेषकर प्रकृतिके साथ प्रेमकी मनःस्थितियों का सामंजस्य अच्छा बन पड़ा है पर यह सब भावक युग जीवनमें काफी विचित्र लगता है। सुमित्राकुमारीके प्रणय-गीतोंकी स्थिति भी वैसी ही है एक प्रकारसे अपनेको दोहराते जैसे स्वादहीन। राष्ट्रवादी कवियोंमें माखन लाल चतुर्वेदी तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' में स्वाधीनताके बाद अध्यात्म तथा रहस्यका विशेष आग्रह बढ़ा है। लगता है आदर्शवादी राष्ट्र-प्रेमका यही पलायन है देशकी स्वाधीनताके बाद देशके सम्बन्धमें जैसे उनके पास कहनेके लिए विशेष कुछ रहा नहीं है।

छायावादके बाद एक ओर प्रगति-प्रयोगकी काव्य-परम्पराका विकास हुआ और दूसरी ओर अन्य स्वच्छन्दतावादी गीत-परम्पराका उत्थान हुआ। प्रगति-प्रयोगकी परम्परा यदि विद्रोहकी प्रेरणा लेकर चली है तो इस गीत-परम्पराका उत्थान छायावादी कविताके उत्तराधिकारके रूपमें हुआ है। इन कवियोंने छायावादी भाषा और शैलीको एक प्रकारसे स्वीकार किया है यद्यपि ये अपनी अभिव्यक्तिमें छायावादी कवियोंसे अधिक सीधे और सरल हैं। वास्तवमें इन्होंने छायावादके आध्यात्मिकता दर्शन तथा रहस्यके स्वप्नलोकसे उतरकर सहज जीवनकी भूमिको अपनाया है। इन्होंमें व्यक्तिगत दुःख-सुख पीड़ा-व्यथा प्रेम-वियोगकी संवेदनाओंको लौकिक भावावेगके स्तरपर अभिव्यक्ति दी है। प्रकृतिका सौन्दर्य अनेक स्थितियों-

कविताएँ भाषा और छन्दकी दृष्टिसे तथा विषय-वस्तुकी दृष्टिसे भी आधुनिक मनोवृत्तिके अधिक निकट हैं। इनमें एक ओर आत्मानुभूति तथा आत्मचिन्तनके तत्त्व उभर रहे हैं तो दूसरी ओर लोकतत्त्वके प्रयोगसे भावात्मक मुक्तिका स्वरूप मिलता है। कुछ अन्य कविताओंमें लोक-गीतोंकी सहज व्यञ्जना शैलीका प्रभाव ग्रहण कर अपने गीतोंको जन-जीवनके अधिक निकट लानेका प्रयास कर रहे हैं।

छायावादके विकासमें जो प्रगति तथा प्रयोगकी भाव-धाराएँ काव्यमें आयी हैं उनके कवियोंमें स्पष्ट विभाजक रेखा पहले भी नहीं थी। प्रथम तार-सप्तकके अधिकांश कवि प्रगतिशील विचारोंके थे यद्यपि उनमें-से एकको छोड़कर अन्य सभी काव्यके क्षेत्रमें प्रयोग तथा आत्मान्वेषणके सत्य को स्वीकार करते हैं और काव्यको कोरे नारेबाजीसे अलग माननेवाले हैं अर्थात् वे काव्यको किसी वादके अन्तर्गत सीमित नहीं मानते। नयी कविताके आन्दोलनके साथ इनमें-से अनेक प्रतिभाशाली कवि आ गये हैं क्योंकि आधुनिक युग-जीवनके साक्षात्कार और आत्मानुभवकी दृष्टि यही है। इस युगके कम ही कवि हैं जो प्रयोगकी सीमासे अछूते बच न सके हों और प्रगतिशील आन्दोलनके सम्पर्कसे परिचित होकर किसी-न किसी अर्थमें उससे प्रभावित न हो गये हों। कुछ कवि ऐसे अवश्य हैं जो उन्हीं गलियोंमें आज भी भटक रहे हैं और अपना मार्ग नहीं निकाल सके हैं। शिवमंगल सिंह 'सुमन' प्रारम्भमें रोमैण्टिक प्रेम-भावनाके कवि रहे हैं, उन्होंने राष्ट्र भावनाकी कविताएँ भी लिखी हैं पर बादमें वे समाजवादी विचारधारासे प्रभावित हुए हैं। लेकिन उनके काव्य-संकलन 'पर आँखें नहीं भरीं' में प्रगतिशीलता तथा रोमानियतका विचित्र मेल है। साथ ही इससे उनकी कविताओंमें मादक गीति-तत्त्वका भी ह्रास हुआ है। नागार्जुनके पास विस्तृत कर्मक्षेत्र है और उनमें अनुभूति तथा चिन्तनकी सम्मिलित भावधारा भी है पर जनवादिताके आग्रहसे उनमें जो नारेवादिता है उससे वे उबर नहीं पाते हैं (युगधारा)। केदारनाथ अग्रवाल उन

प्रगतिवादी कवियोंमें हैं जिनमें इस धाराकी उपलब्धि देखी जा सकती है। उन्होंने ग्राम जन-जीवनकी मार्मिक अभिव्यक्ति की है। इस बीच उनकी कविता (नींदके बादल युगकी गंगा) में छायावादी प्रभाव परिलक्षित होता है पर गाँवके जीवनके चित्र कहीं-कहीं सुन्दर बन पड़े हैं। रामविलास शर्मामें बौद्धिकता अधिक परिलक्षित होती है, जैसे काव्यके प्रति उनकी विशेष रुचि नहीं है। प्रभाकर माचवे प्रयोगसे आगे नहीं बढ़ सके हैं, उनमें या तो सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियोंके प्रति सीधा व्यंग्य है अथवा स्थान तथा स्थितियोंका असम्पृक्त चित्रण। कुछ स्थितियों के अंकनमें भी व्यंग्यका पुट है। इनके 'स्वप्न भंग' नामक संग्रहमें उनकी स्वाधीनताके पहले और बादकी — दोनों युगोंकी कविताएँ हैं पर उनमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है। जैसा पहले कहा गया है प्रगति तथा प्रयोग परम्पराके प्रायः सभी गतिशील कवि आज नयी कविताकी आन्तरिक प्रवृत्तिके साथ हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर युगकी प्रमुख काव्य-प्रवृत्तिपर विचार करते समय हमको कुछ तथ्य ध्यानमें रखना चाहिए। समकालीन साहित्यपर विचार करनेमें सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि साहित्यके नामपर अच्छा अधकचरा सबका कूड़ा-करकट जो भी लिखा जाता है वह सारा-का-सारा सामने मौजूद रहता है। अन्य युगोंके साहित्यका अधिकांश समयके प्रवाहमें बह जाता है और केवल वही अंश रह जाता है जो समयकी कसौटीपर खरा उतर चुका होता है। समसामयिक आलोचकका दायित्व है कि वह युगकी आन्तरिक धाराको पहचान सके और अपने चतुर्दिक फैले हुए साहित्य-सागरसे गम्भीरतासे उचित और मूल्यवान् तथ्योंको ग्रहण कर सके। वर्तमान नयी कविताके सम्बन्धमें यही बात सत्य है। परम्परावादी आलोचक सारे विस्तारमें से थोड़ी रचनाओं अनुकरणात्मक असंयत तथा अपरिपक्व रचनाओंके आधारपर मूल्यांकन करना चाहते हैं। परन्तु जैसा कि किसी भी युग के सम्बन्धमें ठीक है वर्तमान युगकी कविताकी शक्तिका अनुमान उसकी

नयी कविताकी समसामयिक भावभूमि

समस्त काव्य-विचारके बीच यह सत्य प्रत्यक्ष होता जा रहा है कि आजके युगकी कविता नयी कविता ही है अर्थात् वर्तमान युगके संक्रान्ति कालीन जीवनकी उसकी सम्पूर्ण विषमताओं और विविधताओंके साथ इसी काव्यमें अभिव्यक्ति हो रही है। इसके समानान्तर अन्य जो भी काव्यधाराएँ हैं उनका आधार आजके युगका यथार्थ नहीं है। ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि ये समस्त अन्य धाराएँ युग-जीवनके किसी स्तर को छूती नहीं पर इन सबका सम्बन्ध जीवनके ऐसे कृत्रिम स्तरोंसे है जिनका निर्माण आजकी अवसरवादी राजनीतिक अथवा पतनोन्मुखी सामाजिक आचरणने किया है। अतएव इन काव्यधाराओंमें युग-जीवनके यथार्थ की वह अभिव्यक्ति नहीं मिल सकती जिसके आधारपर ही भविष्यके नये मूल्योंका तथा आचरणकी नयी मर्यादाका विकास सम्भव है। प्रस्तुत निबन्ध युग-सन्दर्भकी इसी दृष्टिसे नयी कविताकी व्याख्या करनेका प्रयत्न किया गया है। आज नयी कवितामें केवल युग-यथार्थका साक्षात्कार मात्र नहीं है वरन् उसमें उपलब्धिकी दिशाएँ भी स्पष्ट होने लगी हैं। प्रस्तुत अध्ययनमें इस सम्पूर्ण परिवर्तनको ध्यानमें रखा गया है।

कुछ विचारक नयी कविता और प्रयोगशील कवितामें तात्त्विक अन्तर नहीं करते। वे इन्हें प्रायः समानार्थक शब्द मान लेते हैं। पर नयी कविता अपनी अभिव्यक्ति, भावबोध तथा उपलब्धिकी दृष्टिसे प्रयोगशील कविता से आगेकी स्थिति है। दोनोंमें घनिष्ठ सम्बन्ध है पर ऐतिहासिक दृष्टिसे एक दूसरेका विकास है। दोनोंमें अनेक समान तत्त्व भी मिल जायेंगे पर दोनोंकी भाव-भूमिमें पर्याप्त अन्तर है। प्रयोगशील कविताने परम्परासे विद्रोहके रूपमें प्रयोग तथा अन्वेषणका मार्ग स्वीकार किया था पर नया

कविताके सन्दर्भमें वे उसकी प्रकृतिके सूचक हैं। प्रयोग-युगके कविके मनमें अपने समयके विषयमें अनेक संशय और दुविधाएँ थीं। मर्यादा और मूल्यों के संघर्षके बीच आजके कविमें संक्रान्तिकालीन संशय और दुविधा और भी देखी जा सकती है। परन्तु जब प्रयोग-युगका कवि अपने युगके प्रति निश्चित नहीं था आजका कवि अपनी सारी शंकाओंके बीच अपने व्यक्तित्वके प्रति आस्थावान् है और उसमें संघर्षका विश्वास उभर रहा है

लेकिन इन रातों के बीच
मेरे तीखे पर उभरते स्वर
कभी सच्चाई का आलम बनकर
गूँजेंगे या रव में खो जायेंगे
या ये स्वर पहुँचेंगे जन-जन के द्वार
शोभित माथे पर काँटोंका सिंगार
या मगर बाद्य, बस ध्वनि अन्धकार
क्या पायेंगे
प्रभु,
हम क्या पायेंगे!

[धर्मवीर भारती]

और यह उस कविकी आन्तरिक अन्यतमका प्राप्त आस्था है जो युग जीवनमें बिखरे युगकी कोमल कल्पनाओं स्वप्नों और महत्वाकांक्षाओंको छिन्न-भिन्न होते देखकर सूनापन और अकेलापनका अनुभव करता है। प्यार और स्वप्नके सीमाके टूट जाने और ममतामय विश्वासपर जमती हुई उदास एकाकी भाग्य निराशाका स्वर परिव्याप्त है। परन्तु यथार्थके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यके साथ जब कवि अपने युगकी सारी विषमता बर्बर तथा अवसादका सम्प्रेषण सम्पन्न करता है उस समय वह मानो 'छाया' का मानस उभी

स्वत्वको भजना चाहता है जिसका मोह उसकी बहुत बड़ी कमजोरी है ('मेरी परछाँही') परन्तु अन्ततः समस्त भ्रम संशय असमय दिग्भ्रान्ति में कविता यह विश्वासका एक आधार ढूँढ लेता है

चलना तो हमको ही होगा
चलने में हर हम दूरी और पथ तों का
शायद होगा कुछ नया गठन
शायद देंगे हमको अपन
अमर पर अपराजय चरण!

[कौन चरण]

अपने युग-बोध अन्धा युग में भी भारतीय युगके समस्त अन्धकारके बीच आन्तरिक प्रकाशमय मानवकी आस्थाको व्यंजित किया है।

पर एक दूसरे स्तरपर आकर कवि संशयकी स्थिति मिलती है जो भावात्मक रोमांस असम्बद्ध केवल मन जीवनके यथार्थ धरातल उत्पन्न कहा जा सकता है। इस संशयमें जीवन अननुभूत रह गया है इसने न गुणको ग्रहण किया न दुःखको सका और इस प्रकार

यों बीत गया सब। हम मरे नहीं पर हाय! कदाचित्
जीवित भी हम रह न सके।

[इन्द्रधनु रौंदे हुए ये : योगफल]

इसी प्रकार इतिहासके व्यापक प्रवाहमें अपने व्यक्तित्वकी अस्तित्वहीनताका आभास भी मिलता है और यह भी संशयकी ही मनःस्थिति है

हम तुम भार थे
समय सूराख में छिप जायेंगे
कहीं गति में एक
हम बस चिह्न ही रह जायेंगे।

[भारती 'ठंडा लोहा']

परन्तु जिस अहंकी उपलब्धिपर आजका कवि विश्वास करता है वह प्यार उतर आने तथा अभ्यास चले जानेके बाद भी आश्वस्त है

किन्तु इसी मन का
अहम् दुख और विद्रोह नहीं है
कैसे इस तन झुककर
जो मरी गति ?
कैसे अब झुक पायें ??

[नरेश मेहता 'वनपाखी सुनो']

आजके युग जीवनका यह सत्य है। आधुनिक प्रश्नोंमें विषम एकम-युक्ति मान्यताओं तथा आस्था और मर्यादाओंके विघटनमें व्यक्ति-मनकी यह सहज स्थिति हो जाती है

विस्मित मस्तक स्पन्दित हृदय में
गंध वात में बाधक मन में
पथ में श्रम में जीवन-क्रम में
कितनी शंका ?
कितनी दुविधा ?
कितनी बाधा ?

[लक्ष्मीकान्त वर्मा 'धोखा और दर्द']

पर यह वह संशय है जो किसी (मूल्य अथवा मर्यादा) मान ही न हो परन्तु जिसके आधार निरन्तर मुमुक्षा संघर्ष और रूपमें काँपता रहता है उसकी दीप्त स्वाति है। इस प्रकार यह अहंकी सत्यको समझनेकी दार्शनिक स्वप्न खोज है (पूर्वकी सफाई संशय)।

मध्ययुग समाप्त प्रगति प्रयोग-भूमिका विकास भी अनेक नव सन्दर्भोंमें नयी कवितामें उभरता है। उस युगमें कविने परम्परा तथा रूढ़ियोंसे विद्रोह किया था और रीतिगत व्यवस्थाके अन्तर्गत मौन हुए मानव-व्यक्तित्वको

प्रतिष्ठाका आग्रह प्रकट किया था। पर इस समयका विद्रोह नया रास्ता निकालनेकी छूटके लिए था और आजका विद्रोह कुण्ठित विघटित तथा सन्दर्भ-च्युत मर्यादाओंको तोड़कर नयी मर्यादाओंकी स्थापनाके लिए है। कविके स्वरमें इतिहासका मोहभंग, आकाशहीन विच्छिन्न संस्कारों और विश्रृंखलित मर्यादाओंको 'तोड़ दो' की पुकार है। यह न तो इतिहासकी गाड़िया के गुजरनेकी पटरियाँ बनना चाहता है और न केवल किसीकी डालपर या कृपाका जीवन जीने-मरनेका दर स्वीकारता है यह स्वयं निर्माणकी पीड़ाका आयोजन करता है:

यह है तो—
साल के आखिरी दिन की साँझ का
जो पार से उभरता नये का आयना है
हर नया शुभ हो!
हर क्षण नव माथ पर धरा मंगल-तिलक
थमा तो आइए हाँ, बस
बाद में हम चाँदनी की फसल काटेंगे!

[केदारनाथ सिंह : नयी कविता ३]

इसी प्रकार आजके कविके समक्ष प्रतिष्ठित प्रतिमाओंके प्रति गहरा विद्रोह है। वह ऐसे देवताके प्रति प्रश्नशील हो उठा है जिसकी बड़ी हस्ती कविके सामने आजका व्यक्ति छोटा और कुण्ठित होता जाता है और जिसमें जन-मानस भक्ति-भूत रचनाके द्वारा सारे पथ [illegible] को भी घेर लिया है। देवता जब कविमें प्रतिष्ठित होता है तो उसकी साधारण [illegible] उसका व्यक्तित्व छोटा मोटा और समस्त होकर समग्र [illegible] छटपटाया करता है। फिर इस व्यक्तित्वकी मुक्तिके लिए कवि देवता की मूर्ति [illegible] करता है पर उस आसमान (गगन) के प्रकाशसे [illegible] प्रार्थनापूर्ण [illegible] आप भी है

हर मन्थी श्रद्धा की परिणति है यह लाञ्छन !
हर खण्डित मूर्ति का प्रसाद है यह मस्तक-चिह्न !!

[भारतभूषण अग्रवाल नयी कविता ३]

आजका कवि परम्पराको मुट्ठी पड़ गयी मर्यादाओंमें सतर्क करते हुए 'महा प्रत्यक्ष भार नये उगे शिखरों' (सत्ताधारी व्यक्तियों) को चुनौती देकर मस्तिष्क ताड़ रहनको कहता है। ये कुण्ठित रूढ़ियाँ मानव-व्यक्तित्वको विघटित करना ही अपनी सार्थकता मानती हैं

किन्तु अगस्त्य आयेंगे गुरु का वेश धरे
आशीष वचन कहने वाले
फिर विनत तुम्हारा मस्तक भी हो झुका छोड़
य गुरु पर वापस नहीं मार कर पायेंगे।

[शाही अगपेखना]

नयी कवितामें इस विचारकी प्रधान माँग अहंकी स्वीकृति और व्यक्तित्वकी खोज और प्रतिष्ठासे रही है। पिछले युगोंमें सबसे अधिक विघटन मानव-व्यक्तित्वका हुआ है और व्यक्तिको वैज्ञानिक भौतिकवाद अथवा यान्त्रिक समूहवादने पग-पगपर कुण्ठित और अपमानित किया है। अतः आजके कविकी पहली माँग अपने अहंकी स्वीकृति है

चित्रकारा क
रंगों में बन
स्वयं
कैनवस में गया
हूँ कहाँ-कहाँ।

[शमशेर नयी कविता २]

कवि अपने आपको स्वीकृति आज पनापमें पाता है। पर अहं कविके मानस म और उससे इतिहास अधिक व्यापक है जिस व्यक्ति हुए

दर्द और संघर्षोंके माध्यमसे सत्यकी मंज़िल तक पहुँचकर विराट् सम्यक रूपमें ग्रहण करता है ('टगर सोहा निवेदन')। यही उसकी खोज है। इसके प्रति कवि मनमें पूरी सजगता और आस्था है यह व्यक्तिका वह आन्तरिक स्फुरण है जो किरणके रूपमें शिव बनकर मंगिमा और पूर्ण सभी शक्तियोंकी गति है। इस व्यक्तित्वको मठोंके मोल (स्थापित मूल्यों आसपास) निरन्तर कुण्ठित करनेका प्रयत्न करते वे हमारे व्यक्तित्वका शरीरमके लिए 'सजायेंगे बातें बनायेंगे ढंग-ढंगसे रिझायेंगे' लेकिन कवि सतर्क करता है 'न टाला टलना बेचना न बिकना' (गजेन्द्र किशोर 'मुक्त सीमायें')। कभी कवि ऐतिहासिक दायित्वका वहन करनेवाले कवि रूपमें अपने व्यक्तित्वके प्रति उन्मुख हुआ है और अपनी सारी अकिंचनतामें भी वह इसताम उसे स्थापित करता है

छिपी हुई धरती पर प्रलय चढ़ आती है
कुपित पत्तों में बादल बस जाता है।
जहाँ मा मुक्ती है भूतल का छूनी है
बरबादी का नंगा नाच हर सड़क आती है
मगर
एक मैं हूँ : फ़ौलाद का भाला लिये
आता हूँ—
मैं बाज़ सा ज़िन्दा हूँ।

[कन्हैयालाल वर्मा नयी कविता १]

यदि इस वैयक्तिक चेतनाका आत्म-शक्ति और आत्म-संस्कार रूपमें प्रस्तुत करता है और 'भोग्य बाहरी ओरसे' के रूपमें उसका आरोपण करता हुआ उसकी भावनाकी असीम शक्ति गरजती भिन्न निराला ... की कल्पना करता है। कवि शक्तिके रूपमें इस व्यक्तित्वको अमर मानता है या सत्य बनती रही सिर्फ इसलिए समयकी और ऐतिहासिक

रूपमें 'मीनार क्रिस्तान लपरहट' इसी व्यक्तिकी चेतनाकी 'सहलहाती बाढ़ में अपने भार' उसका भाग चढ़ गए हैं (कुँवरनारायण 'चिन्तक स्नान')। यह वह कविकी अपराजेय आस्तिक रूपम सुन्दर मनि-मानकी हारी-थकी मर्यादाओंके बीच अकेले पुंज तारेके रूपमें चमक उठती है

उगा तारा :
मैंने देखा नहीं कि कब
डूब गया
लाल आलोक सूर्य का। पर अब देखा
देखा यहाँ :
कि पत्तों-पहाड़ों में उलझता
हारी हुई
कालिमामें खचित है मुक्त
अकेला तारा।

[अज्ञेय बावरा अहेरी]

वास्तवमें आधुनिक कविता वह उसकी आन्तरिक उपलब्धि (वैयक्तिक स्वातन्त्र्य) की माँग ही है और उसके लिए वह संघर्षरत है। यथार्थको दृष्टि ग्रहण कर मूल्योंके संक्रमणकी पहली शर्त स्वीकृति आदमी सक्रिय है। संघर्षका 'संकल्प' लेकर समसामयिक कवि 'अपने युग' अपनी विडम्बना से पायी 'पुराकथाओंके माध्यम कर्म'को प्रस्तुत है वह अपनी असमर्थताएँ [illegible] जानके पूर्व मरणको भय [illegible] बरम [illegible] निर्वेग भी और फिर भी प्राणोंकी अभिलाषाओंको [illegible] (श्याम मोहन संकल्प : नयी कविता १)। यह अपने निजत्व यथार्थ प्रगति अथवा अर्थानिक मानदण्डोंका सम्बन्ध [illegible] है। इसमें उपलब्धि भी है या 'नया बनता' [illegible] भार बढ़ रहा है और 'बनता हुआ नया राह गढ़ता हुआ आगे बढ़ रहा है (दुष्यन्तकुमार मानवीय सम्बन्ध)।

इन संकटोंके बीच सारी विफलताओंके बावजूद यह अपराजित ही रहता है। अपने युगके 'चक्रव्यूह' में घिरकर व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रताके लिए अन्त तक युद्ध करना चाहता है और 'मृत्यु निष्प्राण सम्पातीत घरमें घिरे अस्तित्वका हर पल पहचानको घोषित करता है' (कुँवरनारायण 'चक्रव्यूह')। युगके यथार्थसे जूझनेके लिए वह नया अभिमन्यु है जो मानव व्यक्तित्वके पैतृक युद्धको लड़नेके लिए दृढ़संकल्प है और हर आघातको सहनेके लिए उत्सुक है

कौन कवच तक बन सकेगा कवच मेरा ?
युद्ध मेरा मुझे लड़ना
इस महाजीवन समर में अन्त तक कटि-बद्ध

[कुँवरनारायण : चक्रव्यूह विरासत]

कविता यहीं अस्तित्वके विस्तारमें पहुँचकर अनेक बार सारे बाह्य जीवनके यथार्थसे सम्पृक्त होकर आन्तरिक आस्था तथा विश्वासकी व्यंजना करती है। इन कविताओंमें यथार्थ परिस्थितियों तथा मनःस्थितियोंका सुन्दर संयोग देखा जा सकता है और अनेक बार इसमें साधारण भाव बोधके होते हुए भी गहरी आत्मविश्वासकी व्यंजना मिलती। कविके बिखरे हुए यहाँ स जीवनका सारा परिवेश भाव-बोधके स्तरपर अंकित है और उसमें अपनी चेतनाके अंशको वह पहचान रहा है

पर जो घिरे थे — अमिट हैं
मेरे इन सब बिखरे-बिखरे अंशों का
कौन संजोए
मुझे कौन पूरा करे

[जगदीश गुप्त : नावके पाँव]

इस प्रकारकी कविताओंमें कभी पुराण और इतिहासके पात्र अभिनव रूप ग्रहण कर जाते हैं और अपनी मान्यताओंको व्यक्त करते हैं। ऐसी स्थितिमें

वह अपनी लघुताके परिवेशमें ऐतिहासिक दायित्वका निर्वाह करता है। कभी कवि जीवनके बहुत विस्तृत यथार्थके साथ अपनी चेतनाको अभिन्न मानकर बाहरके सारे वर्गभेदोंमें व्यक्तिकी सार्थकताको अभिव्यक्त कर सका है। बाह्य यथार्थका सूक्ष्म अंकन किया जाकर भी यह प्रभाव उत्पन्न किया गया है और विस्तारपूर्वक वर्णन करके भी। 'फोटोग्राम' का अनेक मन स्थितियों और परिस्थितियोंकी प्रतिक्रियाके रूपमें वर्णन करता कवि अन्तत अपने अहंका उस प्रतीक ग्रहण कर लेता है

क्योंकि कल
यदि मैंने सुना
कहीं मेरे आसपास
सुख है शान्ति है
सृजन है, निर्माण है
प्रगति है विकास है,
तो मैं अपनी
इस निरर्थक आत्मा को भी
एक अर्थ दे दूँगा।
अनुभव करूँगा
इन सब के साथ
कहीं मैं भी बैठा था
कहीं मेरा भी योग था।

[सर्वेश्वरदयाल सिरप २]

सबके साथ बंधकर अपने योगमें अपनी आत्माकी सार्थकताकी अनुभूति इस कविताकी वास्तविक आत्मोपलब्धि है मात्र यथार्थ दृष्टि नहीं। अपनी व्यक्ति-चेतनाको इस प्रकार सम्बोधित करनेवाला कवि भी महत्व और कलात्मक आधुनिक शैलीमें अहंका ही उद्घोष कर रहा है

भगवान् !
तुम सबसे बड़े हो
मैं तुमसे छोटा हूँ,
बाक़ी लोग मुझसे छोटे हैं

[विपिन अग्रवाल : धुएँकी लकीरें]

व्यक्तित्वकी माँग और अहंकी स्वीकृतिके साथ कुछ कवियोंमें रोमैण्टिक मनोभावका पर्याप्त आकर्षण पाया जाता है। इनमें भी कुछ कवि मध्य-स्वच्छन्दतावादियोंके समान जीवनकी मुक्तिके साथ रोमांसको स्वीकार करते हैं। यह अवश्य है कि उनमें प्रेम और रूपका आकर्षण जीवनके यथार्थसे सामंजस्य स्थापित करता हुआ व्यक्त है। प्रकृतिकी स्थितियोंके साथ अपना अपनी अनेक मन स्थितियोंमें व्यापी वातावरणका आकर्षण बना रहता है। गिरिजाकुमार माथुरमें यह प्रवृत्ति विशेष रूपसे देखी जाती है

भीगता रस
भीगती मुसकान
किन्तु सुधि होती अधिक रसवान
और माटी की मधुर पहचान

['सिन्धु तटकी रात']

कवि प्रकृतिके रोमानी वातावरणमें विशेष संवलित हुआ है ('स्मृतिकी एक शाम', 'नाशका वारम' आदि)। कवि 'भागतामें समयकी राहमें' भी विश्वास करता है कि यह अनुरागका 'फूल मुरझाया नहीं है'। पर साथ ही इस 'व्यक्ति और समाजके उत्पन्न मन्थन काल' और 'संक्रान्तिकी पीड़ा की आवश्यकता भी स्वीकार है ('आग और फूल')। नेमिचन्द्र जैन, श्यामनारायण त्रिपाठी, राजेन्द्रकिशोर, विजयदेवनारायण साही, पुष्पकुमार तथा वीरेन्द्रकुमार आदिमें यह मनोभाव देखा जा सकता

है। नियतिमें आकांक्षाएँ भाव वातावरणके माध्यमसे उनका बोध भी है

हा क्षण का प्यार हुआ
और अभिसार हुआ
मिट गयी सभी थकान
मिल गयी नवीन स्फूर्ति नया शान्ति नव प्राण
धन्य स्नान।

['स्नान' नयी कविता २]

रेणुकुमारके इस मनोभावमें अवसादकी व्यंजना भी है ('बह गयी है म बीतन' निबन्ध १) पर भारती अपने रोमैण्टिक मनोभावक भाव आधुनिक युगकी विषमताओं और असंगतियोंका सामंजस्य न हो पानेके कारण अवसादसे भिन्न और उदास हो उठते हैं। नारीक रूप-सौन्दर्य तथा प्रेमकी स्थितिके प्रति आधुनिक दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न है। इसके प्रति आजकी दृष्टि असम्पृक्त भाव-रिपनिकी है

देह—
बसकी
रस की
एक बार अतिशय देह को
पिजरा है ? पर मन इसी में-म डरता।
जिसकी उसत सचित आत्मा है।

[भवन 'दर-बर्जी']

आजका कवि जीवनके यथार्थ और उसकी स्पष्टताके साथ प्रणय प्रेम और आकर्षणके प्रति भावावेगकी दृष्टिसे तत्पर होता जाता है। जब वह इस कोमल तथा मधुर सम्बन्धको आमन और बाह्य अनुरूप भाव स्वीकार देखता है तब उसके सामने निश्चय ही वे स्वप्न और कल्पनाएँ नहीं आती जो रोमैण्टिकके लिए बेहद प्रिय है

आराम कुर्सी पर
पैर सिकोड़
आँखें मींच
तुम्हारा शरीर है
जैसे नींद की गोद में हो
कोई सलोना स्वप्न !

[विपिन 'सुहागरात']

ऊब दीवारें वातायन कुरसी और अपनी प्रेयसीको वह एक तटस्थ भाव से देखता है और उसके मनमें 'सीमा और असीमके बीच क्षितिजपर बदलीसे बरसाती धूपकी हरियाली' की कोमल कल्पनासे अधिक भाव प्रवणताके लिए मनोभाव नहीं है। पर आजके कवियोंमें जिनमें रोमान्स का आकर्षण कम नहीं है जगदीश गुप्तका नाम महत्वपूर्ण है। भारतीके समान अपनी प्रारम्भिक कविताओंमें वह स्पष्ट रोमैण्टिक मनोभावोंसे आक्रान्त हैं उनके सुन्दर तथा व्यंजक प्रकृति चित्रोंमें सौन्दर्य और प्रमत्तता यही भाव व्यंजित है। बादकी कविताओंमें यही मनोभाव अवसादकी व्यथाके साथ व्यक्त हुआ है (अप्रकट चुम्बन तुम्हारा आगमन अनुभूति व्याकुल सपना' आदि)

जब से सपनों की सारी सीमाओं को पार किया
पर न हुआ तृप्त हिया।
फूलों की बाँहों में
बादलों की छाँहों में
सपने को ताक लिया
पर न हुआ तृप्त हिया।

['अनुभूति' नावके पाँव]

संकेत-शैलीकी पूर्णता तथा रूपकों और प्रतीकोंका संश्लिष्ट निर्वाह भी अमरीकाकी आधुनिक मनोवृत्तिसे किंचित् भिन्न करता है। देवराजका प्रेम तथा सौन्दर्यका बोध संस्कृतके मर्यादित कवियों-जैसा है।

आधुनिक दृष्टिमें मुक्तिके साथ जीवनकी सहज स्वीकृति भी महत्त्वपूर्ण है। आजका कवि जीवनकी नश्वरता और क्षणिकताको भी उसको अपने आपके लिए सबसे अधिक मानता है। जिन्दगीमें सबसे बड़ा प्रयोजन जिन्दा रहना है ('दुर्मरलापाचक कुछ नहीं' वाली पहली)। एक प्रभाव जिसके रूपमें जीवनकी सार्थकता पथ होनेमें आदमीकी पथमय होनेमें है

आज का नहीं दिन
ठीक;
थक जाना,
मौत।
—यह भी पथ है;
सुख भी पथमय;
पंथा की जय
पथमय।

[शमशेर बहादुर : नयी कविता १]

जीवनकी समस्त विकृतियोंमें जिसमें व्यक्ति मन 'स्वप्न जगत' की मस्त होकर मुक्तिके उल्लासका विभूतिमय पाके आ रहा है। जीवनका स्वप्न लेकर आदमी चलता है, इस विश्वासके साथ कि एक दिन स्वप्न सत्य होते हैं और जीवनके सूत्र सब दीप्तमान अर्थोंकी ज्योति-रेख खींचेंगे (मन्मथ : हम स्वप्नदर्शी हैं, निकष १)। यह सुखका कठोर प्रभाव हमारी उदासीनों और व्यस्तताओं भी आजके कविको जीवनके साक्षात्कार करनेके लिए प्रेरित करती है

मेरी लालसा गाढ़ी हो गया है
जीवन ने मुझे मोल लिया है।

मैं अगत-धर्मा हूँ।
मैं प्रजाकाम हूँ।

[सुरेश अवस्थी 'प्रजाकाम' नयी कविता १]

जीवनकी अदम्य आकांक्षा कविके मनको मृत्युके प्रति भी उत्साहके साथ प्रेरित करती है। जिस असम्पृक्त भावसे उसने जीवनकी सम्पूर्ण स्थितियों-का अंगीकार किया है उसी प्रकार 'साम्य बना झुरमुटोंमें छिपकी हुई मृत्यु' का वह जीवनके अंगके रूपमें स्वीकार करता है

बड़ी मुस्कान मेरे ओठों के प्रशान्त पटों में !
हँस कर किया मैंने मृत्यु साक्षात्कार
हँस कर किया मैंने मृत्यु का
जीवन के अंग के स्वरूप में स्वीकार।

[मनोहरश्याम जोशी 'मृत्यु' नयी कविता २]

और यह जीवन भी अपने प्रत्येक क्षणमें संवरणीय है, क्योंकि उसका भी महत्त्व है उसकी उपलब्धि भी संग्रहणीय है

यह क्षण-चाँदनी
जाय गरिमा
महिमा
मेरे छोरे
बचन
छन को।

[अज्ञेय 'प्रथम किरण']

वास्तवमें यही अणु क्षण आत्मसाक्षात्कारका क्षण हो सकता है जो सारे जीवनका मापक कर देता है। जीवनके चीजन (उपलब्धि) का क्षण कब आकर प्रस्तुत हो जाय कौन जानता है? अतः उसके लिए कवि निरन्तर

प्रस्तुत रहनेकी तथा उसके प्रति समर्पित होनेकी बात कहता है ('समयका भिक्षु' 'पुन भिक्षु' नरेश मेहता)। इसी जीवनको भावका कवि बहुत सहज भावसे स्वीकार कर लेता है और उसके साथ प्रत्येक स्थितिको समान रूपसे ग्रहण करता है। उसके लिए कविताका लिखना, सूरजको झुकके देखना, स्नान करना और एक बच्चेका सिर छूकर कन्धेपर चढ़ जाना जीवनकी सहज उपलब्धिकी स्थितियाँ हैं — 'आज फिर शुरू हुआ जीवन' (रघुवीर सहाय 'आज फिर' नयी कविता ४)।

जीवनकी आन्तरिक गहराइयाँ ग्रहण कर लेनेके कारण ही इस कविने यन्त्रणा और दुःखको आत्मान्वेषणका और उसके माध्यमसे आत्मोपलब्धिका कारण माना है। यह दुःख सबको माँजता है अतः इससे बचनेकी आवश्यकता नहीं वरन् इसे स्वीकार करना ही वास्तविक जीवन है। यह करुणाकी ओर ही मानवके हृदयका आलोक है जिससे उसकी चेतनाकी गति गतिशील रहती है कुण्ठित नहीं होती (अज्ञेय : 'बदला नहीं नी कोर' बावरा अहेरी)। व्यक्तिके अकेले स्वत्वके बीज लोक-मानसकी विस्तृत भूमिपर पनपा सकनेवाला व्यक्ति मानव मूल्योंको वहन करनेवाली हैसियतका अधिकारी है ('नहीं तुम हँसी हो' इन्द्रधनु रौंदे हुए ये)। व्यक्ति-मर्यादाको पालित और मर्यादित करनेकी पद्धति भी यही है

क्योंकि तपस्या
जलना नहीं है
वह है गलना।
गल कर मिट जाना-मिल जाना
पाना।

[नदी बाँककी सीप नदी]

यातनामें सम्पृक्त होकर यथार्थतः आत्मका विस्तार जीवनको नयी चेतना दे सकती है जो उभारकर जीवनके सत्य स्रोतोंको आत्मसम सरल होती है

(कुँवरनारायण 'मित्र वरमा' : चक्रव्यूह)। आजके कविके लिए दुःख ज्ञानका स्रोत न होकर किसी 'चिड़ियाके अण्डेमें बच्चे-सा' है जो भविष्यके प्रति अनन्त आस्था लेकर जगता है (दुष्यन्त कुमार 'मैं और मेरा दुःख' : सूर्यका स्वागत)। व्यक्ति ही दर्दका स्वामी है क्योंकि वह जीवनको वहन करता है (राजेन्द्र किशोर 'दर्दका स्वामी कौन है' ?)। भारतीकी 'प्रमथ्यु गाथा' में पौराणिक कथानकके माध्यमसे मानव मर्यादाओं और मूल्योंकी रक्षा करनेमें तत्पर प्रमथ्युकी वेदनाओं और पीड़ाओंका आश्रय ग्रहण किया गया है। वह अपनी वेदनाओंके माध्यमसे ही आगत युगकी सम्भावनाओंको विकसित करनेका विश्वासी है

कोई तो ऐसा दिन होगा
जब मेरे ये पीड़ा सिक्त स्वर
उनके मन का शेष मूर्च्छित प्रमथ्यु को जगायेंगे।

सर्वेश्वरने दर्दको मानव व्यक्तित्वकी बड़ी शक्तिके रूपमें स्वीकारा है। इसके बहुत सरल प्रतीक-द्वारा कवि ऐतिहासिक परिवेशमें व्यक्तिकी सारी पराजयों और भटकावोंमें उसको आगे अग्रसर करनेवाली शक्ति और आस्था दर्दको मानता है

मैं दर्द की कविता ही लिखी
किसी ने मुझसे नहीं बात की।'
लगा मुझको बराबर कोई ऐसा कर गया
और मेरे दर्द को मुझसे बड़ा कर गया
आज पहली बार।

['आज पहली बार' : नयी कविता २]

इस दर्दके माध्यमसे व्यक्ति स्वयंको समष्टिसे जोड़ सकता है। अज्ञेयका मद भरा गरबीला दीपक अपनी लघुतामें भी अकम्पित अपनी पीड़ाको

की महत्ताको स्वयं ही मापते हुए पंक्ति (समाज) के लिए विसर्जित होता है

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता पर
इसको भी पंक्ति को दे दो ।

[अज्ञेय 'यह दीप अकेला]

अपने व्यक्तिकी पूर्ण उपलब्धिको समष्टिको समर्पित करना आजके कविके अहंकी पूर्णता है ।

आजके युगका नया परिप्रेक्ष्य है असम्पृक्त यथार्थ दृष्टि । छायावादी दृष्टि निरपेक्ष सत्य और मूल्योंपर विश्वास करती थी प्रगतिशीलताने जिस सामाजिक यथार्थको ग्रहण करनेकी घोषणा की थी वह अपने आपमें एक आदर्श दृष्टि तो है पर साथ ही उसके मानस ऐसे भ्रम भी रहे हैं जिनके कारण वह एक कल्पित सामाजिक यथार्थसे उलझकर कुण्ठित होती रही है । पर अब आधुनिक परिप्रेक्ष्य जीवनको समग्रतासे आत्मसात् करनेके लिए तत्पर है तो वह यथार्थको पूर्ण ही स्वीकार करेगा । अजय इसी सत्यकी विज्ञप्ति करते है

दुःख को प्यार करा
पर मरे ना मर जाना हा
जीवन का रस लो, दर्द-भरे यारना की रसना म
पर आ मर उस मर जान दो ।

[बावरा अहेरी]

पर यह आधुनिक दृष्टि यथार्थके प्रति ऐसा असम्पृक्त भाव लेकर चलती है जो उसको आन्तरिक प्रक्रियासे सम्बन्धित या गहराईसे माप करे पर किसी वादविशेषसे मोह अथवा आसक्ति न पनपने दे । उसका आसक्ति भी यथार्थकी गति और सम्भवतो पीड़ाम गम्भीर है मन्ताके प्रयोगात्मनें नहीं

भटकती। ऐसा नहीं कि इस दृष्टिके सामने कोई स्वप्न रहते ही नहीं पर वे धरतीकी अपनी मर्यादा और मूल्यका संयम रखते हैं किसी निरपेक्ष शाश्वत सत्यका नहीं। 'रास्ता तय करता हुआ' कवि अपने चतुर्दिक्के उसके समग्र विस्तार और भारको ग्रहण करता हुआ भी असम्पृक्त रह पाता है और उसमें जो दृष्टि मिलती है उसके लिए वह कृतज्ञ है

मैं कृतज्ञ हूँ। उन सब का आभार मानता—
धन्यवाद है, उनको मेरा नमस्कार है।

[समानान्तर शिखर २]

यथार्थकी अनावृत स्थितियोंका सामना पाकर आजका कवि किन्हीं रंगीन और स्वप्न-सम्भावनाओंमें खो नहीं पाता यह उसकी नयी मनोवृत्तिकी कठिनाई है क्योंकि उस स्थितिमें व्यक्तित्व आप बर्फकी चोटी-सा पिघलना चाहता है उसकी कुण्ठाएँ बनी रहना चाहती हैं और उसका अहं न गलनेके लिए तैयार है, न मिटनेको ही प्रस्तुत है। वह (व्यक्तित्व) क्रमसे आत्मोपलब्धि (हाथ बढ़ाकर बर्फ़ छूनेके समान) के माध्यमसे सारे यथार्थका अनुभव करता है

उसमें मैंने पहचाना
किनारों दरख्तों और कुर्सियों की
और आँखों में वह भी देखा
सब के रंग एक थे
सब की गहराइयाँ एक थीं
और मेरी परछाईं भी
उन्हीं में से एक था!

[विविध परछाइयाँ]

और दृष्टिकोणके इस विषम और विविध विस्तारमें उसका अहं जैसा बिखर जाता है और वह ऐसी समग्रतामें उसका अनुभव करना चाहता है कि

उन्हें स्वयं अपने व्यक्तित्व तथा यथार्थकी सापेक्षताके विषयमें प्रश्नशील होना पड़ता है—'पर इन असम्बद्ध बिम्बोंमें कौन-सा ऐसा समन्वय भर रहा है। क्या मैं भी इस रीतका पात्र हूँ या इसका भाग्यता हूँ!' (मिक्टो स्मक 'म्यूजीम' शिल्प २)

आधुनिक दृष्टि इतिहासको बिना युग-जीवनसे सम्बद्ध किये मानती है। जीवनकी धाराका अविच्छिन्न और अप्रतिहत स्वीकार करके न चलने वाला इतिहास अयथार्थ है और ऐसे इतिहासकी घटनाएँ मानव-सम्बन्ध शून्य होकर इतिहासके पृष्ठोंके बीच दबकर मर गये कीड़ेके समान महत्त्वहीन हैं ('इतिहास और कीड़ा' न० क० १ लक्ष्मीकान्त)। और यह गतिहीन इतिहास मानव-मूल्योंकी जो अनागत शाश्वत परम्परागत तथा आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत करता है वह मानव व्यक्तित्वको कुण्ठित और विकृत ही करती है। युग-प्रभावसे सम्बद्ध इतिहास ही गतिको पहचानता है और मानव-आचरणकी मर्यादा स्थापित करता है अन्यथा

आज था आका ऊपर का ढका नाक
मर भी ऊपर न गिरा!
आचरण करो मेरा।
संस्कार हूँ मैं
इतिहास का संकट बन गया है मैं
मैं अस्तित्व की जड़ हूँ
तुम वल्कल हो,
आचरण करो मेरा।

[लक्ष्मी० आत्मघाती शास्त्र नयी कविता १]

मानवतावादी इतिहास केवल अनुकरणकी माँग करता है। यह इतिहासका उत्तर-छोर गमनशीलताकी दृष्टि ही है जो मानव मूल्योंकी स्थापनामें सहायक हो सकती है। पर इतिहासकी गतिमें यथार्थकी प्रवाहित धारामें मानव

विवेकमें और मानव-भविष्यमें भी उत्तरदायित्व वहनकी शक्ति नहीं जब तक कि व्यक्तिका अहं उदात्त होकर सबके वहनका दायित्व अपने ऊपर नहीं लेता। यहीं यथार्थको इतिहासकी गतिसे और मानव भविष्यसे जोड़कर चला निखरा हुआ मानव व्यक्तित्व ही है (अज्ञेय इतिहासकी हवा हम्पन् रीते हुए थे)।

यथार्थकी यह दृष्टि सबसे पहले युग-जीवनके विघटनकी ओर ध्यान आकर्षित करती है। इस संक्रान्ति कालमें मूल्यों और मर्यादाओंका ऐसा स्खलन और विघटन हुआ है कि कविके स्वरमें अनेक बार निराशा और अवसाद ध्वनित होता है। वह युगके अन्धकारमें घुटते हुए जीवनको देखता है और मर्दोंकी कोरोंपर माथा रखकर रोनेवालोंको आश्वासन देता है कि 'हर एक दरको नये भय तक जाने दो' (भारती 'धूम मोमबत्तियाँ सपने')। आजका मनुष्य ऐसी संक्रान्तिकी स्थितिमें है कि उसके लिए कहीं ठौर ही नहीं है वह मर्यादा-च्युत व्यक्ति-पुरुष है, वह कटा हुआ गुम सुम अपने युगको देख रहा है (राजेन्द्र किशोर 'आजका मनुष्य'।) पर इस जीवनके विनाशकी भीषण से कवि सजग भी करता है और आत्म-विवेकको उससे संघर्ष करनेका आवाहन भी करता है

दिमाग का बर्नों में मन्दिर जा कायम है
दम घार कमा,
अम्बर की छाया ज्योति का घर लेगी
किरन की रेखा था रही साम था
ज्योति दनराम दो

[लक्ष्मीकान्त पुलेकी कर्मोंने]

इस युगका विस्थापित व्यक्ति युगके विस्मित मूल्योंसे सहम करनेमें लग गया है पर समग्र शान्ति और मानव-मर्यादाकी कविके बावजूद अपनी नियतिके साथ लिखा हुआ है—'घर जो हुआ ना हुआ हर इनम पता

ये तो मेढक हैं अपनी नालियोंमें बैठे—टरटराते रहेंगे। (विपिन 'अखबारका पृष्ठ' पुरानी लकीरें)।

पिछले जीवनकी कुण्ठित और विगलित मर्यादाओंके साथ आजके जीवन की यान्त्रिक निरीहता भी आजकी कवितामें व्यक्त हुई है। कहीं तो यह अत्यन्त अनावृत यथार्थको प्रस्तुत करके ही व्यंजित की गयी है। इनमें सामाजिक (विशेषकर नगरके) जीवनकी विषमतामें उसकी कुण्ठाएँ, कृत्रिमता नीरसता भागदौड़ तथा विवशताओंका विस्तृत अंकन किया गया है (मदनकुमार पाषाण 'नाटक निकष २' 'बम्बईका फ्लैट' [illegible] कविता २। देवराज 'अखबार' 'नाटक' 'धरती और स्वप्न')। यह यथार्थका अनुचित्रण निराशावादी रूप विकल्पहीन [illegible] अपेक्षा जीवनके प्रति अधिक गहरी दृष्टि देनेमें समर्थ है। [illegible] रूपमें आजका कवि सुन्दर-असुन्दर शिव-अशिव [illegible] मानकर नहीं चलता वह समग्र यथार्थको आत्मसात् करके [illegible] अभिव्यक्त करनेमें विश्वास करता है। भारतकी कविता [illegible] ऐसे ही यथार्थका अंकन है पर उसके अन्तमें जो [illegible] वाला करुणाका दुहरा आयाम दे देती है। [illegible] बीच सभ्य कहलानेवाले लोगोंमें मानवताकी आत्म[illegible] प्रश्न किया है

और अचानक तुम कौन हो पहिचान
अचानक पूछे
और बार बार
'हाँ' पर मानव
तुम हो किस लिए?

वस्तुतः यथार्थका अनावृत वर्णन करनेके पीछे [illegible] प्रश्न गूँज रहा है—तुम हो किसके लिए?

सम्पूर्ण यथार्थको ग्रहण करनेवाली आजकी दृष्टि आधुनिक वैज्ञानिकता तथा बुद्धिवादके आधारपर विकसित हुई है। इस भूमिकाके बिना यथार्थ का उसके समस्त शिव-अशिव सुन्दर-असुन्दर रूपमें साक्षात्कार करना सम्भव नहीं था। इस युगकी समस्त कल्पनाएँ, रहस्यभावना परियों और अप्सराओंका लोक तथा प्रकृतिका सारा कौतूहलपूर्ण आकर्षण धीरे-धीरे विलीन होता जा रहा है। इस कारण आजकी कविता काव्यकी सिद्धान्त परम्पराके अनेक रूपोंको छोड़ चुकी है। काव्यके ये सारे उपकरण पिछले युगोंकी मनोवृत्ति और भावनाओंके निकट थे और आज अस्तित्वहीन हो रहे हैं। युगकी यथार्थ दृष्टिके सामनेसे यह सारा स्वप्नलोक तिरोहित हो रहा है और वह अपने जीवनसे अधिकाधिक परिचित होती जा रही है

बादल के रथ रुक पर
आतीं मिलि परियाँ जब
माथ पर सिकुड़ गयीं चिन्तन की रेखाएँ।
हर आगम वाले से कहता रसहीन "यथार्थ"
'आगम' से परिचित हो।

[कुँवरनारायण चक्रव्यूह 'स्वप्न चित्र']

इस महाक्रान्ति-कालमें (गोधूलिकी बेला) यह वैज्ञानिक दृष्टि और उसका यथार्थ अनेक बार ऐसा भी लगता है मानव-अस्तित्वको लौह-यन्त्रकी [illegible] कर देंगे और मनुष्यकी समस्त कोमल कल्पनाएँ उसके साथ नष्ट हो जायेंगी

पर लाट-पत्थर का एक सूना ढेला
जिस दिन मानव चाँद छू लेगा
और तारे नष्ट होंगे—
धूमिल में!

[विपिनकुमार धुएँकी लकीरें 'चंदामा']

पर निश्चय ही यह विज्ञानकी भौतिकवादी परिणति है जो अपना जड़ यान्त्रिकतामें योरोपको १९वीं शतीसे कुण्ठित करती आयी है। वस्तुतः वैज्ञानिक युगके प्रारम्भिक उन्मेषमें मनुष्य इतना उल्लसित हो उठा था कि वह स्वयंको अपनी ही जड़ यान्त्रिकताका विवश बन्दी बनाता गया है। क्योंकि इस उत्पीड़नका अनुभव आजका कवि करता है और वह स्पष्ट देखता है कि इसके द्वारा प्राप्त अवकाशको मनुष्य अपने मूल्योंकी उपलब्धिके लिए लगानेमें असमर्थ है

यन्त्र हमें दलते हैं
और हम अपने को छलते हैं

बाहर हैं वे—वही तार वही एक शुक तारा,
वही सूनी ममता से भरा आकाश है।
['अज्ञेय' बावरा अहेरी 'दफ्तर शाम']

परन्तु आधुनिक दृष्टि यान्त्रिक-जीवनकी घुटनका अनुभव करके भी पिछले पौराणिक और आध्यात्मिक स्वप्नों और कल्पनाओंमें जीवनकी प्रेरणा ग्रहण करनेमें असमर्थ है वह वैज्ञानिक यथार्थसे अलग नहीं हट सकती। यान्त्रिक अहंकारसे वह आगे बढ़कर मानवतावादकी प्रतिष्ठा कर रही है और साथ ही पिछले युगमें मानवतावादके नामपर जो सामाजिक यान्त्रिकता का विकास हुआ था उससे मुक्त होकर वैयक्तिक स्वातन्त्र्यका आग्रह करती है। आजके कविका आग्रह पिछले वायवी और निष्प्राण आदर्श [illegible] आकाशसे नीचे उतरकर धरती यथार्थ भूमिपर पैर रखता है क्योंकि इसी मिट्टीपर उसे मनुष्यका साक्षात्कार हुआ

रस्ता मिलेगा
जहाँ सामने तुमको
अनपेक्षित प्रतिरूप तुम्हारा

नर, जिसका अनमिप आँखों में नारायण की व्यथा भरी !

['अज्ञेय' 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' 'हवाई यात्रा : ऊँची उड़ान']

आधुनिक कवियोंकी यह दृष्टि समसामयिक जीवनको उसकी गतिमें पूर्णतः ग्रहण करती है। यही कारण है कि आजके काव्यमें जीवनकी समग्र विकृतियोंका रूप स्वीकृत रहा है। एक स्थिति ऐसी भी थी जब युग-जीवनकी विकृतियों और कुण्ठाओंके बीच व्यक्ति टूटता या बिखरता दिखाई देता था। पर आजका कवि इन सबको झेलकर उनके प्रति व्यंग्यशील हुआ है। इन व्यंग्योंमें कहीं तिक्तता और गहरे आघातको देखकर नयी कवितामें 'सिनीसिज्म' का आरोप लगाया जाता है। ऐसा नहीं कि नयी कवितामें 'सिनीसिज्म' नहीं है, पर विघटित मूल्यों और विस्थापित व्यक्तित्वोंके इस युगमें इस प्रकारकी आस्थाहीनता और ममता स्वाभाविक आवश्यक है। नये मूल्यों और नये व्यक्तित्वके संगठनके लिए यह आधार-भूमि है। आजकी 'विषयकोंकी दुनिया' में जिन्दगीकी निष्ठाका रूप ही बदल जाता सहज है [शकुन्त माथुर : निकष २]। कहीं यह व्यंग्य बहुत गहरा तीखेमें युग-जीवनके सत्यका बोध कराता है। सर्वशक्ति-कान्ते इस सम्भ्रममें व्यक्ति और उसका मन विवशहीन शिशुके समान मेलेमें भटक गया है और प्रत्येक चमकीली चीज़में आकर्षित होकर घूम रहा है परन्तु

> वो ! ऐसा हुआ कि ! नयकी फूलों को
> मेले में जाकर भूले बच्चे से
> अम्मा से भी कुछ बढ़कर जाना है
>
> [अजितकुमार : नयी कविता २]

सामाजिक (परिस्थितियोंपर व्यंग्य प्रभाकर माचवेके तारसप्तकमें तथा कुछ के मुक्तकोंमें विशेष रूपसे मिलेगा पर प्राय यह उक्ति और विषयके निर्वाहके रूपमें है। इनमें व्यापक जीवनके सन्दर्भके स्थानपर परिस्थिति जन्य विशेष अधिक व्यक्त हुआ है

दाना पाना कपड़े कचे धेला दुआ
बीबी बच्चे   तको न वरद-सा हरदम
पिसना पिसना "साँसा खिटखिट, कुछ मज़ा नहीं
झिम्हणा रहम—सा खाकमुहम्मद एक बड़ा !

['मुक्त' पामावर 'बन्द']

इसके विपरीत मुद्राराक्षस अनन्तकुमार तथा मदन वात्स्यायनमें युग जीवनकी गहरी उलझनके बीच आधुनिक जीवनकी कुण्ठा विघटन मर्पान्-हीनता नग्नता ढोंग आदिपर गहरा और कठोर व्यंग्य है और यह परिस्थितिगत नग्न यथार्थ विकृत चित्रणमें सन्निहित है। आजके जीवन का एक घटाटोप और नग्न चित्रण इस काव्यमें अनेक स्थलोंपर मिलता है। उसमें एक ओर असुन्दर तथा कुत्सितका बहुत अंश मिल जाता है और दूसरी ओर अंकनकी क्रमहीनता शिल्पहीनता आदि प्रमुख हो उठती है। अनेक बार सारे काव्यका अर्थ निरर्थक तथा भावहीन भाषा जान पड़ता है और विरोधी आलोचक इस प्रकारके काव्यको प्रमुखतः दृष्टिमें रखकर नयी कवितापर यह आरोप लगाते भी हैं। परन्तु आधुनिकताके अन्तर्गत यह सम्पूर्ण जीवनको आत्मसात् करनेका आग्रह है, और इस प्रकार नया कवि समसामयिकताके दायित्वका निर्वाह अच्छे अर्थोंमें करता है क्योंकि वह जीवनकी वास्तविक गति अन्तरम सुमरे व्यक्तका अत्यधिक प्रखरता और गहराईके साथ व्यंजित करता है (मदन वात्स्यायन 'नयी परकीया' नयी कविता ३ 'एकसप्त' निबन्ध २)। इस आत्मपरता अनमनासे यथार्थके बीच कवि आजके जीवनके विघटित मूल्योंपर व्यंग्य ही उभारता है

मन के मन
दफ्तर के पाँवों पर एक माथ गिर
भूकम्प में मकान की तरह

पिता ! पिता !
क्षमा करो रक्षा करो
हम अब फिर कभी वैज्ञानिक मामलों में
मानवीय तर्कों का नाम नहीं लेंगे ।

[मदन वात्स्यायन : एकपत्र]

आजकी नयी कवितामें यथार्थका उपहास व्यंग्य बहुत बड़ी शक्ति है जो युग जीवनके विसंगतियों में सम्बद्ध भी है और उससे उबरकर मानव भविष्यकी ओर संकेत भी करती है। आजके काव्यमें यह व्यंग्य अनेक स्तरोंपर व्यक्त हुआ है और कवियोंने उसके लिए अनेक शिल्प विधियोंका प्रयास किया है। एक प्रकारसे नयी कविताकी यह व्यापक शैली है, यही कारण है कि उसकी अनेक प्रवृत्तियोंके साथ व्यंग्यका माध्यम स्वीकृत रहा है। कभी यह सामाजिक जीवनका व्यंग्य बहुत सीधे सहज ढंगसे कविकी केवल आन्तरिक ईमानदारीके माध्यमसे व्यक्त होता है। भवानीप्रसाद मिश्रके 'गीतफरोश' में जीवनकी सहज विवशता ही व्यंग्य है, आजका जीवन जिन असंगतियों और विरोधाभासोंसे गुजर रहा है उसका सारा अकेलापन 'मैं गीत बेचता हूँ' कहनेवाले कलाकारकी विवशता में प्रतिबिम्बित हुआ है। भवानीप्रसाद मिश्रकी शैली सीधी सरल होकर भी मार्मिक व्यंग्य करती है :

आप यह विज्ञप्ति हैं मेरे निवेदन के सारे
आप चाहते हैं कि मानता यह भी ढंग हमारे ।
मैं बताना नहीं चाहता, आदिम अरण्य वाले
पोंगी कुरता पहन प्यार में लिपटाये हूँ पाले ।

['आदिम वाले' : नयी कविता २]

कई बार कवि प्राचीन इतिहास पुराण तथा साहित्यके चरित्रों और कथाओंको लेकर उनके माध्यमसे आजके जीवनके विसंगति सम्बन्धी किया

जिन व्यक्तियों और झूठे सम्बन्धोंपर व्यंग्य करता है। भारतभूषण अग्रवाल इसी प्रकार युग जीवनके संस्कार महाभारतके युद्धके माध्यमसे व्यक्त किया है

भूमि युद्ध-भूमिसे सहसा सागर
उफनती है "कौन-सा है शिविर जिसमें
बैठकर सम्मान करता है युधिष्ठिर
सत्य-सत्य की भाव कहने हमने का।

इसमें मनुष्यका प्रथम समयकी बुद्धि और परम्पराका बहिर्दर्शिता तथा युग जीवनके सब सन्दर्भमें नया अर्थ ग्रहण करते हैं। इस प्रकारकी व्यंजना अधिक व्यापक तथा मार्मिक हो गयी है और उसमें भाव-सौन्दर्य भी अधिक स्पर्शी है। भारतीजीने मायसट्ट, बृहस्पता 'टूटा पहिया' आदि कविताओंमें युग जीवनके सन्दर्भको प्राचीन प्रसिद्ध चरित्रोंके द्वारा व्यंजित किया गया है और भावना विशृंखलित बड़ी चोट है। उनके 'अन्धा युग' में महा-भारतके अन्तिम समयकी कथाके माध्यमसे संस्कृति-युगीन विघटनका बहुत सशक्त चित्रण प्रस्तुत किया गया है जिसमें भारतकी महायुद्धके बाद की स्थिति तथा भावनाएँ यथार्थ अंकन है। सारी रचनामें बर्बरताका गम्भीरताका वातावरण परिव्याप्त है फिर भी युगका सम्पूर्ण बहुत सशक्ति भाव व्यक्त हो गया है। इसी कारण इसमें सम्पूर्णतम व्यंग्यकी अन्तर्वर्तिनी धारा प्रवाहित है जिसके माध्यमसे इसमें आगत मूल्योंका आभास मिलता है। सबसे आश्चर्योंका उसमें प्रथम युगकी कुण्ठा, मनोव्यथा, घुटन, कुण्ठा तथा आत्मपराजयताका उद्घाटन मिलता है पर उसका इस रचनाकी आन्तरिक प्रवृत्तिका नहीं पाया जाता है। कविने सर्वसाधारण तथा निम्न परिस्थितियोंमें भी मानव-विवेकके उच्च तथा मानव नियतिकी व्याख्या अंकित किया है।

भारतकी संस्कृति और उसका विघटन किया। इस तथा समाजमें सीमित

न होकर संसार-व्यापी है। उसके पीछे सारे विश्वकी राजनीति और अर्थनीति है। आजके कविकी दृष्टि इस व्यापक सन्दर्भको पहचानती है और वह उसकी सारी पीड़ा वेदनाको झेलकर उसके प्रति व्यंग्यशील होता है। यह ऐसा व्यंग्य है जिसमें कविकी अपनी चोट अपनी व्यथा और अपनी तड़प शामिल है। कभी कवि प्रतीकोंका आश्रय लेता है, पर इन प्रतीकोंमें ज्ञान अथवा चित्र-निर्माणकी अपेक्षा संवेदनाकी गहराई और अनुभूतिकी मार्मिकता ही अधिक है। इसी कारण अनेक बार सामान्य अर्थमें ये प्रतीक असम्बद्ध उलझे हुए, अस्पष्ट तथा भ्रमात्मक (इम्प्रेशनिस्टिक) हैं। परन्तु इस प्रकारकी सफल रचनाओंमें व्यंग्यका तीखापन और मार्मिकताके साथ ही उच्चकोटिकी संवेदनकी सम्प्रेषणीयता भी है। लक्ष्मीकान्तके इस प्रकारके व्यंग्योंमें यथार्थकी स्थितियोंका बहुत उलझा हुआ रूप है पर पूरी कवितामें गहरी संवेदनात्मकता प्राप्त रहती है और विशेष बात है कि कवि अत्यन्त सारी कटुता तथा कुण्ठाको आत्मसात् कर मानवताके प्रति सारी सहानुभूतिका परिचय देता है

लेकिन पृथ्वी सहनशीला है
क्षमा है सबको
जब दूसरी बार
पृथ्वी-पुत्र उधर से गया
एक चींटी की लाश पर
हज़ारों चींटियाँ मातम मना रही थीं
पृथ्वी के ऊपर
और पवन शान्त थे!

[पृथ्वीपुत्र बाँसकी लकीरें]

अन्य स्थितियोंमें कवि युगकी विडम्बनाका विषम मार्मिक दंशन करता है। वह आजके आन्तरिक जीवनके उलझी अनमनी तथा बेसुध मन स्थितिम

देखता है कि 'धूप रहे केन्द्रोंकी चोटीमें एटम बम' है, 'माँस-भरी सिन्दूरी माँगमें बारूदका भ्रम होता है', 'बाँह-भरी चूड़ीमें लिपटी रोटी बोटी बम है' तथा 'उन हाथोंमें मंगलें हैं जिनमें रचनाका क्रम' रहना चाहिए। इसीके साथ जब वह अप्रचलित और उलझे हुए प्रतीकोंका प्रयास करता है तब संपूर्ण जीवनकी गहरी व्यंजना करनेमें सफल होता है

> नये जाग पाओ नयी परिस्थिति
> गल्प और गीता का संगम
> रच हुआ है
> अबुध मर गए
> काग सरीखा सारा बीता
>
> ['गीता और सटर' पुरैनी लकीरें]

जिस प्रकार सर्वेश्वरमें युग जीवनके प्रति गहरी सम्पृक्ति है उसी प्रकार वह मानवकी समस्याओंके प्रति सबसे अधिक जागरूक कलाकार है। उसने आज युद्ध-त्रासके सन्दर्भमें मानवकी राजनीति, राष्ट्रनीति, युद्धनीति तथा कूटनीतियोंसे कुण्ठित होते जन-मानस तथा मानव-व्यक्तित्वकी स्वतन्त्रताके लिए तीखे व्यंग्यके रूपमें विशेष प्रस्तुत किया है ('गणतन्त्रकी गाथी', 'पीस पैगोडा', 'समाचार और सिपाही', 'पोस्टर और आदमी' आदि)। इन कविताओंकी विशेषता न केवल उनके तीखे और प्रखर व्यंग्य हैं वरन् मानवीय संवेदनाओंकी कलात्मक प्रेषणीयता है। कविने शान्ति-मन्त्र पर नये प्रतीकोंके माध्यमसे आज विघटित होते मूल्योंपर, भावुक आस्थाओंपर, मानव-व्यक्तित्वको कुण्ठित करनेवाली शक्तियोंपर, आज युद्धके माध्यमसे मानव भविष्यको नष्ट करनेवालोंपर और आसपास राजनीतिक रूपोंपर तीखा व्यंग्य किया है

> एक लाश यहाँ बाहर
> दूसरी लाश उसके सर पर लिटा दी गयी है

ताकि उसकी छाँह के तले
ध्यानस्थ से बैठे हुए
या बाहर से आदमीके मोर्चों के बाद
एक ही कलम की पंखुरी पर
सुलाए जा सकें।

['पीस पैगोडा' नयी कविता २]

यहाँ इस प्रतीकपर जो सपन मये तथा उपमेयमाक भारत एक साथ व्यंजन तथा साकार हैं मानवकी युद्धनाशि तथा शान्तिकी भावनाओंका व्यंग्य बड़ा सरल और सीधी शैलीमें आपादित किया गया है। सर्वेश्वर अपनी विषय-वस्तु, मान्यताओं तथा शिल्पविधि सभी दृष्टियोंसे आधुनिक हैं। आतंक मानवीय मूल्योंके विघटनको कविने न केवल पहचाना है वरन् उसकी मार्मिक करुणाका भी संकेत है। आज पोस्टरों (मानव व्यक्तित्वको आक्रान्त करनेवाले थोथे मूल्योंके बोध) के युगमें मनुष्य कमा भरिवाम लगता है

आज मैं उनके सामने
नन्हा-सा दुबा हुआ खड़ा हूँ
दिखाता, बरदाता—

लेकिन मैं देखता हूँ
कि आज के युगमें मैं
आदमी से ज्यादा लम्बा
पोस्टरों का पहचानन है
न आदमी म कोई मन्व है।

['पोस्टर और आदमी' नयी कविता २]

आज कविकी दृष्टि यथार्थको इस प्रकार समझता है कि

प्रकृतिके प्रति सौन्दर्य-विस्तारमें वह रोमाण्टिक भावुक स्थानपर अन्तत अपनी परिस्थितिके सत्यको ही ग्रहण करता है। प्रकृतिके प्रति आधुनिक कविकी दृष्टि असम्पृक्त यथार्थकी है जिसके कारण वह एक ओर तो उस वस्तु-सत्यके रूपमें ग्रहण कर उसमें अपने मानसिक प्रभावोंके साथ स्वीकार कर लेता है दूसरी ओर उसमें किसी रोमैण्टिक भावावेशका आरोप नहीं स्वीकार करता। ऐसा नहीं कि प्रकृतिके प्रति सभी नये कवियोंकी समान दृष्टि है पर रोमैण्टिक महत्त्वके स्थानपर उसमें उसकी वस्तुस्थितिको अपने व्यक्तित्वके प्रभावमें समाहित करनेकी प्रवृत्ति विशेष महत्त्वपूर्ण है। गिरिजाकुमार प्रकृतिके सम्बन्धमें रोमैण्टिक सम्भावनाओंसे आन्दोलित अवश्य होते हैं पर यह भाव यथार्थ दृष्टिका बाधित नहीं कर पाता कवि दूसरी विषमताके प्रति सचेष्ट हो जाता है

ऊषा का चढ़ने आई
उड़न बम-सा बढ़ चमकार
कराल सभ्यता में आग
कि जिसकी धाम-सी छाया
छिप है सब गगन काला
लिखा है नीतिका की इच्छा
बारुद साग्न सागर पार

['धूपाकमें कोम   धूपके धान']

जिस वस्तुनिष्ठ दृष्टिसे आजका कवि प्रकृतिको देखता है उसमें अपने जीवन का सत्य अधिक सामने आ जाता है। 'हवा' धारा (असम)में 'कवि ऊँचे हुए बगुलेको देखता है जो सम्पत्तिकी ओर कम्पासे समान विदा है और उनपर स्वामी परली भूरे उभार तोलियोंकी रोम नहीं विपत्तियोंके समान जान पड़ते हैं। पर इस विषम उसका ध्यान नौकुरकी धरती ओर जाता है आजके पराजयके विषादकी ओर जाता है और अन्तमें मार्मिक सम्भावनाके स्वरमें कविता समाप्त होती है

ऊँचाई कम घटी। साथ ही वायुयान उतरेगा।
नये शहर के रंग और हैं   हम गोरे हैं यहाँ
दोन शहर हैं उस चौसर के।

['हवाई यात्रा'   बावरा अहेरी]

नये कवि प्रभावशाली शैलीमें प्रकृतिके साथ साथ सामाजिक जीवनको एक साथ ग्रहण करते हैं। उस समय प्रकृति-चित्रोंकी चित्रात्मकता और भाव बोधकी उलझन बढ़ जाती है, परन्तु सब मिलाकर जो प्रभाव पड़ता है उसमें व्यंजना अधिक मार्मिक हो जाती है। यह व्यंग्य भाव प्रकृतिके चित्रणके लिए चुन गये विविध उपमानोंसे अधिक उभरता है

पश्चिम की गगन खिड़की के उन नील खुले शीशों पर
आज का बाजार सुर्खी
साँझ की ये रोशनियाँ—
पाके टिकर की तरह
फैल रही, फैल गयीं।
आज तो बाजार सस्ता
बढ़ेगा मर्मी

[नरेश मेहता   'बीमार शामके किनारे'   वनपाखी सुनो]

आजके काव्यमें प्रकृति-सम्बन्धी इसी वृत्त्यात्मक काव्य कवि उसके सौन्दर्य और सहचरताका उपभोग करता नहीं देखा जाता। जिन कवियोंका रागात्मक मनोभाव उन्हें प्रकृतिके प्रति इस प्रकार आकर्षित करता भी है उसमें भी आधुनिकताकी माँगके फलस्वरूप यह सारा राग-भाव शिथिल और उदासीन बन जाता है अथवा वह शुद्ध मन स्थितिके स्तरपर प्रकृति और कविका तादात्म्यमात्र रह जाता है जो प्रकृतिके बिम्बविधानों (इमेजेज़) अथवा प्रभावान्वितियों (इम्प्रेशन्स) में व्यक्त होता है। गिरिजाकुमार माथुर तथा भारतीमें प्रकृतिका रागात्मक मनोभाव अधिक है उस ओर अधिक

रूपोंकी नव स्थितिमें प्रकृतिका महत्त्व उनमें मिल सकता है ('धूप हेमन्तकी' माथुर 'फागुनकी घाम बसन्ती दिन' भारती)। परन्तु युगके सन्दर्भमें कविता अधिकाधिक यथार्थ दृष्टि ली है और यह भाव प्रकृति-सौन्दर्यकी मायाके बीच भी कवि व्यक्त करता है

आज इस क्षण में
दूर से मुझको और दुपहर से तुमको
अविकल और भी पास दिया
शायद यहाँ तिल तिल कर रुकना रह जायगा
साँझ हुए हंसों-सी दुपहर पाँखें फैला
पासके कादर का धामों में उड़ जायगी

[भारती 'नवम्बरकी दोपहर' सात गीत-वर्ष]

ऐसा नहीं कि यह भाव नयी कवितासे पूर्णत बहिष्कृत हो गया है प्रकृतिके रूप-सौन्दर्यसम्बन्धी प्रभाव-चित्रों तथा बिम्ब-विधानोंमें यह मनोभाव तथा सौन्दर्यभावना आरोप बिखरे हुए तथा केवल प्रभाव रूपमें अंकित होता है। स्वयं भारतीकी इधरकी प्रकृतिसम्बन्धी कविताओंमें यही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। 'सागरके किनारे' कवि उसके धूम्र-कोहरेमें सिमटती हुई नीली धूपकी परियोंको झिलमिलाती मायाकी सी विभ्रममयी रंगरश्मियाँ देखता है, उसके उसके मनमें सौन्दर्य-समाधानकी एक निष्काम स्मृति जगमगाहट जैसे स्वप्नके बादकी अनुभूति भर रह जाती है। और वस्तुतः कल (आगम) उसके मनके रूपमें कविकी नव स्थिति

कल य झिलमिलाती लहरें चंदन-सी जागेंगी
जब इनके गुम्फित चरणों की चरणगत तरुणी में
मुसकायेंगी छिपी प्रम लीलाएँ।

[कुँवरनारायण 'सागरके किनारे' चक्रव्यूह]

भावुक कवि भावना और मस्तिष्कके साथ जो उपक्रम करता है उसीको प्रणोदित बनाता है अतः उसकी सौन्दर्यकी दृष्टि तथा प्रेमकी भावना इतने विस्तृत सन्दर्भमें साथ प्रस्तुत होती है कि उसमें रोमैण्टिक व्यक्तिगत सीमाओंका अतिक्रमण हो जाना सहज है। इसके साथ ही सब स्थितियोंके बदलने स्थिति साथ एक ही भावकी अभिव्यक्ति नहीं बनी रह पाती अनेक भाव और संवेदनाएँ एक दूसरेसे उलझ जाती हैं। यही कारण है कि व्यक्तित्वका समर्पणमें यह प्रेम और सौन्दर्य भिन्न स्तर ग्रहण कर लेता है अभिव्यक्तिको उत्पन्न करनेकी आकांक्षामें उसकी सारी व्यंजना बदल जाती है

ओ सुमे !
यह मत्त
जिसमें यह तुम्हारा सारा सहसा झरझर
मन का भार है
गहरा बना है
और सुमकी साँस का।
यह तुम्हारा छलछलाता, प्रखर जिसका प्यार
और मेरा हुआ जान का रमणीय ज्वार !
[विजयदेवनारायण साही ... ...]

भावुक कवि प्रकृतिका (इसी प्रकार किसी भी स्थितिका) वर्णन नहीं करता और न उसमें अपनी ही अनुभूतियोंका अभिव्यक्त करता है। पर कैसर जीवन अथवा मानव मस्तिष्कके प्रभावमें प्रत्यक्ष अनुभूत राग की संवेदनाको प्रत्यक्षित बनानेका प्रयत्न करता है। इसी कारण वह चित्रण न करके प्रभाव-बिम्बों और बिम्ब-विचारोंका सृजन करता है जिसमें उसकी संवेदनाएँ साथ आत्मदर्शन स्पष्ट हो जाती हैं। इसमें चित्रणकी सीमा बहुत विस्तृत है। वहाँ प्रकृतिका पर अंकन दूसरे-विषयके साथ प्रस्तुत करता

है। इसमें आत्मकथन अथवा नव उपमानोंकी योजना नहीं। कल्पनाचित्र प्रस्तुत करती है :

तारों के जाल
बन गयीं लहर-सी
कहीं हूर तक कर्मठ पुरुष
बन सीमन्त का मेड़ बैठे।

['अज्ञेय' 'मलाबारका एक दृश्य' 'बावरा अहेरी']

कभी इसी प्रकारके सहज दृश्य-विधानमें कवि मानसिक संवेदनकी गहराई को एक स्पर्श भी देता है :

मन्दन की वह क्षीण परछाईं
छू गया हर एक रंग का कण।

[जगदीश गुप्त 'मन्दनकी परछाईं' 'नाव के पाँव']

परन्तु नयी कविताकी सीमित प्रवृत्तिमें दृश्यविधान एक ओर वस्तुनिष्ठ रूपरेखाओंमें उपस्थित होता है और दूसरी ओर उसीके साथ भावात्मक संवेदनकी कम स्थितियाँ भी व्यंजित होती हैं। निश्चयतः वातावरण भी कवितामें प्रभावको गहरा बना रहती है और अन्यतः जीवनकी सहज व्यंजना भी अन्तर्निहित हो जाती है :

दूर यमुना पार—
आ कर
रिमझिमाती बत्तियों में
मिल गया वह ज्योति-आलोक—
—भभा कुछ हो उठा प्रथम बार
अनुभव दिखला गयी थी।

[श्यामसुन्दर श्रीवास्तव 'दूर यमुना पार' 'नयी कविता १']

कभी कवि चित्र और भाव स्थितिको एक बिम्बके रूपमें प्रस्तुत

करता है। विभावनकी शैलीमें वर्ण्य-विषय कविके लिए कितना ही व्यक्ति-गत होनेपर भी उसका स्वतन्त्र अस्तित्वके अंगके रूपमें नहीं रहता है साथ ही उसमें दृष्टि वस्तुनिष्ठ होकर भी असम्पृक्त नहीं हो पाती है। इसके विपरीत नयी कविताकी प्रभावशील बिम्बशैलीमें दृश्य और कविकी चेतना एक ही स्तरपर संवेदनके एक ही बिम्बमें अन्तर्भुक्त हो जाते हैं

सहस जलधि की लहर में
आलोक का आघात
माला मोर का संकेत
मेरी यह हँसी भी है नहीं
उस सुख की परछाइयों की धूम—

[श्रीराम वर्मा 'आलोकका आघात' नयी कविता १]

रूप-भाव तथा मन स्थितियोंका यह बिम्ब एक ही अनुभूतिके धरातलको प्रकाशित करता है। कभी इस प्रकारके बिम्बोंमें रूपात्मक अंकनसे पूर्णता रहती है और सहज जीवनकी व्यंजना उसमें अवैयक्तिक रूपमें सन्निहित रहती है अवैयक्तिक इसलिए कि कवि स्वयं उपभोक्ता रूपमें प्रस्तुत न होकर अपनी अनुभूत उपलब्धिको असम्पृक्त भावसे प्रेषणीय बनाता है। सर्वेश्वरकी 'भोर' नामक कवितामें ऐसा बिम्ब-चित्र है जिसमें कवि उस कोमल भावको अन्तर्निहित कर देता है जिसे उसने अनुभूत किया है जिसने उसे छुआ है

धरती पर
नदियों के जल में
गिरि तरु के शिखरों से ढर-ढर कर
सब सेंदुर फैल गया।

[सर्वेश्वरदयाल नयी कविता २]

इस प्रकार रूपात्मक बिम्बमें भी कवि केवल वस्तु-विधान नहीं करता

वरन् अपने-आपको कहीं किसी स्थानपर व्यक्त करना चाहता है। सरस उपमानोंके स्थानपर जब अपरिचित उपमान या रूपक प्रयुक्त होते हैं तो बिम्ब अपने वैशिष्ट्यमें अधिक व्यंग्यपूर्ण हो जाता है (लक्ष्मीकान्त वर्मा धूलकी लकीरें)। कभी जीवनका व्यापक सन्दर्भ आ जानेसे बिम्ब-विधान सहजताकी अधिक गहराई और अर्थकी व्यंजना आ जाती है

छितर आ हुआ उस डूँगर पार
धी-धी कर गोल बना
सर-सी पड़
पश्चिम में उड़ा रंगरलियाँ
क्योंकि सहना सहा नहीं"

[नरेश मेहता 'यही नहीं' वनपाखी सुनो]

इस दृश्य-विधानमें भावात्मक बिम्बके साथ विशेष अर्थकी व्यंजना भी है। 'अज्ञेय की 'भूर्धोत्स' तथा 'दूर्वाचल' नामक कविताओंमें प्रकृति साथ कविकी भावात्मक उपलब्धिका समन्वित बिम्बांकन है

पार्श्व गिरि का नम्र चीड़ों में
डगर चढ़ती उमंगों-सी।
बिछी पैरों में नदी ज्यों दर्द की रेखा।
विहग-शिशु मौन नीड़ों में
मैंने आँख भर देखा।

['दूर्वाचल' इन्द्रधनु रौंदे हुए ये]

यहाँ कविता 'आँख भर देखना मात्र' प्रकृति-दृश्यको आत्मसात् करना है और दृश्यके साथ प्रकृति चेतना कुछ क्षणोंके लिए अभिन्न हो गया हो जैसे। पर आजका कवि न प्रकृतिके साथ तादात्म्य कर पाता है और न उसके सौन्दर्यका उपभोग ही करता है क्योंकि उसके अभिभूत करने वाले सौन्दर्यके सम्मुख कविता बन्धा-सूत्र मनकी तरंगित स्थितियोंके

की स्थितिमें निहितकर रहना होता है—नहीं तो फिर आना नहीं होगा। कवि नयी प्रकृतिक मानस तथा आत्मीय बिम्ब-चित्र प्रस्तुत कर अपनी अनुभूतिके भावात्मक अभिभूत जान पड़ता है जो उसकी मनःस्थिति परम प्रकृति बिम्ब समाहित भी कहीं प्रत्यक्ष व्यक्त हो जाती है

कामना,
कुछ व्यथा
भावों का मुखरता क्रम
चंचल कल्पना
यह राग और व्यथाएँ
(दुर्गानारायण 'मास-महार्ग' गान बालगुरु]

यहाँ प्रारम्भिक बिम्बोंकी प्रवृत्ति निरपेक्ष जान पड़ती है पर अन्तमें कविकी मनःस्थितिकी व्यंजनाके साथ बिम्बमें उसी भावनाको प्रतिपादित कर दिया है। कुछ बिम्ब-चित्रोंमें कल्पनाकी इतनी पूर्णता और चित्र (उपमान योजना) का इतना सन्तुलित निर्वाह मिलता है कि वे अलग अलग सुन्दर होकर भी आकार प्रभाववादी बिम्ब विधानमें अलग पड़ जाते हैं। (सर्वेश्वर गुप्त 'सिन्दूरी सवेरा' गाँवके पास)। अनेक बार प्रथा आत्मपरक बिम्ब-योजनामें चित्र वर्णोंके स्वतन्त्र प्रयास बदलती हुई मन स्थितियाँ नयी प्रकारकी उपमान-योजनाके कारण वैचित्र्यका आभास जान पड़ता है। वैचित्र्य वैचित्र्यके लिए मानकर चित्रात्मकता कभी नये प्रयोगवादी कवियोंमें नहीं है। पर अधिकतर नयी कविताकी प्रवृत्ति यह है यह वैचित्र्यका आभास कविकी अपनी स्थितिके कारण है। इस वैचित्र्यके माध्यम कवि अपनी मनःस्थितिकी उलझन युग-जीवनकी विषमता तथा अपनी वैयक्तिक अनुभूतिको व्यक्त करना चाहता है। (प्रभात 'निर्धनताकी नगरी' नयी कविता ३ गजानन्द 'आलोक वृन्दावन शैवाल चौक गुलेरी कहाँ है)।

आजकी नयी कवितामें कवि अपने मन और व्यक्तित्वको सारी उपलब्धिका माध्यम स्वीकार करता है। यही कारण है कि वस्तु तथा उसकी स्थितिसे अधिक कविके लिए अपनी उस मन स्थिति तथा अनुभूतिका महत्त्व है जिसके द्वारा वह उसको ग्रहण करता है। आजकी कवितामें अनुभूत क्षण इसी कारण अधिक प्रमुख है। कविका बिखरा हुआ अस्तित्व न जाने कितनी स्थितियाँ ग्रहण करता है और न जाने कितने अनुभव एक साथ करता रहता है इस कारण जब वह अपने माध्यम किसी अनुभूत क्षणको पकड़ना चाहता है उसे स्मरणीय बनाना चाहता है तब उसमें बाह्य दृश्य विस्तार तथा अस्पष्टताका लगना स्वाभाविक है। उसके वास्तविक भाव-बोधका ग्रहण करनेके लिए कविके अनुभवका किसी अंशमें पुन साक्षात् करना होगा। प्रकृतिके अतिरिक्त अनेक जीवन और जगत्की स्थितियोंके प्रति कवि इसी प्रभावशील ढंगसे संवेदित होता है और वस्तुस्थितियोंके असम्पृक्त बिम्बोंमें अपनी चेतनाके विषय-प्रवाहको संश्लिष्ट कर देता है। चतुर्दिक फैले हुए बाह्यमें कविका अस्तित्व व्याप्त कर उसके अनासक्त रूपमें अपने संवेदनकी स्थितियाँ भाव-बिम्बोंमें बिखेर देता है

झिलमिलाती धूप
ऊँघते बरगद की छाँह
समता का मरसिया गाती
सहर बो रहा है।

[श्याममोहन श्रीवास्तव 'एक बार' नयी कविता २]

इसी प्रकारके स्वर बिम्बोंके साथ कवि 'जाने सबसे भा रही है एक बार फिर मन स्थितिमें अगाध-सा अनुभव कर रहा है 'कुछ शान्ति कुछ अवसाद…… कुछ दुःख कुछ आह्लाद' या अजब-सी मिली-जुली भाव-स्थितियाँ जो केवल प्रदर्शित हो सकती हैं व्यक्त नहीं। फिर भी इस अंशमें दृश्य-सामग्री प्रधानता है पर अन्य स्थितियोंमें संवेदनकी स्थितियाँ प्रधान होकर बाह्यका अलग अस्तित्व आत्मसात् कर लेती है

बदल-बदल सामने यों तस्वीरें आती हैं,
अनजानी गन्ध एक मिट्टी से उठती है,
छाती है
जमती है
फटता है।

[नित्यानन्द तिवारी 'अजानी गन्ध' नयी कविता १]

अनेक बार वस्तुस्थितियोंके प्रभावशाली चित्रोंमें वैचित्र्यके माध्यमसे कवि जीवनके सन्दर्भमें कोई गहरी व्यंजना समाहित करता है (ऐसे चित्रण शमशेरबहादुर सिंहकी कविताओंमें विशेष रूपसे पाये जाते हैं) अथवा युगजीवनके प्रति व्यंग्य करता है (लक्ष्मीकान्तकी कविताओंमें ऐसा अधिक है जैसा एक इम्प्रेशन पुर्जोंकी लकीरें)

आजके कविके सामने महत्त्वपूर्ण प्रश्न अनुभूतिकी प्रक्रियाका है। जैसा कहा गया है नये कविके लिए अनुभूति और अभिव्यक्तिकी सारी प्रक्रिया आत्मान्वेषणके रूपमें गृहीत है। समग्र यथार्थको ग्रहण करनेमें कविके व्यक्तित्वकी सीमा सामने आती है क्योंकि अनुभूत सत्य विराट् है। पर कवि अपने आत्मके तादात्म्य सत्यको किसी महत्त्वपूर्ण क्षण उपलब्ध करनेका विश्वासी है

चाहे भी तो कब तक छाती में दबाय
वह आग मैं रहूँगा ?
आज तुम शब्द न दो न दो
कल भी मैं कहूँगा।

['अज्ञेय' 'आज तुम शब्द न दो' बावरा अहेरी]

यह उभरा आत्म-सत्य अनुभवके विस्तारमें जगकी सर्वचेतनामें बँधा रहकर भी उभरा नहीं रह गया है उसको व्यापक सन्दर्भ मिल गया है। इस स्थितिमें यथार्थ भी कठिनाई है क्योंकि वे सीमित हैं और कुछ अब हैं

जो शब्दातीत है। आन्तरिक अनुभूतिकी व्यथा पूरी तरह व्यक्त नहीं हो पाती ('अज्ञेय' 'जो कहा नहीं गया' बावरा अहेरी)। आजके कविके लिए भाषा भी एक बाधा है भाषा अनुभवकी एकात्मकतामें अवरोध उत्पन्न करती है, उसके और उसके अनुभूत विषयमें जो मौन अर्थवत्ता है उसको भाषा अभिव्यक्त करनेमें असमर्थ है। इसी कारण कवि पहले भाषाको वस्तुके समान तोड़-फोड़ डालनेका आग्रह प्रकट करता है पर अपने आपको व्यक्त करनेका अन्य कोई माध्यम भी क्या है? अत बच्चोंके समान उसी भाषाको उस फिर जमाना-संजोना पड़ता है। वह आत्मचेतनामें व्याप्त बाह्यका अनुभूत कर अपने ही अस्तित्वके नये अर्थोंका प्रकाशित करता है। वस्तुतः आजकी कविताका पाठक-श्रोता स्वयं कवि है कविताके माध्यमसे वह कविके अनुभूतको ग्रहण करता है

> तुम्हें मालूम होगा यह जान कर
> कि कवि तुम हो""
> और मैं केवल कुछ निरर्थक शब्दों का एक नया समावेश
> तुम्हारी कल्पना के आसपास मँडराता हुआ
> जीवन की सम्भावनाओं का एक दृढ़ संकेत""
>
> [कुँवरनारायण 'माध्यम']

अभिव्यक्तिकी कठिनाईके विषयमें कवि स्वयं सचेत है (जगदीश गुप्त 'अभिव्यक्तिका संकट' नावके पाँव)। कविकी 'आस्था' क्षणिक स्वप्न दरकती है या अपने-आपको अपना-आरम्भ खोजता है और यह वस्तु न अब साक्षात्कार-जैसी स्थिति है (गिरिजा 'आस्था' धूपकी लहरें) वस्तु-सत्यसे भाव-सत्यको महत्त्व देनेकी बात है। वस्तुतः यथार्थकी दृष्टिसे छोटी स्थिति जीवनका पूरा सच बँटा हुआ है और उसका मानवीय स्थिति उसके अनुभवसे ग्रहण किया जा सकता है (कुँवरनारायण 'चीज़ें न बाजोंमें चक्रव्यूह')।

अपने-आपको अभिव्यक्त करनेकी विकलता आजकी कविताकी विशेष मन स्थिति है। कवि अपने अस्तित्वके अंशको अभिव्यक्ति देना चाहता है और सृजनकी प्रक्रियामें वेदना तथा विकलताकी स्थिति सहज है

धरती के अनादि चिन्तन में
एक मधु अनुताप —
इस उजाड़ का एक विकलता
मुझको भी ज्ञात हो।

[कुँवरनारायण 'मिट्टीके सम्बन्ध' चक्रव्यूह]

सृजनकी पीड़ा बिना स्वीकार किये आत्मास्तित्वकी अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। कविता यह (स्वीकार) सत्यकी तलाश वेदनाको आत्मसात् करनेका जन्मजात संस्कार लेकर उत्पन्न हुआ है और अभिव्यक्तिकी पीड़ा उसीका अंकुर है (भरत भूषण प्रायः असम्भव सा)। वस्तुतः अनुभूतिको अभिव्यक्ति देनेका प्रश्न कविके लिए सत्यका प्रश्न है क्योंकि उसमें 'किसी सम्पूर्ण सत्य या विश्वास' यह अपने सम्पूर्ण सत्य (अपने सारे अभावों) को व्यक्त करना चाहता है या अपने-आपमें सृजनकी समग्र प्रक्रिया है (कुँवरनारायण 'अभिव्यक्तिका प्रश्न' भूमिका)। और कविकी यह अभिव्यक्ति पूर्णतः अपने-आपको दे डालनेका संकल्प है (जो कवि दे नहीं पाता है) जबतक अपनेको व्यक्त नहीं कर सका है तभी बेचैनी उसे सताती है। अपनेको निःशेष दे डालना ही सच्ची अभिव्यक्ति है जिसमें वह अपनी 'पराजयको भी समर्थ दे' सकेगा (जब एक दिन सब ध्वस्त होते हुए थे)। आजका कवि प्रयोगकी अपेक्षा कभी-कभी आत्म-उपलब्धिको महत्त्व देता है क्योंकि उसकी अनुभूतिमें संश्लिष्ट वेदना उस जीवनकी दृष्टि देती है। अपनी आन्तरिक सच्चाईकी अभिव्यक्तिमें कवि किसी बड़े और व्यापक सत्यको पाना चाहता है

शायद कल
मेरी आत्मा का निष्प्राण देवता
अपने चक्षु खोल दे।
शायद कल
मेरे गूँगे स्वरों के सहारे
कोटि-कोटि कण्ठों को वाणी शक्ति बाँट दे।

[सर्वेश्वर : 'काठकी घण्टियाँ']

आजका कवि अपनी अभिव्यक्तिके प्रति पूर्ण ईमानदार है। एक ओर वह अपनी यथार्थ दृष्टिको रुद्ध नहीं होने देता, दूसरी ओर युगसामयिकताके दायित्वके प्रति पूर्ण सजग है। इसके साथ ही वह अपनी सामाजिकताके प्रति भी जागरूक है। सागरका सत्य असमापनीय है, असीम मर्यादा तथा आत्माकी व्याप्ति। फिर जितना तुम्हारा सच है उतना ही कहो, अपने सम्पर्क अनुकूल आचरण करो :

तुम नहीं व्याप सकते, तुममें जो व्यापा है
उसीको निबाहो।

[अज्ञेय : 'जितना तुम्हारा सच है']

इस सत्यकी अभिव्यक्ति अपने व्यक्तित्व तथा वास्तविक यथार्थता द्वारा ही की जा सकती है और इस सौन्दर्य-सृजनकी प्रक्रियामें अभ्यन्तर सम्यक् अनुभूत रचित स्वीकार किया है ('मजर' : 'टेसम पीधम वार स्वप्न गीत हुए थे)। असमर्थ सत्य विस्तारमें समझना कभी ही आता है। यह रूप अपनी उत्तेजित सत्ता नहीं होता। पर समस्या यह है अभिव्यक्तिकी प्रक्रियाकी सत्तामें आता है— कल्पना होने एक सत्ताअन्यका पतने ('मजर' : 'गजनार राग')। अवश्य बहुत साधारण वह अनुभूति तथा उत्तेजना रूप आता है पर उसके लिए कवि अपनेको प्रस्तुत पाता है।

मैं प्रस्तुत हूँ
इन कई दिनोंके चिन्तन को सफल पाए
यह क्षण आ अब आ पाया है
उसमें बँध कर मैं प्रस्तुत हूँ
तुमसे सब कुछ कह देने को।

[कीर्ति चौधरी 'मैं प्रस्तुत हूँ' नयी कविता १]

और इस अनुभूत क्षणोंकी काव्योपलब्धि सजन प्रक्रियाके साथ सन्निहित है। कवि अपने सजनकी स्थितिमें इस रसबोधको प्राप्त करता है और जब वह अपनी कृतिमें उस अभिव्यक्त कर उससे अलग असम्पृक्त हो जाता है तब 'फूल झरीपर हाथ सबसे कोई धिर जाता है'। उसी रस बोधको पाठक ग्रहण करता है ('अज्ञेय' 'आगेन्द' इत्यलम् शीर्षक हुए)। अभिव्यक्तिकी सारी पीड़ा सहनेके बाद और पाना सहनेके बाद सार्थकता (अंकुर फूटना) का आनन्द ही और होता है

किन्तु जब मेरी छाती फोड़ कर अंकुर नव फूटेगा
धार मनका गन्ध-भरा आरथा म बिखरेगा
तब—उस चरमात क्षण में—

['अज्ञेय' 'मर और धन' इत्यलम् शीर्षक हुए थे]

परन्तु यह उपलब्ध रस (अनुभूति) अभिव्यक्तिके अभावमें नष्ट हो जाता है— तो यह पन्ना भी अर्थहीन ही मर जायगा! (सर्वेश्वर 'पन्ना' 'काठकी घंटियाँ')। सारे अनुभूतियोंको ग्रहण करना कलाके लिए पर्याप्त नहीं है अपने संस्कारोंसे ऊपर उठकर यथार्थको व्यक्त करनेमें ही उसकी सार्थकता है— सारा यह भर पाना सार्थक होता महा मानवको! (लक्ष्मीकान्त 'स्वर' पुरोकी लहरें)। कविके सजग संवेदनशील पीड़ा नहीं बल्कि आस्था और उसका पावन विश्वास उसके कविता-मनमें ऊपर है वह पुरुष भी ऊपर है वह सारा मानवकी

जाती है। अब उसको वह शब्दोंके माध्यमसे पूर्णतः व्यक्त नहीं कर पाता। मूल कृति उसकी नहीं जाती है, शेष अभिव्यक्ति तो केवल उसकी अनुकृतिमात्र है—

अनजाना है वह — नया सूर्य उगा सा है
नव आलोक भरी सृष्टि, नव स्वप्न देती है
वह मेरी कृति है
पर मैं उसकी अनुकृति हूँ,
तुम उसको मत वाणी दो।

[सर्वेश्वर : नयी कविता २]

आजका कवि अपनी अभिव्यक्तिके नव माध्यमके प्रति सचेष्ट है। अभिव्यक्तिकी कठिनाईके सम्बन्धमें शब्दोंकी सीमा और भाषाकी बाधाका उल्लेख किया गया है। प्रयोगशीलताका भी यह आग्रह था कि नव युगके सम्भ्रम भाव-बोधकी नयी स्थितियोंमें भाषा और शैलीका परम्परागत प्राप्त प्रयोग असमर्थ सिद्ध होगा। अनुभूतिकी अपनी हुई स्थितियोंको व्यक्त करनेके लिए नये शब्द-विधान और नव शिल्पकी आवश्यकता है। कविके शब्द विद्रोह करते हैं, आजकलमें व अब उनकी ... अनिश्च होकर उसका अभिव्यक्त करनेके लिए ही विद्रोह करते हैं। भाव, शब्द और कविता व्यक्तिगत अभिन्न हो गया है—

“कलम न है हमें सिर्फ कलम ही हक में
बरतना बन्द करो हमको अब दवातों का नहीं
मिसालों का छन्द करो हमें दिखाओ प्रेम दिमाग
दिखाना है बाँधों का दर कर मापना पड़ता मुझे
सपनों की तरह तरह परियों की तमाशों की
भाषा अब मैं और मेरे शब्द अलग-अलग
नहीं हैं एक हैं।”

[भवानीप्रसाद मिश्र : 'कलमके सत्य' : नयी कविता २]

पुराने छन्द उपमानों, रूपकों तथा भाषा-शैलीको लेकर कवि उदास होता है क्योंकि उनके मध्य उगते हुए भाव-सत्यको उनमें अभिव्यक्ति नहीं मिल सकेगी। पर कविकी अपनी ही सृजन-प्रक्रिया नये सन्दर्भोंको ग्रहण कर अभिव्यक्तिका माध्यम ढूँढ़ लेगी

ठहरो! ठहरो! ठहरो! ठहरो। हम आते हैं
हम नयी चेतना के बढ़ते अविराम चरण!
हम मिट्टी की अपराजित गतिमय सन्तानें
हम पामकाओं से मुक्त करेंगे कवि का मन!
[भारती 'कवि और अनजान पगध्वनियाँ' ठण्डा लोहा]

पर नया सत्य ही आजकी कविताके शब्दोंकी पुकार है। कवि भारती आन्तरिक अभिव्यक्तिकी शक्तिसे सम्भावना नया अर्थ नया भाव-बोध दे सकता (दुष्यन्त शब्दोंकी पुकार सूर्यका स्वागत)। इस अनुभूतिका नया रूप और नया रंग लेकर फिर शब्दके पर्याप्ति-क्रम (नरेश) अपेक्षित है। (जगदीश गुप्त 'पर्याप्ति-क्रम' नाव के पाँव)। गत्यात्मक युगके विघटित मूल्यों तथा मर्यादाओंके बीच नयी सम्भावनाओंकी भूमिका पर आसीन होते कविको फिर नयी सौन्दर्य-दृष्टि मिलना है

बाहर नहीं है दुनिया
मैं फिर कहता हूँ—
सहज समझ
सौन्दर्यबोध बढ़ गया है।
[सर्वेश्वर सौन्दर्य-बोध नयी कविता ३]

अन्य सम्बन्धित एवं व्यक्ति-चित्रोंकी भूमिकामें भी सौन्दर्यबोध कविको यथार्थ का दर्शन करता रहा है। आजके कवि इस युग-सम्भव बोध को अभिव्यक्ति भी प्रदान करने की दृष्टि की है जो सामान्यतः परम्परासे भिन्न है। पर नया रस कविकी आन्तरिक प्रक्रियामें व्यक्तिगत होता है

(भारती)। काव्यने परम्पराको मान लिया है और आज उसने बिलकुल भिन्न दायित्व स्वीकार किया है। पहले काव्य आनन्द अथवा रसास्वादनके लिए रचा जाता था पर आज वह युग-जीवनकी समस्त पीड़ा तथा कुण्ठाका वहन कर मानव भविष्यका पथ प्रशस्त करनेका माध्यम हो गया है

ऐसा किसी अनागत पथ का
पावन माध्यम भर है मेरी
आकुल प्रतिभा अर्पित रसना
गैरिक वसना।

[भारती 'मेरी वाणी' नयी कविता १]

आजका कवि प्रकाशके बजाय छायाग्रस्त बात कहनेको अधिक पसन्द करने लगा है इस प्रकार उसकी परम्परा नयी है (विपिन 'मास्टर प्लान पत्तियाँ और अभिमान')। वह वस्तुनिष्ठ सहज जीवनको काव्यका विषय और उपकरण मानता है इसीलिए परम्परावादीपर वह व्यंग्य करता है 'श्याम सुमन हुए केलेके बड़े-बड़े पात्र और 'मोटे मारवाड़ बिजली पैर, गोल-मोल गात्र' अपने चित्र बनानेके लिए सुन्दर हैं

और आसन भरे पत्थर में हम
बुद्ध के सपनों चित्र
हम बड़ी आस्था के साथ
बनाते रहे बनाते रहे!

[विपिन 'आस्था' धूल की लकीरें]

युगके यथार्थसे विच्छिन्न कलाकारपर यह गहरा व्यंग्य है।

आजके काव्यमें केवल प्राचीन मूल्यों और मर्यादाओंका विघटन ही नहीं हुआ है वरन् नये मूल्यों और मर्यादाओंका नये सिरेसे अन्वेषण

प्रतिमाओंमें उपलब्ध भी किया है। कुछ मूल्योंकी चर्चा प्रासंगिक रूपसे विवेचनमें भी आ गयी है पर अन्तमें नयी कविताओंमें विकसित होनेवाले मूल्योंकी ओर संकेत करना आवश्यक है। आजका कवि असाम्प्रदायिक मानव-धर्ममें विश्वास करता है, उसके लिए वेद और जातिसे ऊपर इस मनुष्यकी स्थिति है। जीवनकी स्वीकृति उसके प्रति आस्था और विश्वास नयी कविताकी व्यापक भावना है। जीवनमें जीनेका मधुर आग्रह लेकर कवि कहता है

अभी तो सुख जीने का प्रलोभन
दुःख से भी सुख लेने का निमन्त्रण
फिर कभी क्या मिल सकेगा ज़िन्दगी में
ज़िन्दगी से भी बड़ा कुछ ?

[कुँवरनारायण 'कुछ नहीं बाकी रहेगी' चक्रव्यूह]

अपनी मृत्युसे जूझनेवाला कवि भी जीवनकी सम्पन्नताको आग्रहपूर्वक धारण किये हुए है पर यह ममत्व मोहसे भिन्न जिन्दगीके लिए लड़नेकी सबल चुनौती है

मृत्युभय मत कर न तुम्हें झकझोरा मैंने
विजयध्वज बन उभरा था विद्रोह !

[भूपप्रताप 'अपराजित' आस्था]

यौवनकी यह स्वीकृति मनुष्यका बड़ा दायित्व है जो उसके समूचे परिवेशमें मानव-सम्पदाको गति प्रदान करता है।

मार्क्सवादी विभिन्न भावभूमियर मूल्योंकी स्थापना प्रगति मर्यादाओंको तोड़कर नयेके स्वागतके माध्यमसे हो जायेगी। यह नयता व्यापक 'नयी गीतिका गीत' (सुन्दरम्) है जिसके द्वारा कवि समस्त नये विकसित होते मूल्योंका जयघोष करता है। युग-जगत्की आत्मघात् वरन का अन्त और सबको नियामक धारण करनेकी निष्ठा आजके कवित

है (दुष्यन्त अमरान्वेषी स्वामसाहन संकल्प)। आजका कवि मानव मुक्तिका आग्रही भी है। विगत युगोंमें उसके व्यक्तित्वपर संकट रहा है वह नियतिके हाथोंमें खिलौना रहा है। पर आज वह बन्धनोंको तोड़कर मुक्त होना चाहता है। जो अपनी शक्तिसे दूसरोंका आक्रमण करना चाहते हैं वे ही इस मानव-व्यक्तित्वकी स्वतन्त्रतासे भयभीत हो रहे हैं ('अज्ञेय' 'परिचयके समूह-स्वर' इन्द्रधनु० भारती 'गुलाम बनाने वाले')। मानवके पूर्ण विकासके लिए उसे मुक्तिका हक मिलना ही चाहिए, अन्यथा वह कुण्ठित हो जायेगा। यह हक मानवके विकासकी परम्पराको अग्रसर करनेके लिए चाहिए

मारी का हक हो—वह नीड़ भरता पूरे अनुमान
हम मेड़ों से भ भर डग मेड़ों तक आप
और कभी हार
(यदि हार)
तब भी उसके माथ पर छिटके
और दिखे
और उसकी ही जान—
यह दूब की पताका—
नये मानव के लिए !

[केदारनाथ सिंह 'फूलकी हक दो' नयी कविता २]

वास्तवमें यह मुक्ति व्यक्तिकी नहीं वरन् व्यक्तित्वकी है। इस स्वतन्त्रतामें मानव सहज मानव अथवा लघु मानवको पूर्ण उपलब्धिका अवसर मिल सकेगा। अबतक मनुष्यकी स्वतन्त्रताके नामपर धन, दम, राज्यकी सामूहिक शक्ति अथवा शक्तिमान् नेता मानव-व्यक्तित्वको शासित और नियन्त्रित करते रहे हैं। पर आजका कवि सहज मानव (लघु मानव) की स्थापना करना चाहता है जो अपनी पूर्ण उपलब्धिमें मर्यादित ही सार्थक रहता है

वह स्वयं उसी प्रकार स्वतन्त्र रहना चाहता है और दूसरोंको मुक्त करनेमें अपनी स्वतन्त्रताकी सार्थकता मानता है। (देखिए 'वनवासमें बनवासी सुनो विपिन' 'अब हुआ बसी पूर्वकी सवारी')। इस पथपर वह सत्यकी निष्ठा और आग्रहके साथ आगे बढ़नेके लिए कृतसंकल्प है

> आकांक्षा का मधुर बुलावा
> संशय का तम
> करे न भ्रामक
> बढ़ देता विवेक जिसको
> बुद्धिमत्ता कहीं कर न आहत
> सच का आग्रह
> निष्ठा की टेक
> पगपग के विराम का खटका जिसको रहा न पाथ।

['अज्ञेय' 'देता जीवन' इन्द्रधनु रौंदे हुए ये]

आधुनिकताके सन्दर्भमें आजकी कवितामें विभिन्न मूल्योंमें मानव स्वाभिमान तथा मर्यादाकी रक्षा प्रमुख मूल्योंमें है। अतः सम्बन्धी विवेचनमें यह स्पष्ट किया गया है कि आजकी कवितामें मानव-व्यक्तित्वकी स्थापनाका आग्रह है और यह स्थापित होती मानव-मर्यादाकी पुनः स्थापना ही है। मानव जब अपने लघु परिवेशमें मुक्त हो सकता तभी उसके स्वाभिमानकी रक्षा भी हो सकेगी। बुद्धिके साथ विवेकका प्रश्न भी सम्मिलित है। मानव-नियतिका निर्णायक युगोंसे मनुष्यके बाहरकी अलग आध्यात्मिक अथवा सामाजिक शक्तियाँ रही हैं पर आजका मानव अपनी नियतिका दायित्व स्वयं विवेकपर लेना चाहता है। इसके साथ आस्थाका प्रश्न भी सम्मिलित है क्योंकि मानव अविश्वसनीय किसी विश्वासको लेकर ही मनुष्य साथ चल सकता। आजकी औद्योगिक सभ्यतामें मनुष्यके हाथसे सभी विश्वास आस्थाका सम्बल छूट गया है इसी कारण वह भटक गया है। यदि

मानव भविष्यकी पुनःस्थापना करता है तो उसे उसके प्रति पुनः आस्था व्यक्त करना होगा। कवि इस विश्वासको प्रकट करता है कि हमारा मार्ग भले कितना ही धुँधला हो पर विवेक साथ देगा और यदि हमारी आस्था में कोप तो हमारा पथ प्रशस्त है ('मनप 'पुमडनक धार ...नु०)। भारतीका 'अन्धा युग' गाथामें पौराणिक पुराण-कथाके माध्यमसे मानव-मर्यादा तथा विवेकके मूल्योंकी प्रतीकात्मक व्यंजना हुई है। वस्तुतः आजका कवि पिछले युगके भावुक स्वप्नोंके स्थानपर जीवनकी सहज उपलब्धियोंको ही प्रधान मानकर चलता है

तुम भी इस धरती में बस कर
गहरे घुन्नों से सपना भर
फूलों-सी फसल उगा लेना।
फसलें इसमें शूलों की
मधु सिंचित करके धरती गन्ध नहीं होगा
न सरस स्वप्न
यदि मधुर हुआ
तो सूरज उगने पर अपना पाँखुरी खोल कर हँस देना—

[विजयदेवनारायण साही : आये हैं अपने सपने नयी कविता २]

○

वह स्वयं उसी प्रकार स्वतन्त्र रहना चाहता है और दूसरोंको मुक्त करनेमें अपनी स्वतन्त्रताकी सार्थकता मानता है। (नरेश 'वनपाखी सुनो' : गिरिजा 'जब तुम चलो' : धुएँकी लकीरें)। इस पथपर वह सत्यकी निष्ठा और आग्रहके साथ आगे बढ़नेके लिए कृतसंकल्प है

आकांक्षा का मधुर कुहासा
संशय का तम
कर न आच्छन्न
वह धैर्य विवेक जिसका
दुश्चिन्ता कोई कर न आक्रान्त
सच का आग्रह
निष्ठा की दृढ़
सारे जग के विरोध का धक्का जिसको ढहा न पाये।

['अज्ञेय' : देखा जीवन : इन्द्रधनु रौंदे हुए ये]

आधुनिकताके सन्दर्भमें आजकी कवितामें विकसित मूल्योंमें मानव स्वाभिमान तथा मर्यादाकी रक्षा प्रमुख मूल्योंमें है। यहाँ सम्बन्धी विवेचनमें यह स्पष्ट किया गया है कि आजकी कवितामें मानव-व्यक्तित्वकी स्थापनाका आग्रह है और यह विश्वासित होगी मानव-मर्यादाकी पुनः स्थापना ही है। मानव जब अपने लघु परिवेशमें मुक्त हो सकेगा तभी उसके स्वाभिमानकी रक्षा भी हो सकेगी। भूमिका भाव विषयका प्रश्न भी सन्निहित है। मानव-नियतिका निर्णायक युगोंमें मनुष्यके बाहरकी अनेक आध्यात्मिक अथवा सामाजिक शक्तियाँ रही हैं पर आजका मानव अपनी नियतिका दायित्व अपने विवेकपर रखना चाहता है। इसीके साथ आस्थाका प्रश्न भी सम्मिलित है क्योंकि मानव-अविच्छिन्न किसी विश्वाससे लेकर ही मनुष्य आगे बढ़ सकता। आजकी संक्रान्तिमें मनुष्यके हाथसे यदि विश्वास आस्थाका दामन छूट गया है इसी कारण वह भटक गया है। यदि

मानव भविष्यकी पुन स्थापना करता है तो हम उसके प्रति पुनः आस्था वान् बनना होगा। कवि इस विश्वासको स्वीकार करता है कि हमारा आत्मका भाव कितना ही धुँधला हो पर विवेक साथ देता और यदि हमारी आस्था न डोले तो हमारा पथ प्रशस्त है ('अज्ञेय' 'धूमकेतु' साथ ...नु०)। भारतीकी 'प्रमथ्यु गाथा' में ग्रीक पुराण-कथाके माध्यमसे मानव-मर्यादा तथा विवेकके मूल्योंकी प्रतीकात्मक व्यंजना हुई है। वास्तव आत्मको यदि विछिन्न युगोंके मारक स्वरूपोंके स्थानपर जीवनकी सहज उपलब्धिको ही प्रधान मानकर चलता है

तुम भी इस घाटी में बस कर
नन्हे फूलों में मधुमा का
धरती-सी फसल उगा लेना।
बालक इनमें तूफानों का
मधु सिंचित करना बालों गन्ध नहीं होगा
न मरुस्थल स्वप्न
यदि चहुँ हुआ
तो सूरज उगता पर आभा पाँखुरी ...कर हँस दी—

[विजयदेवनारायण साही 'आज हैं अपना सपने' नयी कविता २]

नयी कविताका सामाजिक परिवेश

नयी कविताके सम्बन्धमें प्रचलित पूर्वाग्रहोंके बीच समीक्षाका दायित्व अत्यन्त कठिन जान पड़ता है। इस विषयमें विभाजित पूर्वाग्रहोंसे न केवल समीक्षात्मक दृष्टि धुँधली हुई है वरन् वातावरणमें तनाव भी पैदा हुआ है। ऐसी स्थितिमें समीक्षाका सन्तुलित आधार पा जाना बहुत सरल नहीं है। पर जिस क्षण मैं स्वीकार कर लेता हूँ कि आजकी कविताके सम्बन्धमें पक्ष-विपक्ष ग्रहण नहीं करता पूर्वाग्रहोंको स्वीकार नहीं करता उसी क्षण यह सारा कुहासा अपने-आप कट जाता है। लेकिन प्रारम्भमें ही मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि प्रत्येक युगमें जो कुछ कविताके नामपर लिखा गया है वह कविता नहीं सिद्ध हो सका और आज नयी कविताके नामसे जो कुछ लिखा जा रहा है या छप रहा है आगे 'नयी' विशेषण मिट जानेपर उसमें-से पता नहीं कितना कविता सिद्ध हो सकेगा यह भविष्य ही जाने।

सबसे बड़ा प्रश्न-चिह्न जो नयी कविताके विषयमें लगाया जाता है वह है उसकी असामाजिकता। कहा जाता है कि नयी कविता व्यक्ति-प्रधान है। उनका कहना है कि यह कविता अतिवैयक्तिक तथा असामाजिक है। इस धारणाके मूलमें यह भावना किसी-न-किसी रूपमें निहित है कि आजकी यह कविता योरोपमें पिछली शताब्दीके उत्तरार्द्धमें प्रारम्भ होकर द्वितीय महायुद्ध तक चलनेवाले विभिन्न वादोंसे प्रभाव ग्रहण करती है। प्रस्तुत इस पक्षपर पिछले लेखोंमें विस्तारसे विचार किया गया है। वस्तुतः नये कवियोंमें इस कोटिका असामाजिक व्यक्तिवादी कोई नहीं है जिस कोटिके कवि और कलाकार योरोपमें विभिन्न वादोंके अन्तर्गत हुए हैं। कुछ आलोचक योरोपकी पिछली परिस्थितिसे हमारे देशकी आजकी परिस्थितिकी समानता प्रतिपादित करनेकी कोशिश करते हैं

पर जो समानता परिलक्षित होती है वह वास्तविकसे अधिक आभास मात्र है। हमारे देशका ऐतिहासिक क्रम भिन्न परिस्थितियोंके बीचसे अग्रसर हुआ है और हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ भी अनेक दृष्टियोंसे भिन्न रही हैं। इसके अतिरिक्त योरोपकी पिछली समस्त भावधाराएँ यहाँ बादमें पहुँची हैं इस कारण इनका प्रभाव कम हो चुका है।

परन्तु यह भी सत्य है कि हमारे देशके जीवनमें एक बहुत बड़ा मोड़ इस नये युगमें उपस्थित हुआ है। प्रत्येक ऐसा संक्रान्ति-युग होता है जिसमें पुराने और नयेके बीच संघर्ष अनिवार्य हो उठता है। यह संघर्ष विध्वंसक लगता है पर इससे जीवन गुजरकर पुराना नयेका निर्माण करता है। पुरानी आस्था पुरानी मर्यादा और पुराना विश्वास नयी आस्था नयी मर्यादा और नये विश्वासको जन्म देता है। पहले युगका सांस्कृतिक ढाँचा विच्छिन्न होकर नये युगकी सांस्कृतिक उपलब्धियोंकी भूमिका तैयार करता है। क्योंकि इतिहास साक्षी है कि संसारकी प्रत्येक संस्कृति अपने चरम उत्कर्षके बाद पतनोन्मुखी होकर विशृंखल हो गयी है और अतीतकी संस्कृति कला साहित्य तथा दार्शनिक चिन्तन आगत युगको विरासतमें दे जाती है।

इस युगके नवागत विचारों तथा उत्पन्न हुए आदर्शोंकी पीठिकापर इस कालमें वस्तु-सत्य अथवा यथार्थकी ओर अनेक प्रवृत्तियाँ योरोप तथा इंग्लैण्डके शिल्प साम्यकी भिन्न भले हों आलम्ब नहीं। इस कालमें विचारोंका तीव्र आघात और संघर्ष भावोंका संतुलित समभाव अचेतन उपचेतन आदि मानसिक प्रभावोंका अन्तस् समान रूपमें मिल जाता है। इसी तरह इसमें नवीन अनुभूतियों मानसिक अन्तर्द्वन्द्व विचारात्मक गद्यों तथा यथार्थ सत्यका सामाजिक आन्तरिक पीड़ाको व्यक्त करता कि पुरानी संक्रमणशीलताके प्रति विद्रोह भी है। शायद इसका कारण देश के व्यापक जीवनका मोड़ है नवीन है जो पिछले युगकी विध्वंस पर नवीन युगका निर्माण कर रही है। इस संक्रान्ति युगमें निर्माणके सशक्त

अंकुरोंमें अधिक ध्वंसके अवशेष दिखाई पड़ते हों तो आश्चर्य क्या ! समस्त युग-चेतनाको संवेदित करके उसकी अभिव्यक्तिका क्रम देखनेवाले कविका दायित्व इस युगमें सबसे अधिक जटिल और असाध्य हो गया है। उसको इस युगके समस्त संघर्ष विषमता विशृंखलताका सामना ही होगा। यदि वह सब नहीं सहेगा तो युग उसमें संवेदित नहीं हो सकता। यह उसीका दुष्कर कर्तव्य है कि संक्रान्ति-कालीन संघर्ष और ध्वंसको छातीपर झेलकर नये युगकी आस्था और उसके विश्वासको जन्म दे। फिर इस बदलती हुई परिस्थितिके अनुकूल अपनी अभिव्यक्तिका माध्यम खोजना भी आजके कविके लिए अनिवार्य हो उठा है।

यहाँ अभिव्यंजनाके रूप और शैलीके प्रश्नको जान-बूझकर छोड़ा जा रहा है क्योंकि हमारे सामने मूल प्रश्न सामाजिकताका है। आजका कवि केवल अभिव्यक्तिके सौन्दर्य-मात्रको अपना सत्य स्वीकार नहीं करता। वह अधिक गम्भीर सामाजिक उत्तरदायित्वको मानकर चलता है। आजका कवि व्यक्तिवादको घोषित करके अपना नहीं सकता। पर स्वीकार करने अथवा न करनेसे समस्याका समाधान नहीं होता। प्रश्न है कि आजकी कवितामें कुण्ठा निराशा अवसाद आक्रोश कुरूपता अस्त व्यस्तता विशृंखलता आदिका कारण क्या है? इस स्थितिके दो प्रकारके निष्कर्ष सामान्यतः निकाले जाते हैं। कुछका कहना है कि यह सब पश्चिमकी नकल है आरोपित भावहीनता मात्र है। इन आलोचकोंकी सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि ये जितने पश्चिमकी रचनाओंसे अपरिचित हैं उतने ही नयी भावबोधताकी परम्परामें कच्चे भी हैं। दूसरोंका कहना है कि यह चार वैयक्तिक दृष्टिकोणका परिणाम है पलायनवादी मनोवृत्ति है। इन मतवादियोंके विचारमें सत्यका आभास अधिक है। और आभास इसलिए कि इन्होंने अपनी बात स्थापित करनेके लिए वर्तमान कविताका समग्र दृष्टिकोणका आधार ग्रहण किया है। सत्य इसलिए कि जिस मानस को कविताका इस कविताको अनुप्राणित मान लिया गया है वह चार

व्यक्तिवादी तथा पलायनवादी कविता था। जो नयी कवितामें केवल कुण्ठा निराशा तथा आस्थाहीनता आदि देखते हैं वे या तो इस कविताके सम्पूर्ण व्यापक भावको ग्रहण नहीं कर सके हैं अथवा जान-बूझकर किसी उद्देश्यसे स्वीकार नहीं करना चाहते हैं।

पहले ही इस बातका निर्देश किया गया है कि भारत पिछले युगसे जिस संक्रान्तिकी स्थितिसे गुजरता आ रहा है उसमें और यूरोपकी वर्तमान संक्रान्तिकी स्थितिमें अन्तर है। यूरोपमें १९वीं शतीके विज्ञान-वादसे उत्पन्न समस्या जितनी गम्भीर प्रश्नपूर्ण थी उतनी ही भयकारी थी साथ ही उसके मानववादका आधार भी निर्बल था। इसके विपरीत इस देशका मानस अपनी आस्था जिसके युगोंकी पर अमर आस्थाके प्रति गहरा विशुद्ध है। यहाँकी समस्या आस्थाहीनता है या हमारे देशका प्रश्न आस्थाओंके बदलनेका है। स्वतन्त्रतापूर्व इस देशका जीवन अपनी पिछली सांस्कृतिक मर्यादाओंमें जकड़कर बँध गया है। युग बदला जीवनधारा आगे बढ़ी पर ऊपर अभी उसके समान न मर्यादायें ज्योंकी-त्यों बनी रहीं। यद्यपि बाद १९वीं शतीके अन्तिम चरणमें आन्दोलनमें इतना स्पष्ट कि हमारे इन सांस्कृतिक मूल्यों और मर्यादाओंपर गहरी काई जम चुकी है उसकी सारी उलझन समझ आती रही है। फिर भी किसी भावावेश वाले अन्तर्गत हमारा विश्वास बना हुआ था कि इन आदर्श साथ मूल्यवान् निकट हैं। परन्तु पारे महापुरुष वाले ज्यों ज्यों इनका रूप जनता-संस्कारका रूप स्पष्ट होता गया उसीके साथ यह भी स्पष्ट होता गया कि कोई छूट जानेपर भी इन पुराने मूल्य-मर्यादाओंमें चमक नहीं रह गयी है। इस सब आगत समय इसका लेकर आज नया बड़ा जा सकता।

इस स्थितिमें हमको योरोपसे प्रेरणा और प्रकाश मिलनेकी सम्भावना हो सकती थी राष्ट्रीय आन्दोलनके दौरानमें देखने ऐसा किया भी था। और ऐसा नहीं है कि इस दिशामें प्रयत्न किया ही न गया हो। परन्तु दो कारणोंसे ऐसा सम्भव नहीं हो सका। पहला व्यापक जीवन-धाराका

प्रवाह दूसरी धाराओंके नियमसे शासित या नियन्त्रित नहीं हो सकता संस्कृति और मूल्यगत उपलब्धियोंकी क्रममें नहीं लगतीं वे जीवनके विकास-क्रममें अपने-आप स्थापित होती हैं। इसके अतिरिक्त योरोपकी सभ्यता और संस्कृतिकी चमक-दमकके अन्तरालमें स्वयं संघर्ष और विषमता पल रही थी जिसका विस्फोट द्वितीय महायुद्ध था। परिणाम स्वरूप यह युग अव्यवस्थाका युग है जिसमें समस्त सामाजिक धार्मिक राजनीतिक तथा आर्थिक मान्यताएँ झूठी पड़ गयी हैं। हम सत्य और आत्माकी चर्चा बहुत करते हैं और ऐसा जान पड़ता है कि हमारे पास इसका बहुत बड़ा भाण्डार है बहुत बड़ी परम्परा है। परन्तु समाजकी जड़ निष्क्रियताने इन समस्त आदर्शोंको खोखला बना डाला है। हम धर्मनिष्ठ हैं आदर्शवादी हैं मानवतावादी हैं पर सब कुछ होकर भी वह आन्तरिक निष्ठा का बल हममें नहीं है जो जीवन-धाराको अग्रसर करता है। यह समाज व्यापी कुण्ठा निराशा अवसाद तथा अन्ध आस्थाका परिणाम है कि हम इन सबके बावजूद व्यक्तिगत स्वार्थों बेईमानी घूसखोरी चोरबाजारी भ्रष्ट-सभ्यतासे अपनेको बचानेमें असमर्थ हैं। इस सामाजिक जड़तासे न नगर बचे हैं और न गाँव न शिक्षित और न अशिक्षित न उच्चवर्ग और न निम्नवर्ग ही। यहाँ ऐतिहासिक कारणोंकी विवेचना जान-बूझकर नहीं की गयी है केवल परिस्थितिका रूप-भर उपस्थित किया गया है।

आजकी इस सामाजिक परिस्थितिने कविको संवेदित किया है। वह इस सर्वग्राही जड़ता और कुण्ठाका अनुभव अपने जीवनमें कर रहा है। यह कुण्ठा पलायनवादी न होकर परिस्थिति-जन्य है। उसके मनका संघर्ष विषमता आक्रोश विशृंखलता सभी इस सामाजिक परिस्थितिका संवहन है। समाज जिस परिस्थितिमें अनायास पड़ा हुआ है, उसका अनुभव वह बहुत अस्पष्ट रूपसे कर पा रहा है। कवि उस परिस्थितिसे टकरा रहा है और यह संक्रान्तिकालीन स्थितिका स्वस्थ लक्षण है। नदीके प्रवाहपर जमा हुआ बर्फ समान रूपसे सारे जल-विस्तारकी गतिको रोक देता है।

पर उसकी बाधाका एहसास अन्तवर्ती धाराको ही होता है वह उसको काटनेका दुस्सह प्रयास करती हुई टकराकर नीचेसे बहती है। आजके कवि का संघर्ष उसकी आशा-निराशा तथा कुण्ठाएँ व्यक्तिगतसे अधिक सामाजिक हैं। उसके विषयमें सबसे बड़ी बात यह कही जा सकती है कि योरोपके पिछले कवियोंके समान उसने अपने भविष्यको खोया नहीं है, कमसे-कम उसका भविष्यका विश्वास बना हुआ है। यह ठीक है कि इन कवियोंमें मात्र खोजनेका संघर्ष ही अधिक परिलक्षित होता है और यह आगे बढ़कर निर्माणके पक्षको प्रशस्त करनेवाले संघर्षमें बदला नहीं है फिर भी इस मोड़पर यह संघर्ष कम महत्त्वका नहीं है।

नयी कविताके सम्बन्धमें अन्तिम महत्त्वपूर्ण प्रश्न है सामाजिक प्रषणीयताका। यह पहले ही निर्देश किया जा चुका है कि आजका कोई भी कवि इसको अस्वीकार नहीं करता। परन्तु आलोचकोंका सबसे अधिक आक्षेप इसी बातपर है। मुझे लगता है कि आजकी साहित्य-चर्चामें सबसे अधिक उलझन और भ्रमकी स्थिति साधारणीकरण तथा सामान्यीकरणके प्रश्नको लेकर है। सामान्यीकरणके आग्रहसे अनेक बार समाजकी भाव चेतनाके समग्र स्तरोंको समान मान लिया जाता है और सामान्यीकरणके उच्च साहित्य तथा लोक-साहित्यको समान स्तरका स्वीकार कर लिया जाता है। युग-जीवनकी विचारात्मक तथा भावात्मक उपलब्धियोंके वाहक साहित्यको जनताके निकट पहुँचाने और उसकी वस्तु बनानेकी बात और है और समस्त साहित्यको लोक-साहित्यके स्तरपर उतार लाना बिलकुल भिन्न बात है। नदीके सम्पूर्ण प्रवाहका अपना ऊपरी स्तर समान होता है पर उसकी गहराइयोंमें अन्तर होता है मूल धाराकी गति और सामान्य प्रवाहकी गतिमें अन्तर होता है। मूल धारा सम्पूर्ण प्रवाहसे भिन्न नहीं है और न उसका अन्य कोई अस्तित्व है। पर साथ ही सम्पूर्ण प्रवाहका नियमित और गतिशील करनेवाली मूल धारा ही होती है। आजकी कविताका कवि युग-चेतनाकी मूलधाराका अंग है और उसको आधुनिकताकी

संवेदनीयता मूल धारा तक ही सीमित जान पड़ती है। परन्तु धारा समग्र प्रवाहकी गतिका माध्यम है, प्रतीक है और इसी प्रकार नयी कविताका सम्बन्ध युगसे है समाजसे है। वह आजके युगके संघर्षको झेलनेवाली चेतनाका स्फुरण है, और उसकी प्रेषणीयता भविष्यके विश्वास तथा आस्था-को जन्म देनेकी पीड़ा सहनेवालोंकी वस्तु है। ऊपरकी जमी हुई बर्फकी कठोरताको तोड़कर बहनेवाली धाराके वेगका अनुभव बर्फकी ऊपरी परतें नहीं कर पाती हैं उनके लिए परिवर्तन तथा गतिका कोई अर्थ नहीं। और न उस वेगका अनुभव कटकर अलग हुए किनारेसे आकुंचित स्थिर प्रवाह अस्पन्दन ही कर पाते हैं। वह धारा तो सारे प्रवाहकी गतिका अनायास ही निर्धारित करती हुई आगे बढ़ती जाती है।

नयी प्रवृत्तियाँ

नकेनके प्रपद्य

इस नामका नलिनविलोचन शर्मा केसरीकुमार तथा नरेशकी कविताओंका एक संकलन है। जिस प्रकार इस संकलनमें कविताओंको प्रपद्य कहा गया है उसी प्रकार इसकी भूमिकाको 'पत्पद्या'। और प्रपद्यवादी कवियोंकी भाषा यदि हम सब साधारण जनोंकी भाषासे भिन्न है तथा हमारे लिए दुरूह है तो यह स्वाभाविक है क्योंकि अपनी घोषणा संख्या ... के अनुसार वह प्रयुक्त प्रत्येक शब्द और छन्दका स्वयं निर्माता है। कुछ भी हो यह भूमिका कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है और एक अर्थमें इससे कविता-संकलनसे अधिक। तीनों कवियोंकी कविताओं (प्रपद्यों) को पढ़कर ऐसा नहीं लगता कि ये कविताएँ हिन्दीके अन्य अनेक प्रयोगशील अथवा नये कवियोंकी रचनाओंसे मौलिक रूपसे भिन्न हैं। परन्तु भूमिकाके विवेचनसे कई महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर प्रकाश पड़ता है।

'पत्पद्या' में प्रारम्भमें इस बातका उल्लेख किया गया है कि हिन्दी कवितामें प्रयोगवादका वास्तविक आरम्भ १९३६–३८ में लिखी गयी नलिनविलोचन शर्माकी कविताओंसे होता है। इधर हमारे साहित्यमें यह रोचक प्रसंग चल रहा है कि प्रयोगवादी काव्यका आदि कवि कौन है। कुछ लोगोंने ऐसा पेश किया है कि अज्ञेयको यह स्थान मिलना चाहिए और यदि यहीं आगे चलकर कुछ और दावेदार पेश किये जायेंगे। परन्तु प्रयोगवादके सम्बन्धमें यह प्रसंग महत्त्वका नहीं है। इस भूमिकामें प्रयोगवादको प्रयोगशील काव्य-दृष्टिसे अलग करके प्रतिपादित किया गया है जिससे इस काव्यके सम्बन्धमें अधिक स्पष्ट दृष्टि विकसित हो जाती है। उनका कहना है कि 'अज्ञेय और उनके साथके अन्य 'तारसप्तक' कवियोंने 'कविताको प्रयोगका विषय मानकर भी सदा उन्होंने प्रयोगको मात्र साधन

घोषित करनेकी सावधानी बरती थी जब कि प्रपद्यवादियोंकी प्रयोगके सम्बन्धमें स्पष्ट घोषणा है (सं० १) कि प्रयोगशील प्रयोगको साधन मानता है प्रयोगवादी साध्य ।

प्रपद्यवादियों तथा 'अज्ञेय' प्रभृत प्रयोगशीलोंके दृष्टिबिन्दुके अन्तरको समझनेके लिए वास्तवमें उनकी स्थितियोंको समझ लेना चाहिए । प्रपद्यवादियोंकी काव्यसम्बन्धी मान्यताओंपर फ्रांसके प्रतीकवादियों तथा बिम्बवादियोंसे लेकर अतियथार्थवादी इलियट तककी विचार-धारा मान्यताओं और स्थापनाओंका सीधा प्रभाव है । यह उनके घोषणा-पत्र प्रपद्य द्वादशसूत्रीसे बिलकुल स्पष्ट है । जब कि प्रयोगशीलोंकी आधार भूमिमें तो ये समस्त विचार-धाराएँ हो सकती हैं परन्तु इन्होंने सबकी नवीन विचार-सरणियोंको अपनी पद्धतिसे आत्मसात् करनेका प्रयत्न किया है । इसके लिए प्रगतिवादी भावभूमिका उनका विरोध करते हुए भी काट पाना उसी प्रकार सहज नहीं था जिस प्रकार अस्तित्ववादकी स्थितिसे लेकर वैयक्तिकतावादी तथा नव-स्वच्छन्दतावादी प्रभाव ग्रहण करना स्वाभाविक था । इसके अतिरिक्त प्रपद्यवादी एक विशिष्ट घोषणा-पत्रको अपनी मान्यताओंको स्पष्ट रूपसे सामने रखनेके लिए प्रस्तुत करते हैं जब कि प्रयोगशील तथा नयी कविताके अन्तर्गत स्वीकार किये जानेवाले कवियोंको अपने-अपने अनुभवों विचारों तथा विशेषकर रचना-प्रक्रियाके आधारपर कविता-सम्बन्धी मान्यताओंपर विचार करनेकी छूट रही है । यही कारण है कि जितनी विविधता और व्यापकता इन कवियोंकी रचनाओंके अनुकूल गद्य रचना और चिन्तन मिलती है उतनी ही उनकी मान्यताओंमें जान पड़ती है । इसका अर्थ यह नहीं है कि इनमें अन्तर्निहित समता नहीं है अथवा काव्यगत मूल्य तथा प्रतिमानोंमें इनमें कोई समानता नहीं है । वस्तुतः इन्होंने काव्यके कार्यपर अनेक दृष्टियोंसे विचार किया है और उसके अनुसार उनकी प्रवृत्तियाँ अलग-अलग रही हैं ।

परन्तु प्रस्तुत भूमिकामें जहाँतक प्रयोगवादको निश्चित रूपमें स्वीकार

करनेवाली दृष्टिका प्रश्न है यह बहुत स्पष्ट शब्दोंमें और सशक्त रूपसे प्रतिपादित की गयी है। कुछ विशिष्ट शब्दोंको छोड़कर जिनमें-से कुछकी स्थिति अनिवार्य भी मानी जा सकती है इस भूमिकाका विवेचन 'बार'के रूपमें प्रमाणकी समुचित व्याख्या कर सका है। इस शब्दोंके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि स्वीकृत अर्थमें व्यवहृत किसी शब्दका लेना अधिक बोधगम्य हो सकता था और यह भूमिका शायद किसी गयी है जिसका पुण स्वत लेखकन प्रथम माना है। यद्यपि इसमें अन्तगत प्रतिपादित मान्यताएँ योरोपकी उन्नीसवीं शताब्दीमें उत्तरार्द्धम लेकर प्रथम महायुद्धके बाद तककी काव्यसम्बन्धी विचार-धाराओंमें परिचित व्यक्तिके लिए नवीन नहीं हैं फिर भी अपने समयमें पाण्डित्य-प्रधान प्रमाणकी व्याख्या और स्थापनाकी दृष्टिसे महत्त्वकी मानी जा सकती है।

काव्य-शास्त्रके अनुशीलनमें प्रत्येक युग और देशमें ऐसा हुआ है कि कभी किसी विचार-धाराने काव्यकी अभिव्यक्ति (अलंकार गुण वक्रोक्ति प्रयोग) को महत्त्व दिया है और कभी किसीने अभिव्यक्त (व्यंजना रमणीयता संवेदनीयता) को। परन्तु काव्यमें ये दोनों इतने अभिन्न हैं कि किसी पक्षपर बल देकर व्याख्या-पद्धतिके आधारपर अपनी बात प्रतिपादित की जा सकती है। इस प्रकारकी व्याख्याओंमें भी दूसरा पक्ष अन्तर्निहित रहता है। प्रयोगशील दृष्टिसे व्याख्याकार काव्यानुभूतिकी इस विशिष्ट स्थितिसे परिचित हैं इसी कारण वे कविताकी अनिवार्यता मानकर भी प्रमाणका साधन स्वीकार करते हैं प्रमाणवादियोंकी भाँति साध्य नहीं मानते (प्र० सू० सं ६)। यह अन्तर प्रयत्नस जितना दिखाई देता है उतना है नहीं। अपनी प्रथम सम्पत्तिके प्रथम सूत्रमें वे कहते हैं "प्रमाणका" भाव और व्यंजनाका स्थापत्य है' और इसके सूत्रमें कहते हैं "प्रयोगका" दृष्टिकोणका अनुसन्धान है। प्रश्न उठता है कि यदि प्रयोग स्थापत्य है तो भाव और व्यंजनाको किस सम्बन्ध साथ पारित किया गया है उसमें प्रमाण भाव आरम्भ मात्र कैसे हो गया ? इसी प्रकार दृष्टिकोण

अनुसन्धान है तो इस अनुसन्धानकी अपेक्षा दृष्टिकोण बेचारा क्यों तिरस्कृत मान लिया गया। यह मान भी लिया जाये कि दृष्टिकोण कोई पूर्ण अथवा अन्तिम नहीं होता तब भी यह साधन और साध्यका प्रपंच काफ़ी कठिन है। अपने साहित्यके भक्तिकालमें भक्तोंने बलपूर्वक घोषित किया था कि भक्ति हमारे लिए साध्य है साधनमात्र नहीं हमारे लिए रामका नाम रामसे भी बड़ा है। इसी प्रकारकी स्थापना इन प्रपद्यवादियोंकी है। यहाँ उनके बारहवें सूत्रका उल्लेख भी किया जा सकता है कि चीज़ोंका एक मात्र सही नाम होता है। भक्त जब कहता है कि भक्ति उसके लिए साध्य है तो उसकी व्यंजना कदापि यह नहीं है कि उसकी भक्तिमें भगवान्‌का कुछ महत्त्व ही नहीं है, या बिना रामकी व्यंजनाके 'नाम' सार्थक है। उसका सच मतलब यह है कि भगवान्‌के साक्षात्कारकी अनुभूति भक्ति है अतः भक्तकी साधनाकी प्रक्रियामें भक्ति और भगवान्‌की स्थिति अलग है ही नहीं। इसी प्रकार भक्तकी उपलब्धिका माध्यम 'नाम' है, अतः व्यावहारिक दृष्टिसे वह उसे रामसे बड़ा कहता है, अन्यथा तात्त्विक दृष्टिसे दोनों अभिन्न हैं। यदि अपने इन सूत्रोंमें प्रपद्यवादी इसी प्रकार बल देनेके लिए ऐसा कहते हैं तो माना जा सकता है, अन्यथा वाग्जालके अतिरिक्त यह क्या है? और इस दृष्टिसे प्रयोगवादियोंकी स्थिति भले ही वे उनको बिलकुल मानें अधिक स्पष्ट है।

प्रपद्य द्वादशसूत्रीके दूसरे सूत्रकी घोषणा है कि प्रयोगवाद सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है उसके लिए शास्त्र या दल-निर्धारित नियम अनुपयुक्त हैं। परन्तु यह बारह सूत्रोंकी घोषणाका प्राण्य क्या है? क्या शास्त्रकी परम्परा इसी प्रकार नहीं निर्धारित होती? क्या नियमोंके निर्धारणकी पद्धति ऐसी ही नहीं होती? और क्या प्रारम्भिक आचार्योंको ऐसी ही विवशताकी स्थिति में अपनी मान्यताओंको प्रतिपादित करना नहीं पड़ता? और प्रपद्यवाद को दस्तावरदारीय प्रणाली है (सू० सं० ६) उसके लिए 'जीवन और भोग एक मात्र ज्ञान है (सू० सं० ८) तथा वह मानता है कि

'पद्यमें उपहासोन्मुख होता है' (प्र० पृ० ११) क्या किसी छन्द या शास्त्रके निर्धारित अथवा पालित नियम नहीं रखते? कई बार किसी बात पर अत्यधिक बल दे देनेपर उसमें चमत्कार अवश्य आ जाता है, पर विचार करनेपर उसका अन्तर्विरोध भी स्पष्ट हो जाता है। जीवन और सोचके रूप मात्रके आधारपर प्रपद्यवादी जिस भाव और व्यंजनाका स्थानच्युत करना उद्देश्य मानता है क्या यह 'भाव और व्यंजना' जीवनका कोई रूप नहीं है? प्रपद्यवाद अनुभूतिका ग्रहण (अर्थात् अभिव्यक्ति-से) अलग नहीं मानता प्रत्यक्ष अनुभवके संस्पर्शके रूपमें देखता है, नवीन अभिव्यक्तियोंके लिए नवीन शब्द-संगतियोंकी आवश्यकता स्वीकार करता है। यह सब तो ठीक है और प्रयोगशील कविगण भी इस रूपमें अपनी रचना-प्रक्रियाको देखते हैं। पर यह अनुभूति क्या है जो जीवनकी व्यापक संवेदनाओं और अनुभवोंसे एकदम परे है? और वे शब्द तथा शब्द संगतियाँ भी क्या हैं जो कोश अर्थात् परम्परागत ऐसी अलग हैं? यहाँ तक पिछली परम्पराओंसे विच्छेद करके शब्दों और शब्द-संगतियोंका जीवनकी नवीन संगतियोंके अनुरूप नया अर्थ देनेकी बात है प्रयोगशील भी मानते हैं। फिर पाठककी सहृदयताको आघात देनेकी बातका क्या अर्थ होगा यदि प्रपद्यवाद प्रेषण अथवा साधारणीकरणके किसी स्तरको स्वीकार नहीं करेगा (आधुनिक भाषाको तो अर्थरहित माना जा सकता है) ?

इन समस्त प्रश्नोंके बावजूद इस भूमिकामें प्रयोगशील कवियोंको लक्ष्य करके जो प्रपद्यवादपर अभियोग लगाये गये हैं उनका उत्तर संक्षेप रूपमें दिया गया है। इस प्रकारके आरोपोंका प्रयोगशील कवियोंको आगम अपनी स्थितिके अनुसार समुचित उत्तर दिया जा सका है। फिर भी इसका अपना महत्व है। समग्र तथा तदनुसार आलापीय बौद्धिकताका आरोपका प्रत्याख्यान करते हुए कहा गया है 'हिन्दी कविताका अपनेमें सम्पूर्ण शुद्धि लाना होगा और तभी वह पुराना मनका मन प्रति मोह सकती है। उस मन पुराना दुराग्रह मुक्त होना होगा।" इसी प्रकार

अन्य सभी आरोपोंपर विस्तारसे विचार किया गया है और उनका उत्तर तर्कसंगत शैलीमें दिया गया है।

जहाँतक इस पुस्तकके संकलन भागका सम्बन्ध है, इसको पढ़ जानेके बाद यदि भूमिकाको देखा जायेगा (ऐसा ही क्रम पुस्तकमें है) तो यह समझनेमें कठिनाई होती है कि इन्हीं आजकी प्रचलित शैलीमें लिखी गयी साधारण सामर्थ्यवाली कविताओंको प्रतिपादित करनेके लिए यह इतना सब कुछ कहा गया है और सूत्रोंकी स्थापना की गयी है। और यदि पहले भूमिकाका अध्ययन कर लेनेके बाद (जैसा प्रस्तुत समीक्षामें किया गया है) संकलनकी कविताओंको पढ़ा जायेगा तो कठिनाई होगी कि इसमें भाव और व्यंजनाका वह विशिष्ट स्थापत्य कहाँ है? वह एकवाक्यपर्याय शैली या प्रणाली कहाँ है? इन प्रयोगोंमें उत्कृष्ट वैलक्षण्य कहाँ है? हाँ यह ऐसा अवश्य लगता है कि ये सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हैं महान् पूर्ववर्तियोंकी परिपाटियोंको त्याज्य मानते हैं इसमें मनमानेपनका आग्रह है। पता नहीं स्थापना-सूत्र संख्या ४ में अनुकरणका क्या अर्थ है पर जहाँतक साधारण व्यवहारमें प्रयुक्त अर्थका सम्बन्ध है, दूसरोंका तथा अपना दोनों प्रकारका अनुकरण इन कविताओंमें देखा जा सकता है। जो स्थापनाएँ भूमिकामें की गयी हैं उनके अनुसार बिना आयासके लिखनेवाले अन्य कवियोंकी कृतियाँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और उत्कृष्ट भी। अधिकांश शब्दोंकी लीला लानी प्रभावहीन लगती है। सिद्धान्त रूपमें शब्दोंका नया सन्दर्भ बिम्बके अनुसार उनका सज्जित रूपमें प्रयोग तथा अन्य शास्त्रोंसे उनकी अथवा उनके कुछ अंशकी सन्धिको स्वीकार किया जा सकता है। पर वस्तुतः ध्वनि-बिम्ब को ग्रहण करना अनुभवको संश्लिष्ट रूपमें व्यंजित करने अथवा स्वतन्त्र संलाप या रागनियोंके लिए नयी शब्द-संगतियोंके प्रयासके रूपमें ही ऐसा प्रयास सार्थक हो सकता है।

यह आरम्भमें ही कहा गया है कि प्रस्तुत संकलनकी रचनाएँ वर्तमान समयकी प्रचलित तथा नयी कवितासे भिन्न नहीं हैं। और यदि 'परम्परा

भी मान्यताओंको छोड़कर विचार किया जाये तो इन कविताओंमें आजकी कविताके अनेक तत्त्व व्यंजित हुए हैं। वर्तमान काव्यमें अनेक कवियोंने अपनी भूमिका भी प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया है प्रस्तुत कवियोंने भूमिका लिखनेके बाद अपनी कविताओंमें अपने दृष्टिकोणको स्पष्ट करनेका प्रयत्न नहीं किया। फिर भी यत्र-तत्र कविताओंके अन्तर्गत उनकी दृष्टि व्यंजित है। नलिनकी कविता 'नीति-वचन' में काव्यप्रक्रियाका स्वरूप है

मैंने लिखी न कविता ;
मैं हूँ पद्मासनासीन
क्षीर-सागर में समाधिस्थ।
मैं अपनी कविता से असम्पृक्त।
सहसा छिन्न तभी गीतियाँ या छोटी-छोटी—
गाती हैं भी कौंध क्षणिक विद्युत् का

[पृष्ठ १७]

इन तीनों कवियोंमें नरेशमें जीवन-दर्शनका आग्रह अधिक जान पड़ता है। इनकी 'तन्हाई' 'प्यारका गीत' तथा 'आधुनिक नगरीका स्वागत' नामक कविताओंमें जीवन-दृष्टि प्रस्तुत करनेका प्रयत्न है।

इन कवियोंने नये कवियोंके साथ वस्तु-स्थितियोंको केवल किसी घटनाके अंग-रूपमें न मानकर उनका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया है और उनको अपनी वैयक्तिक अनुभूतिके अंग-रूपमें ग्रहण किया है। इस वैयक्तिक अनुभूतिके कारण इन कविताओंमें स्थितियों तथा उनके साथ अपनेको संगतियाँ नयी हैं। नलिनकी 'बसन्त गीत' और 'प्रत्यूष' केसरीकी 'बरसात' और 'प्रथम प्राप्य' (१) तथा नरेशकी 'माघ' और 'धाम' नामक कविताओंमें इसी प्रकारकी नवीन संगतियोंके आधारपर वस्तु-स्थितियोंका अंकन है। इस सीमित आधारमें प्रचलित धारणाएँ नहीं अपितु संवेदनीयता है नलिनकी 'प्रत्यूष' तथा नरेशकी 'माघ' कविताओं

प्रकृतिके प्रति असम्पृक्त रह सकी है, वह उसके अनुभवका अंग हो है पर प्रभावित अथवा प्रेरित करती अंकित नहीं की गयी है। भक्तिकी गीति 'स्नान' 'सागर-सन्ध्या' 'आषाढ़का पहला दिन' और केसरीकी 'सन्ध्या' 'तू साँस' 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' तथा 'दोपहर' ऐसी ही कविताएँ हैं। इनमें अनेक स्थलोंपर उत्कृष्ट भाव-बोधक स्तर हैं और इसी कारण इस संकलनकी श्रेष्ठ कविताएँ इन्हींमें-से हैं। 'गीति-स्वप्न' में प्रकृतिकी अनुभूति इस प्रकार व्यक्त है :

नील गर्वित नभताम्बुधि असीम
ऊपर विस्तृत अम्बर अपार।
मैं छत पर लेटा हूँ
एक उमस फैली है।

एक निःसङ्गी चिड़िया
अन्धकार में घबड़ाती,
बाज दूर घोंसले से बिछुड़ी
भटकती हुई अँधेरे में
जैसे कलकत्ते में खो जाय पाँच साल की बच्ची।

'सागर-सन्ध्या' का चित्र है—

बालू के ढूह हैं जैसे चितियाँ सोयी हुई
उमड़ पंखों से लहरें झाड़ जागतीं।
सूरज की चिता जल रहे मेघ—सम्मुख
विस्मय अचकित।

केसरीके प्रकृति-चित्रोंमें वैविध्यता अधिक मिलता है पर अनेक स्थलोंपर उन्हें अनुभूतिके स्तरपर उतारनेमें भी सफल हुए हैं

रात ऊँघ रात
निःस्तब्ध प्यास सा
कुछ फूल सुरभ पीड़ माला
पवन बादल बह चले
ज्यों वृक्ष उन्मूलित,
बह कुछ, बह चल
ज्यों काग-दीप-बीज ।

['मरण दू']

अन्तमें यह कहा जा सकता है कि इस पुस्तकका भूमिका-भाग यदि एक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है तो संकलन भाग भी उपेक्षणीय नहीं है । जैसे अन्य आधुनिक कवियोंके संकलनोंमें अनेक साधारण प्रभावात्मक अनुकरण मूलक वैचित्र्यप्रधान कविताओंके साथ कुछ सुन्दर आधुनिक काव्यके नमूने मिल जाते हैं उसी प्रकार इस संकलनमें भी कुछ कविताएँ और कुछ कविताओंके अंश वास्तविक काव्यके स्तरके हैं । जैसा ऊपरकी विवेचनासे स्पष्ट है, आधुनिक काव्यकी प्रवृत्तियोंके अध्ययनकी दृष्टिसे भी इस संकलनका महत्त्व है ।

०

प्रकृतिके प्रति असम्पृक्त रह सकी है वह उसके अनुभवका अंग तो है पर प्रभावित अथवा प्रेरित करती अंकित नहीं की गयी है। नलिनकी 'गीति दशम' सागर-सन्ध्या 'आषाढ़का पहला दिन' और केसरीकी 'मरण तू' साँझ 'आषाढस्य प्रथम दिवस' तथा दोपहर ऐसी ही कविताएँ हैं। इनमें अनेक स्थलोंपर उत्कृष्ट भाव-बोधका स्तर है और इसी कारण इस संकलनकी श्रेष्ठ कविताएँ इन्हीं-सी हैं। 'गीति-दशम' में प्रकृतिकी अनुभूति इस प्रकार व्यक्त है।

नील गर्वित नगराम्बुधि असीम
ऊपर विस्तृत अम्बर अपार।
मैं छत पर लेटा हूँ
एक उमस फैली है!

एक पिलखुरा चिड़िया
अन्धकार में चहचहाती
जाने दूर बाँसके से निकली
भटकती हुई अँधेरे में
जैसे कलकत्ते में खो जाय पाँच साल की बच्ची।

'सागर-सन्ध्या' का चित्र है—

बालू के ढूह हैं जैसे चिड़ियाँ मारी हुई
उनके पंखों से लहरें राह माँगतीं।
सूरज की लाली पर रहे मग्न—मेमन
निश्चल अचकित।

केसरीके प्रकृति-चित्रोंमें बौद्धिकताका आग्रह मिलता है पर अनेक स्थलोंपर उन्हें अनुभूतिके स्तरपर उतारनेमें भी सफल हुए हैं

रोम रोम रास
निस्वन भाव सा
कुछ एक सुरस पीर मीठी
मदन मादक बह चल
ज्यों द्रुत उन्मूर्छित,
उड़ कुछ उड़ चल
ज्यों काग-काग-भीड़ ।

['भरण गू]

अन्तमें यह कहा जा सकता है कि इस पुस्तकका भूमिका-भाग यदि एक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है तो सङ्कलन भाग भी उपेक्षणीय नहीं है। जैसे अन्य आधुनिक कवियोंके सङ्कलनोंमें अनेक साधारण प्रयासात्मक अनुरूप मुक्तक बिम्बप्रधान कविताओंके साथ कुछ सुन्दर आधुनिक काव्यक नमूने मिल जाते हैं उसी प्रकार इस संकलनमें भी कुछ कविताएँ और कुछ कविताओंके अंश वास्तविक काव्यके स्तरके हैं। वैसे ऐसा ऊपरकी विवेचनासे स्पष्ट है आधुनिक काव्यकी प्रवृत्तियोंके अध्ययनकी दृष्टिसे भी इस संकलनका महत्त्व है।

०

पुरानी कथा और नयी संवेदना

'कनुप्रिया' भारतीकी नवीन कृति है। 'अन्धायुग' में कृष्णकथाका महाभारतपरक रूप आया है तो 'कनुप्रिया' में 'भागवत' के कृष्णका लीला-रूप स्वीकारा गया है। उनके इस लीला-व्यक्तित्वके साथ कविने उनके 'महाभारत' के राजनीतिज्ञ कूटनीतिज्ञ व्याख्याकार व्यक्तित्वको रखकर देखनेका प्रयास किया है। कनुके इन दोनों व्यक्तित्वोंके बीचमें अत्यन्त कोमल तथा भावमय सेतु-रूपमें राधाका व्यक्तित्व आता है जो जयदेव विद्यापति चण्डीदास तथा सूरदासकी परम्परासे पाया गया है। जिस प्रकार 'अन्धायुग' में त्रेताके उस महायुद्धको आधुनिक युगके सन्दर्भमें और आधुनिक संवेदनाके आधारपर प्रस्तुत किया गया है, उसी प्रकार राधा-कृष्णके लीलामय प्रेमको 'कनुप्रिया' में आधुनिक परिवेशमें तथा संवेदनके स्तरपर अभिव्यक्ति मिली है। भाषा शैली शिल्प तथा भाव-बोध आदिकी अनेक दृष्टियोंसे 'अन्धायुग' तथा 'कनुप्रिया' भिन्न कोटिकी रचनाएँ होकर भी संवेदनके इस बिन्दुपर समान हैं।

इस अन्तर्निहित संवेदनकी समताको ग्रहण करनेमें असमर्थ पाठक तथा आलोचक इन दोनों रचनाओंके अन्तरको इस सीमा तक मानने लगते हैं कि कभी इस कभी उस कृतिको कविकी उपलब्धि मानकर दूसरीके सम्बन्धमें असन्तोष व्यक्त करते हैं। यह स्थिति 'कनुप्रिया' के सम्बन्धमें अधिक है। इस मतके अनुसार भारती 'अन्धायुग' में आधुनिकताके प्रश्नको एक ऐसे आयाम और परिवेशमें उठा चुके थे कि उसके बाद 'कनुप्रिया' का भावबोध उसीका अस्वीकरण और पलायन लगता है। जो आधुनिकताके प्रश्नको महत्त्व नहीं भी देते हैं वे भाषा शिल्प तथा शैलीकी दृष्टिसे इसे पहली कृतिकी अपेक्षा कमजोर मानते हैं। वास्तवमें ये दोनों मत एक

ही स्थापनाकी दो भिन्न परिणतियाँ हैं। जो इस कृतिको आधुनिक सन्दर्भसे च्युत रचना मानते हैं वे इसको रोमैण्टिक प्रेम-प्रणय विरह-वेदना तथा लालसा-उल्लास भावकी अभिव्यक्तिके रूपमें ग्रहण करते हैं। और जो आधुनिक भावबोधके स्तरको नया आयाम न मानकर इस कृतिको रोमैण्टिक काव्यके रूपमें स्वीकार करते हैं उनको इसकी भाषा शैली तथा अभिव्यक्ति उस कोमल तथा सूक्ष्म कल्पना और भावनाके सौन्दर्यके अनुकूल नहीं जान पड़ती है, जिसको इसमें व्यंजित करनेका प्रयत्न किया गया है।

ऐसा नहीं कि यह स्थिति अकारण हो। 'कनुप्रिया' के सजग पाठक-को भी यह आभास होता रहता है कि इस कृतिकी मौलिक संवेदनाओं और अभिव्यक्त संवेदनामें अभिव्यक्त भावबोध और उसकी भाषा-शैलीमें कहीं कोई असंगति है। और इसी कारण रचनाके सम्पूर्ण आकलनके बावजूद उसके सहृदयमें असुन्दर स्थितिका अनुभव करता रहता है। पर समस्त आकलनके बाद इस असुन्दर स्थितिको रचनाके सौन्दर्यबोधके साथ स्वीकार कर लेनेपर ही इसके मौलिक भावबोधके स्तरको स्पष्ट किया जा सकता है या 'अन्धायुग' की आधुनिक संवेदनशीलताके समान है। जो ऊपरसे असंगति जान पड़ती है वही इस रचनाकी समन्वयात्मक अभिरागसम्बन्धी भावना भी है।

इतिहास पुराण और आख्यान चरित्रों और कथानकोंको ग्रहण करनेकी अपनी कठिनाई और जटिलता होती है। उन्होंने महाभारतके चरित्रों और कथानकका ऐसा प्रश्न था व स्वयं एक प्रश्न और समस्याएँ प्रस्तुत करनेमें समर्थ थे जिनको आधुनिक सन्दर्भमें ग्रहण किया जा सकता है। परन्तु 'भागवत' के कृष्णका लीलामय व्यक्तित्व और राधाका स्वच्छन्द मुक्त भावनावान प्रमिया तथा भक्त-द्वारा समभावित व्यक्तित्व रोमैण्टिक भावनाओं और आकांक्षाओंके अधिक अनुरूप है। राधाके व्यक्तित्व की नितान्त मौलिक कल्पना उसके अनुरूप भी जा सकती थी पर आभास

भी था पर वह कनुप्रिया राधा नहीं हो सकती थी। परम्परागत चरित्रको लेकर उसे उसमें विच्छिन्न कर देना कविकी समसामयिक भाव काव्यानुभूति के प्रतिकूल भी है।

'भागवत'के लीलामय कृष्णके व्यक्तित्वकी संभावना फिर एक बार आसान था पर जयदेव विद्यापति चण्डीदास और सूरदासकी राधाके आधारपर ऐसा चरित्र निर्मित करना जो आधुनिक मान्यताओंके स्तरपर प्रतिष्ठित किया जा सके आसान नहीं था। और इस काव्यमें कृष्णकी अपेक्षा राधा ही प्रधान है क्योंकि 'समस्या तक पहुँचनेका दूसरा बिन्दु' यह कनुप्रिया ही है। 'चरम तन्मयताका मात्रस्पृश्य क्षण' और इतिहास की दुर्दान्त शक्तियोंकी निर्मम प्रक्रिया के संघर्षको लेकर 'अनुत्तरित महानताओंसे अभिभूत और आतंकित' हुए बिना अपनी कसौटीपर समस्त को कसनेकी सामर्थ्य राधाका व्यक्तित्व कनुप्रिया में जिस रूपमें परिकल्पित है वह 'सहज मनसे जीवन' जीनेवाला और 'तन्मयताके क्षणमें डूबकर सार्थकता पानेवाला' है। पर इस परिकल्पित राधाके व्यक्तित्वमें राधाकी परम्परामें गृहीत व्यक्तित्वकी संगति बैठ पाना इस काव्य-कृतिकी कठिन समस्या रही है।

परम्पराकी राधाकी भावाकुलता प्रणयाकांक्षा मिलनातुरता विरह वेदना और आत्म-समर्पण अपनी अलौकिकतामें भी इतनी प्रखर और मांसल रही है कि उसके व्यक्तित्वके माध्यमसे तन्मयताके क्षणोंका विस्तार तो व्यंजित हो जाता है उसकी सार्थकता नहीं। भक्तिके क्षेत्रमें यह सारा विस्मरण जन्म-जन्मोंमें सार्थक रूपमें लिया जा सकता है क्योंकि वहाँ समर्पणकी चरम परिणति प्रभुकी परम सार्थकता मानी जाती है। लेकिन प्रस्तुत सन्दर्भमें तन्मयताके क्षणोंकी सार्थकताका प्रश्न है और वह सार्थकता केवल तन्मयताकी स्थिति नहीं है उसकी उपलब्धि है। अत: विस्मरण सार्थक नहीं हो सकता तन्मयताका अनन्युक्त बोध उपलब्धिके रूपमें सार्थक होता है। कनुप्रिया में राधाका चरित्र 'पूर्वराग तथा मंजरी-

परिवेश के सन्दर्भमें अपनी भावविह्वलता, समयकी आकांक्षा, परिस्थिति की मांगता, मातृत्व-स्नेह, उपेक्षा सब संशय, उदासी और पीड़ा प्रभाव माध्यम, गतिविधियोंकी अनुभूति प्रथम-संकेत तथा रंगोंकी सम्पूर्णताकी स्थितियोंमें (जो कैशोर-सुलभ मन स्थितियाँ ही हैं) भी किसी स्वप्न प्रभावशील तथा आग्रही रहा है। यह सत्य है कि राधाके व्यक्तित्वके ये पक्ष इतने सशक्त और प्रभावशील हैं कि उनके द्वारा प्रश्न और आदर्श उनकी तन्मयतामें विलीन हो जाते हैं। स्वयं कवि इस बातके प्रति सजग है और इसी कारण आगे उसे कहना पड़ा है कि अनुप्रिया अपने मनःलोक में ही उन्हें एक सन्दर्भ उद्घाटित करती है जो पृथक सिद्ध होते हैं। पर यह सब उसके मनःलोकमें होता है क्योंकि उसकी सम्पूर्ति राधाकी जिज्ञासा नहीं, भावाकुल तन्मयता है।

किन्तु ही मनःलोकमें क्या न हो। पर भावाकुल तन्मयताके इस स्तर राधाकी उपलब्धि नहीं है, उसके लिए इस तन्मयतामें भी सजगता आवश्यक है। इसीलिए प्रथम चरणमें राधाकी किशोर मनःस्थितियाँ प्रश्न और आदर्श संश्लिष्ट हैं। 'पूर्व राग' के प्रथम दो गीतोंमें राधाकी भावविभोर मनःस्थितिका सूक्ष्म अंकन है जिसमें वह अपने मन प्राणोंसे अज्ञात प्रश्न कामना करती है:

> वह भी अकस्मात्
> आज मेरे जिस्म के सितार के
> एक-एक तार में तुम झंकार उठे—

परन्तु साथ ही इसमें राधाके मनका यह भाव भी व्यंजित है कि उसकी क्रियाओंमें सदा एक कुतूहल अन्तर्निहित है:

> जब तुमको मेरे इन आवरणहीन बाँहों ने
> क्षणभर यह एहसास करा दिया कि मैं तुम्हीं में हूँ
> बात—सुनो ! जब अमराइयाँ मर्यादित मर्यादित

इस सबकी प्रतीक्षा में तुम
कब न मुझ में छिप सो रहे थे !

इसी प्रकार तीसरे गीतमें प्रणयारम्भके कोमल मौन आमन्त्रणका स्फुरण तथा पाँवोंमें मर्मपित इनकी आकांक्षाके साथ परितृप्तिकी आतुरता भी व्यंजित है। इन भावोंको कविने सहज रूपसे जिस कोमलताके साथ व्यक्त किया है, वह इन्हें आधुनिक भावबोधका स्तर प्रदान करती है और

मुझे क्या मालूम था कि वह अस्वीकृति ही
अटूट बन्धन बनकर

या

तब मुझे अंकमें ग्रहण कर
सम्पूर्ण बनाकर लौटा देते हो

में अपनी भावाकुलताके प्रति ही वह सजग मननशीलता है जो इतिहास की राधाके व्यक्तित्वकी चुनौती है। परन्तु इन गीतोंमें मधुमास आनेपर आम्रमञ्जरित पाँवोंके तादृमय अशोक वृक्षका लाल गुच्छोंमें डाल-डालपर पुष्पित हो जाना एक-एक कोंपलको एक-एक पतिका पूरी तरह बँध जाना लाजसे आरक्त मुँह छिपाकर उसके प्रगाढ़ परिरम्भ मिलना जिसमें एक-एक कणमें सम्पूर्णताका बराबर टीसता रहना और

मानो यह जमुना की साँवली गहराई नहीं है
यह तुम हो जो सारे आवरण दूर कर
मुझे चारों ओर से कण-कण रोम-रोम
अपने श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिंगन में पोर-पोर
कसते हुए हो !

ऐसा आभासित होना ऐसे वातावरण और भावबोधको व्यक्त करता है, जिसमें राधाके व्यक्तित्वका वह अंश दब गया है और परम्पराका अंश

अधिक सशक्त हो गया है। यहाँ भी कविकी भाषा-शैली नाट्याभिव्यक्तिके स्वरको रोमैण्टिक होनेसे बचा सकी है।

'मंजरी-परिणय' खण्डमें विकसित मन स्थितियोंका अंकन है पर गवेषणाका स्तर पहले खण्डसे भिन्न नहीं है, इसी कारण भारतीय भी इस प्रथम खण्डके अन्तर्गत माना है। साक्षात्कारके सुखमय क्षणोंके मधुर मय भगवान संशय आग्रह भरे शासन तथा निर्लज्जिया करना और उदासीन अभिभूत राधाके मनमें यह चेष्टा बनी हुई है—'तुम्हारी जन्म-जन्मान्तरकी रहस्यमयी लीलाकी एकान्त सहचरी मैं'। साथ ही आम्र-मंजरियोंके बीच अनुसार तत्पर गोपुर्डी वेश कृष्णकी राधाकी आतुर प्रतीक्षा कदम्बके नीचे पीले पत्तोंके ताम्र रंगसे मानसे अनुरक्तकी तरह राधारी हुई राधाके पगोंमें कृष्णका मनावन स्थापना और फिर उत्तर गहरा आतप राधाका उसी आम्र डालीकी बाँहोंमें भरे रोते रहना परम गम्य सलज्ज वातावरण और भावबोध प्रस्तुत करता है। 'आम्र-बौरका अर्थ' के अन्तर्गत प्रणय-संकेत प्रथमकी चरम पूर्णता शारीरिक सुख अनुभूति और प्रणय निवेदनकी शमन सर्वग्राम पर और पर भाव उभरता है

मेरे आम्रकेतु मेरे सहज मित्र का ता प्रकृति दी गई है
कि यह जिस भी तिलक करना चाहता है
इस सम्पूर्णता से भर देता है।

तो इसमें भार सहा विशिष्ट सुन्दर शिल्प प्रतीकोंमें प्रसंगका संकेत मंजरियोंमें मनके लिए मंजुरी भर बन्द फूलोंका प्रतीक तथा महकारके नीचे राधाका स्थानक शिल्प आसपास दो रूपका प्रतीक मध्ययुगीन भाषा-घनकी सहज अवतारणा करता है। साथ ही निश्चित माध्यमसे गीतना माना कम्प समारके बिना है-प्रगाढ़ बड़े-बड़े गुम्बदोंका टीसना और निभृत उद्यानमें मारे विस्मय आमका बौरका टीस उत्पन्न करना जिस भावबोधको प्रकट करता है, उसकी व्याख्या सम्भवतः अधिक भी सम्पूर्ण सुरा और इसमें है।

राधाके मनका प्रश्न 'तुम मेरे कौन हो' में अधिक मुखरित हुआ है और इसी कारण आधुनिक संवेदनाकी प्रस्तावना इसमें देखी जा सकती है। यह कनुप्रिया है जो व्यक्तिके संचरणमें निखिल पारावारमें परिव्याप्त होकर विराट्, सीमाहीन, अदम्य तथा दुर्दान्त हो उठती है और फिर कान्हके बाहुपर वही अकस्मात् सिमटकर सीमामें बँध जाती है। यह व्याख्या पौराणिक सन्दर्भके निकट है, पर इसकी परिणति नये आयामको व्यंजित करनेमें समर्थ हुई

तुमने चाहा है कि मैं इसी जन्म में
इसी थोड़ी-सी अवधि में जन्म-जन्मान्तर की
समस्त यात्राएँ फिर से दोहरा लूँ
और इसीलिए सम्बन्धों की इस घुमावदार पगडण्डी पर
क्षण-क्षण पर तुम्हारे साथ
मुझे इतने आकस्मिक मोड़ लेने पड़े हैं

और ये सम्बन्धोंके मोड़ हैं जिनमें कृष्ण कभी सखा, कभी बन्धु, कभी आराध्य, कभी शिशु, कभी प्रिय और कभी ईश्वर हो जाते हैं और, राधा कभी साधिका, बान्धवी, माँ, वधू और सहचरी बन जाती है। इन सम्बन्धोंकी स्थिति नयी नहीं है, पर इनका एक बिन्दुपर सम्पुञ्जित होना और हर सम्बन्धमें स्त्री-पुरुषके आत्मबोधको इसी स्तरपर स्थापित करना नया है

और मैं बार-बार नये-नये रूपों में
उमड़-उमड़ कर
तुम्हारे तट तक आयी
और तुमने हर बार अथाह समुद्र की भाँति
मुझे धारण कर लिया—
विलीन कर लिया—
फिर भी अकूल बने रहे

अपनी भावनाओंके विश्लेषक दूसरे खण्ड 'सृष्टि-संकल्प' में राधाके मनके प्रश्न और जिज्ञासा अधिक स्पष्ट हैं। उन्होंने सृजन-प्रक्रियाके प्रश्न विस्तारमें तथा मन्थन किया है। 'सृजन-संगिनी' में अपने राधा कृष्णकी उत्पन्न इच्छा और सहचरका अर्थ अपना अनुभव पाती है जिस माध्यमसे सृष्टि होती है जो इनका असीमकी अपनी माध्यमता है। और यह सृष्टि क्या है?

यह प्रवाह में बहती हुई
तुम्हारी असंख्य सृष्टियों का क्रम
महज हमारे गहरे प्यार
अगाध विश्राम

और अनुपम सौन्दर्यकी अनन्त पुनरावृत्तियाँ हैं—पर निखिल सृष्टिका सीमा रूपमें अनुभव करनेवाली राधाको ... अज्ञात शून्य 'आदिम' में ... करता है। उद्दाम सौन्दर्यके ... सृजन प्रक्रियामें परिव्याप्त अपने विराट् अस्तित्वका अनुभव करके भी राधा प्रश्नशील है,

अगर यह निखिल सृष्टि
मेरा लीलातन है
तुम्हारे आस्वादन के लिए,
तो यह जो मध्यमें है—यह आकाश
किसका है?
किसके लिए है—मेरे बन्धु मित्र?

लीला-सर्गमें भी यह प्रश्न राधाको क्या घेरे रहता है? लीला-स्थितिमें ... है। ... उसका मंगलात्मक और मत्यात्मक होता जाता है। इस प्रसंगका ... के ... सम्बन्धमें ... प्रस्तुत किया है। ... [illegible] ... डूबा हुआ है। ... [illegible] ... हो रहा। इस

केलिमें निहित सम्भावनाओंसे राधा अधिकाधिक निर्मित होती जाती है—एकमेक होनेकी उद्दाम आकांक्षाके साथ जिसके आगे और उन्माद-भरे क्षणोंमें कृष्ण भी व्याकुल हो उठते हों जैसे

अपार समुद्र को उत्ताल विक्षुब्ध
हहराती लहरों के निर्मम थपेड़ों से—
छोटे से प्रवाल-द्वीप की तरह
बेचैन—

और व्यक्तित्वकी उपलब्धिके इन्हीं क्षणोंमें राधा इतिहासको चुनौती देती है कि जबतक मैं अपने प्रगाढ़ केलि-क्षणोंमें अस्थायी विराम-चिह्न न दूँ, तबतक

कह दो समय के अचूक धनुधर से
कि अपने शायक उतार कर
तरकश में रख ले
और तोड़ दे अपना धनुष
और अपने पंख समेट के द्वार पर चुपचाप
प्रतीक्षा करे—

सम्भवतः राधाके चरित्रमें इन प्रश्नों और जिज्ञासाओंका विकास ही हुआ है जिसके माध्यमसे कवि राधाके माधुर्य भावमयी और रोमैण्टिक भावाकुल व्यक्तित्वको आधुनिक भावबोधके स्तरपर नये सन्दर्भोंमें पुनः रच सका है और नये आयाम दे सका है। पर इतिहास खण्डमें राधाका व्यक्तित्व यहीं स्पष्ट अधिकाधिक उद्घाटित हुआ है। राधा विरह-वर्णनामें जिस प्रकार माधुर्य भक्तिका चरम उत्कर्ष पा सकी है, उसी प्रकार कनुप्रिया विरहके अवसाद और समर्पणमें व्यक्तित्वकी उपलब्धि और इतिहासकी व्याख्याके गौरवको भेद सकी है। यह समानान्तरता आकस्मिक नहीं है यह राधाके संघटित व्यक्तित्वकी अपनी परिणतिके कारण ऐसा हुआ है।

'इतिहास' के अन्तरालमें राधा अपनी उपलब्धियोंसे सबसे दूर छूट चुकी है सब रीते हुए पात्रकी आखिरी बूँद-सा उसका तन और मनका शेष रह गया है। पर इस अवसाद और सन्नाटेके बीच उसके मनका यह प्रश्न आग्रही हो उठा है

> कौन था वह
> जिसने तुम्हारी बाँहों के आवर्त में
> गरिमा से तन कर समय को ललकारा था !
> कौन था वह
> जिसके चरम साक्षात्कार का एक गहरा क्षण
> सारे इतिहास से बड़ा था सशक्त था।

उसकी वेदनाका सबसे बड़ा उपालम्भ अनुगुंजित है कि कृष्णने सीमाशून्य और पुरातनके अलंघ्य अन्तरालको पार करनेके लिए उसे सेतु-सा माना है जो उतर चल जानेके बाद निर्जन और निरर्थक छूट गया है। अपनी पुरानी स्मृतियोंके साथ राधाके मनमें बार-बार यह भाव उठता है कि अपनी अनुभूतिके एक क्षणमें सम्पूर्ण असमाप्य [illegible] उसका दावा सच था या नहीं। यद्यपि इस समय उसके मनमें अपनी तन्मयताके क्षणोंकी उपलब्धिके विषयमें दुविधा है पर उसके मनका विश्वास इस प्रश्नमें सन्निहित है

> तुम्हारे महान् बनने में
> क्या मेरा कुछ टूट कर बिखर गया है कनु !

साथ राधा कृष्णके युद्धसे असंख्य [illegible] अनुभव करती है और कृष्णकी युद्धोन्मत्त सेनाओंको गुजरते देखकर उनकी भीड़-भाड़में अपनेको और अपने प्यारको अपरिचित छूटा हुआ पाती है। यहाँसे उस स्मृतिमें [illegible] सम्पन्न हो उठता है। एक बार फिर सारा [illegible] की सर्जनाकी उपलब्धि उसके क्षणकी तन्मयता साथ साधारण है [illegible]

है, अर्थहीन आकर्षण था और यह मान लेनेपर कि पाप-पुण्य, धर्माधर्म न्याय-दण्ड और क्षमा-दीक्षाका दायित्व सत्य है, तो भी जिसने उस क्षण तन्मयताकी सार्थकताका अनुभव किया है उसके लिए इस युद्धघोष, रक्तस्नान और अमानुषिक घटनाओंवाले इतिहासकी सार्थकता समझ पाना कठिन है। व्यक्तिकी तन्मयताकी सार्थकताके बिना दायित्वकी व्याख्या करनेवाले 'शब्द' अर्थहीन हैं, इसीलिए राधा इन शब्दोंकी व्याख्याके स्थानपर कृष्णकी वाणीको अधिक महत्त्वपूर्ण मानती है, क्योंकि वह साक्षात्कार है। अगणित शब्दोंका मात्र अर्थ है—मैं, और इस 'मैं' के बिना इतिहास भी समझा नहीं जा सकता।

'समुद्र-स्वप्न' के अन्तर्गत राधाने इसी प्रश्नको व्यापक सृजन-प्रलयके रूपकके माध्यमसे रखा है। दायित्वके निर्वाहके लिए सारा इतिहास गतिशील होता है, युद्धोंकी विभीषिका सही जाती है, प्रलय और संहार सहा जाता है, पर इसके बाद क्या निर्णय हो पाता है। यह सापेक्ष है। इसी कारण सम्पूर्ण संघर्ष झेलनेके बाद कृष्ण अन्ततः इतिहासको बीच समझकर, उसमें त्याग कर राधाकी आकांक्षा करते हैं। यह व्यक्तित्वकी लाज है

गहरी पुकार हो
सब त्याग कर
मेरे लिए भटकती हुई

और यहींसे समापन प्रारम्भ होता है जिसमें इस विकसित प्रश्नका समाधान व्यंजित है। दायित्वसे श्रान्त, क्लान्त और उदास कृष्ण जब राधा (व्यक्तित्व) को पुकारते हैं, तब वह सब छोड़-छाड़कर प्रस्तुत हो जाती है। साथ ही कृष्णमें विलीन न होकर तथा उनकी कामनापूरित रागको अस्वीकार कर अपने व्यक्तित्वकी सत्ता कृष्णको ऐसे क्षणमें समर्पित करनेके लिए ही भी है। कल्पान्तरोंकी अनन्त पगडंडीके कठिनतम मोड़पर खड़ी

होकर राधा कृष्णकी प्रतीक्षा कर रही है, जिसमें इस बार इतिहासको गति देते समय वे अकेले न छूट जायँ। राधा इस बार तन्मयताके क्षणकी मात्र संगिनी न रहकर अपने व्यक्तित्वकी उपलब्धिमें इतिहासको सार्थकता प्रदान करनेके संकल्पके साथ प्रस्तुत है

मैं तो गर्वी हूँ प्रिय !
मेरी वेणी में अग्निपुष्प गूँथने वाली
तुम्हारी उँगलियाँ
अब इतिहास में अर्थ क्यों नहीं गूँथतीं ?

इसके इस प्रश्नमें उत्तर सन्निहित है जो आत्म-विश्वासकी दृढ़ताके साथ व्यंजित है।

सवाल उठता है कि इतिहासकी दायित्वपूर्ण प्रक्रिया और व्यक्तिके चरम तन्मयताके क्षणोंके सामञ्जस्यकी कोई भावभूमि इस कथाकृतिमें क्या प्रस्तुत हो सकी है ? किसी काव्यकृतिमें तार्किक निष्पत्ति तक पहुँचनेकी आशा करना संगत नहीं है। वह मनुष्यके जीवनके गहन और सूक्ष्म स्तरोंका उद्घाटित कर भावबोधको समृद्ध करती है। पर प्रस्तुत काव्य में अन्तर्निहित प्रश्नके उत्तरकी व्यंजनाकी आशा की जाती है और जैसा कहा गया है व्यंजित है भी। कृष्ण राधाके माध्यमसे इतिहासका जब वे सारा जीवन प्रत्यक्ष किये गये तबकी स्थितिमें इतिहासकी सार्थकता है। व्यक्तिको अपना पर उसके (इतिहास) दायित्वका भार जब छूट पर जाता है तब व्यक्तिकी उपलब्धिके साथ दायित्वकी सार्थकता भी सम्पन्न हो सकेगी। यह तो है पर राधाके चरित्रका विकास जिस आरम्भमें हुआ है वहाँ यह व्यंजना स्पष्ट उभर नहीं भी पायी है। एक ओर व्यक्तिकी दृष्टिसे राधाका समर्पण और दूसरी ओर राधाकृष्णका सहचरित्रपनका स्तर व्यक्तिको अपने व्यक्तित्वके सम्भव भी विस्मरणकी एक स्थिति पहुँचा देता है जहाँ पर इतिहास और उसके दायित्व

पूर्णतः विच्छिन्न लगता है। उसकी तन्मयताका विस्मरण नहीं वरन् सजग उपलब्धि ही व्यक्तित्वको वह आयाम दे सकती है जिसमें इतिहास भी साधक हो सके।

आधुनिक काव्यके सम्बन्धमें भाषा, शैली और छन्दका प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण और मौलिक है कि उसके साथ न्याय करनेके लिए विस्तार और किंचित् व्यापक सन्दर्भकी आवश्यकता है। 'कनुप्रिया' की भाषा सरल सहज होकर भी काव्य-भाषा है, एक प्रकारसे इस काव्यकी यही उपयुक्त भाषा है, क्योंकि उसके माध्यमसे कविने इस उदात्त तथा भावाकुल कथा को आधुनिक भावबोधके स्तरपर व्यंजित किया है। काव्य जिस संवेदनक स्तरपर अवतरित होता है, भाषा उसीपर प्रस्तुत हो जाती है, क्योंकि भाषा जीवनकी प्रक्रियाका अंग है। भाषाके इसी रूपमें शब्दोंको नयी सार्थकता मिली है जिनसे भावबोधके नये स्तर उद्घाटित हो सकें। शब्दोंकी इस नयी व्यंजना-शक्तिसे प्रतीक-योजना, बिम्बमयता और अलंकरणके नवीन विधान प्रस्तुत करके भी इसी संदर्भमें सहयोग दिया है। इसी प्रकार आधुनिक कविने जिस सहज स्तरपर भाषाका स्वीकार किया है, उसी स्तरपर उसने अपने छन्दका आविष्कार भी किया है। इसका ग्रहण करनेमें कठिनाई इस कारण है कि यह प्रचलित भिन्न है। अनेक लोगोंको इसी कारण इस काव्यके पठित रूपमें और गायक-द्वारा प्रस्तुत किये गये (श्रव्य) रूपमें अन्तर लगा है, यह स्थिति नये काव्य मात्रकी है।

नयी कविताकी समस्या[1]

'तीसरा सप्तक' के प्रकाशनकी प्रतीक्षा थी। 'तार सप्तक' के माध्यमसे सत्रह वर्ष पहलेके प्रकाशनमें आधुनिक काव्यकी जिस नयी प्रवृत्तिका परिचय मिला था उसके सम्बन्धमें इस नये सप्तकके माध्यमसे हम किसी निश्चित दिशाका निर्देशन ले सकेंगे ऐसी आशा थी। पिछले दो दशकोंमें इस काव्य-प्रवृत्तिकी बहुत अधिक चर्चा हुई, यह इस काव्य-प्रवृत्तिकी शक्ति और महत्त्वका प्रमाण है। 'तार सप्तक' काव्यके क्षेत्रमें जिस अन्वेषण और प्रयोगका आग्रह लेकर प्रस्तुत हुआ था उसका तीखा विरोध परम्परावादी प्रतिष्ठित समालोचकों और प्रगतिवादियोंने किया। 'तार सप्तक' के सम्पादकने स्पष्ट शब्दोंमें घोषित किया था कि हमारा कोई वाद नहीं हम केवल अपने मार्गोंके अन्वेषी हैं। परन्तु इस कविताके विरोधियोंने 'प्रयोगवाद' नामक नये मतवादके प्रवर्तनका दायित्व अनचाहे और अकारण ही सम्पादकके माथे मढ़ दिया। इस कविताको व्यक्तिनिष्ठ समाजविरोधी कुण्ठाग्रस्त नीरस वासनावादी अहंवादी पलायनवादी अनास्थावादी आदि कहा गया। परन्तु आधुनिक विरोधके बावजूद अपनी प्रामाणिकताके बलपर यह अग्रसर होती रही है।

'दूसरा सप्तक' का प्रकाशन सन् ५१ में हुआ और इस समय तक प्रयोगशील कविता अपनेको प्रतिष्ठित कर चुकी थी। सम्पादकने भूमिकामें आत्मविश्वास और दृढ़ताके साथ अपनी बातको स्थापित किया—प्रयोगका कोई वाद नहीं है। न प्रयोग अपने आपमें इष्ट या साध्य है। अन्तर्जात प्रयोगको दोहरा साधन माना है—'प्रयोग एक ओर वह उस सत्यको जाननेका साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है दूसरे वह उस

---

१ 'तीसरा सप्तक' की भूमिकाके सन्दर्भमें।

प्रेषणकी क्रियाको और उसके साधनोंको जाननेका भी साधन है। अर्थात् प्रयोग-द्वारा कवि अपने सत्यको अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है। यह भूमिका आरोपोंके उत्तर रूपमें नहीं है पर उनको ध्यानमें रखकर अवश्य लिखी गयी है। इसी कारण इसमें समस्त प्रश्नोंको उठाकर, उनका समाधान प्रस्तुत किया गया है। और इस रूपमें यह प्रयोगशील काव्यकी स्थापना मानी जा सकती है। उनका कहना है कि प्रयोगोंके माध्यमसे आजका जीवित सत्य अभिव्यक्ति खोज रहा है सब ही अटपटे ढंगोंमें। इस प्रसंगमें उन्होंने साधारणीकरणके सिद्धान्तको भी उठाया है। उनके अनुसार इससे प्रयोगोंकी आवश्यकता सिद्ध होती है। राग वही रहनेपर भी रागात्मक सम्बन्धोंकी प्रणालियाँ बदल जाती हैं। 'जैसे-जैसे (बाह्य) वास्तविकता बदलती है वैसे-वैसे उससे हमारे रागात्मक सम्बन्ध जोड़नेकी प्रणालियाँ (माध्यम) बदलती हैं — और अगर नहीं बदलती तो उस बाह्य वास्तविकतासे हमारा सम्बन्ध टूट जाता है। भाषाके प्रश्नको भी उठाया है — (शब्दका) चमत्कार मरता है और चामत्कारिक अर्थ अभिधेय बनता रहता है। या कहें कि कविताकी भाषा निरन्तर गद्यकी भाषा होती जाती है। इस प्रकार कविके सामने हमेशा चमत्कारकी सृष्टिकी समस्या बनी रहती है।

इस प्रकार 'दूसरा सप्तक' की भूमिकामें अज्ञेयने 'तार सप्तक' की स्थापनाओंकी व्याख्या की है। और इसमें काव्यकी अभिव्यक्तिकी ओर उनका ध्यान अधिक रहा है। ऐसा नहीं कि काव्य-अभिव्यक्तिकी सम्भावना उसमें नहीं है। जब वह कहते हैं — 'प्रयोगोंका महत्त्व इसलिए किन्तु चाहे जितना हो सत्यकी खोज स्वयं उसमें चाहे जितनी उत्कट हो महत्त्वपूर्ण निरा अप्रासंगिक है — उस समय उनका बल अभिव्यक्त सत्य (भाषी) पर है। तथ्य और सत्य' के अन्तरको स्पष्ट करनेके प्रसंगमें उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि आजकी वास्तविकतासे रागात्मक सम्बन्ध स्थापित

स्पष्ट हो। सामाजिक सत्यकी उपलब्धि सम्भव है। इसको इस बातका आभास भी है कि उन्होंने व्यक्ति-सत्यकी स्थापना करके भी सामाजिक सम्बन्धमें उसकी संगति प्रतिपादित नहीं की। उनका कहना है – 'दूसरा सप्तक' की भूमिकाको इससे आगे जाना चाहिए। बल्कि यहींसे उसे आरम्भ करना चाहिए। लेकिन ऐसा कहकर भी उन्होंने 'भूमिका' का आगे विस्तार नहीं किया, संकलित कवियोंके विषयमें केवल इतना कहकर ही यह 'भूमिका' समाप्त हो गयी है – प्रयोगके लिए प्रयोग इसमें-से किसीने नहीं किया है पर नयी समस्याओं और दायित्वोंका तकाज़ा सबने अनुभव किया है।

इस प्रकार अज्ञेयने प्रयोगशील कविताके बारेमें 'दूसरा सप्तक' तक कुछ सीमित स्थापनाएँ की थीं। यह भी माना जा सकता है कि उन्होंने इससे अधिक इस कविताके प्रतिमानोंकी व्याख्या अपेक्षित न समझी हो। शायद इसलिए कि इस कवितामें अनेक दिशाएँ समाहित हैं, अनेक सम्भावनाएँ निहित हैं, अनेक वृत्तियाँ उभर रही हैं, जीवनके न जाने कितने परिप्रेक्ष्य खुल रहे हैं और यह भी सम्भव है कि वह अपनी काव्य-दृष्टिको किसी सीमामें बाँधना ही नहीं चाहते। 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' के प्रकाशनके बीचमें इस काव्य-धाराने उपलब्धिकी निश्चित दिशाएँ प्राप्त की हैं। अतएव 'दूसरा सप्तक' में यह कहा था कि 'यह सब हिन्दी-काव्यको निश्चित रूपसे एक कदम आगे ले जाता है।' पर 'तीसरा सप्तक' में उन्होंने मूल्यांकनके प्रतिमान खोजनेकी चर्चा की है। वस्तुतः इस बीच इस काव्य-प्रवृत्तिकी स्थापनाके साथ-साथ उसके मूल्यांकनकी समस्या अधिक महत्त्वपूर्ण हो गयी है। जिसने स्पष्ट चाहे विरोध किया हो और चाहे विस्मय किया हो, पर यह क्रमशः प्रतिष्ठित होती काव्य-धारा है। कई नये कवियों और समीक्षकोंने सप्तकके प्रकाशनके पूर्व नयी कविताका परिचय, उसकी गवेषणीयता तथा उसके प्रतिमानों आदिपर विचार किया है।

'तीसरा सप्तक' की प्रतीक्षामें यही आशा अन्तर्निहित थी कि इस काव्य-धाराका प्रारम्भसे नेतृत्व करनेवाले अज्ञेय आजकी नयी कविताके मूल्यों तथा प्रतिमानोंकी भूमिका भी प्रस्तुत करेंगे। यहाँ यह कह देना भी अप्रासंगिक नहीं है कि इधर नयी कविताके आदि कविकी खोज और स्थापनाएँ भी होने लगी हैं। इस विवादमें बिना पड़े यह कहा जा सकता है कि किसी प्रवृत्तिकी कविता आगे-पीछे लिखना अलग बात है और नेतृत्वके अनुकूल सर्जनात्मक व्यक्तित्व (काव्य-व्यक्तित्वसे भाव है) होना अलग बात है। इस दृष्टिसे अज्ञेयकी स्थिति विवादसे परे है। 'भूमिका' के प्रारम्भसे ही लेखकका ध्यान नयी कविताके मूल्यांकनकी समस्यापर केन्द्रित है। पर 'तीसरा सप्तक' का सम्पादक दुविधा और संकोचका अनुभव कर रहा है। यह तो उसने प्रारम्भमें स्पष्ट कर दिया है कि दुविधा-में पड़नेका कारण कवियोंकी उपलब्धिके प्रति कम आशावान् होना नहीं है। इसके विपरीत वह उलटा ही सच मानता है। इस दुविधा और संकोचका कारण बतानेका प्रयत्न लेखकने अवश्य किया है पर वह पर्याप्त नहीं जान पड़ता है। यह ठीक है कि प्रयोगशीलताकी 'प्रारम्भिक अवस्थासे नयी कविता काफी आगे बढ़ चुकी है। नयी कविताका अपने पाठकके और स्वयं अपने प्रति उत्तरदायित्व बढ़ गया है। और यह भी मान लिया जाये तो भी ठीक है कि 'तीसरा सप्तक' तक पहुँचते-न-पहुँचते 'इस बातका अधिक महत्त्व हो गया है कि संकलित रचनाओंका (आजकी नयी कविता का) मूल्यांकन सम्पादक स्वयं न भी करे तो कम-से-कम पाठककी सहायता अवश्य करे। तब भी सम्पादककी दुविधा और संकोचका कारण तो स्पष्ट नहीं हो गया है। 'कृतिकारका अनुभावन करनेवाली स्वयं पूँजी-वाली' प्रतिभाका से भी विचलित होने-जैसी बात नहीं हो सकती है यदि हम उनकी (नयी कविताकी) वास्तविक उपलब्धिके प्रति आश्वस्त हैं।

इस दुविधा और संकोचपर विचार करनेके पूर्व हम अज्ञेयकी नयी कविताके मूल्यांकनसम्बन्धी स्थापनाओंका जायजा लेना चाहेंगे। इस

'भूमिका' में अज्ञेयने तीन समस्याएँ उठायी हैं भाषा सम्प्रेष्य वस्तु तथा शिल्पकी। इनमें-से पहली और तीसरीका सम्बन्ध अभिव्यक्ति पक्षसे अधिक है और दूसरीका अभिव्यक्तसे यद्यपि इनको क्रमशः इस प्रकार अलग-अलग करके समझा नहीं जा सकता। अज्ञेय स्वीकार करते हैं कि 'प्रत्येक शब्दका प्रत्येक समर्थ उपयोक्ता उसे नया संस्कार देता है।' नये कविकी उपलब्धि और देनकी कसौटी इसी आधारपर होनी चाहिए। नये कविको 'नयी शिल्प दृष्टि मिली है। वह नयी वस्तुको ग्रहण और प्रेषित करता हुआ शिल्पके प्रति कभी उदासीन नहीं रहा है क्योंकि वह उसे प्रेषणसे काटकर अलग नहीं करता है।' भाषा और शिल्पसम्बन्धी इन स्थापनाओंमें अज्ञेयने अपनी पूर्व स्थितिकी व्याख्या की है। उन्होंने स्वयं इस शिल्पके सम्बन्धमें नयी दृष्टिको महत्त्व दिया है। सम्भवतः उनका इस नयी दृष्टिसे अर्थ है 'कवितामें अपने कवि-कर्मके प्रति गम्भीर उत्तरदायित्वका भाव हो, अपने उद्देश्यमें निष्ठा और उस तक पहुँचनेके साधनोंके सदुपयोगकी लगन हो।' यहीं प्रश्न उठता है कि यह उत्तरदायित्व क्या है? क्या उद्देश्य है? इसके सम्बन्धमें लेखकका कहना है, 'जहाँ प्रयोग हो वहाँ कवि मानता हो कि वह साधनका ही प्रयोग है।' "देखना यह होता है कि वह साधक साध्य निरपेक्ष या 'एब्सोल्यूट' मान न हो।

अब तक सम्प्रेष्य वस्तुका प्रश्न आता है। वास्तव इस परिप्रेक्ष्यमें नयी कविताके मूल्यांकनकी सम्भावनाएँ हो सकती हैं क्योंकि भाषा और शिल्पके सम्बन्धमें प्रयोगशील काव्यकी पहली भूमिकाओंमें भी चर्चा की जा चुकी थी। और भाषा तथा शैलीकी प्रयोगशीलताका प्रश्न आजकी कविता ही क्यों युग-युगकी कविताके साथ लगा हुआ है। इस सम्बन्धमें जो बात नये कवि विशेष कही गयी हैं वही प्रत्येक युगके नये कविके बारेमें भी मानी जा सकती हैं। अतएव दूसरा सप्तक की भूमिकामें इसी बातको विस्तारके साथ प्रतिपादित भी किया है। प्रयोगशीलता और साधारणीकरणकी समस्याओंको पक्ष भी उठाया गया था पर सम्प्रेष्य

वस्तुका प्रश्न इस भूमिकामें अधिक स्पष्टताके साथ सामने लाया गया है। लेखकने इस तथ्यपर बल देनेकी आवश्यकताकी ओर ध्यान आकर्षित किया है कि 'काव्यका विषय और काव्यकी वस्तु (कण्टेण्ट) अलग-अलग चीजें हैं। यह विभेद महत्त्वपूर्ण है और लेखकने इसके माध्यमसे नयी कविताके समझनेका सूत्र दिया है। लेखकके अनुसार नया विषय चुननेपर भी वस्तु पुरानी रह सकती है और विषय पुराना रहनेपर भी वस्तु नयी हो सकती है। इसका मतलब यह हो सकता है कि आधुनिक शीत-युद्ध अनास्था तथा शान्ति आदिकी समस्याएँ यद्यपि नये विषय हैं पर कविकी संवेदनशीलता इनके प्रति मध्ययुगीन आस्थावादी हो सकती है। इसी प्रकार 'महाभारत' की कथाकी पुरानी समस्याओं (विषय) को आधुनिक संवेदनशीलताके आधारपर काव्यकी वस्तु बनाया जा सकता है। परन्तु, लेखकने वस्तुकी नवीनताकी ही नहीं उसकी मौलिकताकी माँग कविसे की है विषय केवल नये हो सकते हैं 'मौलिक' नहीं – मौलिकता वस्तुसे ही सम्बन्ध रखती है। आगे वस्तुको ही सम्प्रेष्य मानकर मौलिकताको पुनः वस्तुकी प्रेषणीयता (अभिव्यक्ति पक्ष) से जोड़ दिया गया है – नये (या पुराने भी) विषयकी कविकी संवेदनापर प्रतिक्रिया और उससे उत्पन्न सारे प्रभाव जो पाठक-श्रोता-दर्शकपर पड़ते हैं और उनके प्रभावोंका सम्प्रेष्य बनानेमें कविका भाग (चेतन अचेतन और अवचेतन हो सकता है) – मौलिकताकी कसौटीका यही रूप है।

लेखकके दृष्टिकोणपर इस सीमा तक विचार करनेके बाद उसकी दुविधा और संकोचका वास्तविक कारण स्पष्ट होने लगता है। नये कवियोंमें अनेक हैं जिन्होंने नये विषयको ही नयी वस्तु समझ लिया है और इस प्रकारके विषय स्वीकार कर लेने मात्रसे अपने कवि-कर्मके दायित्वका निर्वाह मान लेते हैं, यहाँ उनकी मौलिकता मान भी जाती है। पर नयी कविताकी यह वास्तविक वृद्धि नहीं है इससे उसके बारेमें विभ्रम ही उत्पन्न होता है। यहाँ ऐसे कवियोंका भी उल्लेख किया जा सकता है जो नयी भाषा

तथा उनमें (अन्य कवियोंसे उधार लेकर) वे सम्पूर्ण मौलिकताका आभास देते हैं। इन दोनों बातोंके कवियों और कविताओंका एक साथ जिक्र आ सकता है। वस्तुतः नयी कविताके सम्बन्धमें यह विभ्रमकी स्थिति उनके समीक्षकको सन्देह और दुविधाकी स्थितिमें डाल सकती है और 'दूसरा सप्तक' के संकलनमें अज्ञेयकी यह सब स्थिति है तो आश्चर्य नहीं। लेकिन यह स्थिति बड़ी चिन्ताकी बात नहीं मानी जा सकती क्योंकि समसामयिक काव्य-प्रवृत्तिके सम्बन्धमें यह सहज बात है और यही उनके कहनेकी बात है कि इस ढाँचाबन्दीके बीचमें मौलिक तत्त्वोंका समुचित प्रतिपादन किया जा सके।

पर वास्तवमें लेखककी दुविधाका एक दूसरा स्तर भी माना जा सकता है। 'तार सप्तक' के प्रकाशनके समय अज्ञेयने अनुभव किया था कि संकलित कवियोंमें समानता और प्रयासकी एक आधारभूमि है यद्यपि सबमें अपने विचारों और मान्यताओंमें उनमें बहुत मतभेद है। सच बात है कि यह जिस नयी काव्य प्रवृत्तिको लेकर तथा प्रतीक बनाकर प्रयत्न करता आ रहा है उसमें वस्तुतः युगकी सम्पूर्ण विविधता प्रतिबिम्बित हुई है। पाश्चात्य समाजमें मार्क्सकी मध्ययुगीन विचारधाराके बाद बड़ा भारी उत्पात हो गया है। यथार्थमें बाहरकी स्थितियोंका सामने रखकर उनको भी अपेक्षित यथार्थवादी दृष्टिकोण दिया गया है। और इस युग कवियोंके पाश्चात्य आधुनिक सब स्थिति तक पहुँचते हैं उसमें कारण है। स्पष्टतः नहीं कि यह अनुकरणमात्र किया जा रहा है बल्कि नयी कविताने कवियोंके संसारके सारे देशोंकी एक स्पष्ट छाप ग्रहण कर लिया है। और अब यह हमारे अस्तित्वका प्रश्न भी है। पाश्चात्य नई विचार-सरणियोंको इस तरह मान कर ले लेना चाहते हैं और यदि चाहते हैं कि हमारी विचार-पद्धति भारी संकटमें आ जाती है। उधर यह हम अपनी परम्पराओंमें भी कुछ ग्रहण करते हैं और तब दिखाई यह स्पष्ट ठीक नहीं समझ पा रहे हैं कि हम किस परिस्थितिमें स्थित हैं।

साहित्यिक आन्दोलनोंके विषयमें भी यही सत्य है। योरोपके आधुनिक साहित्यसे हमारे आधुनिक साहित्यकी इस अर्थमें समता नहीं हो सकती है। वहाँका आजका साहित्य अपने ऐतिहासिक क्रममें निश्चित भावबोधको व्यक्त करता है। आधुनिकताकी यही दृष्टि योरोपके गहरे व्यापक कारण हमारे सामने हैं, पर इसके साथ ही हमारे अन्दर अनेक विरोधी संस्कारोंकी स्थिति है, अनेक प्रकारकी चिन्ताधाराओंका संगम है। यही कारण है कि नयी कविताके अन्तर्गत 'जीवन', 'सत्य' अथवा 'वास्तविकता' के न जाने कितने आयाम एक साथ उभरते रहे हैं। इस नयी दृष्टिके अन्तर्गत नव्यमानवतावाद, नव्यस्वच्छन्दतावाद, नव्ययथार्थवाद, नव्यप्रकृतिवाद, नव्यरहस्यवाद तथा नव्यप्रभाववाद आदि जिन्हें अंगरेजीमें नियो रोमैण्टिसिज्म, नियो-रियलिज्म, नियो-नेचुरलिज्म, नियो-मिस्टिसिज्म तथा नियो-इम्प्रेशनिज्म कहते हैं, एक साथ उपस्थित हो गये हैं। अज्ञेयने नयी कविताके आन्दोलनके अन्तर्गत इन सभी प्रवृत्तियोंको एक साथ समाहित किया है। और उनके लिए यह कठिन भी नहीं रहा है। अन्यथा यह जिस नयी कविताका प्रतिपादन करते हैं, उसमें 'वस्तुकी अपनीयता' या मौलिकता ही बड़े कविकी कसौटी है। इसी कारण कविकी महत्ताकी जाँच 'सम्प्रेषणके साधनों' और उनके प्रयोगोंकी पड़ताल से की जा सकती है। उन्होंने आस्था या मानदण्ड प्रस्तुत किया है, वह युग-युगकी कविताके सम्बन्धमें समान रूपसे सच हो सकता है। आजकी कविताके सम्बन्धमें उनका कहना है कि आजका यथार्थ क्योंकि सबसे नया है अतः वस्तु-सत्यके रूपमें उसे ग्रहणीय बनानेके लिए नये प्रयासोंकी आवश्यकता है।

इधर कई नये कवियों तथा नयी कविताके समीक्षकोंने आधुनिकताके सन्दर्भमें नयी कवितापर विचार करनेका प्रयत्न किया है। उन्होंने आधुनिकताको मात्र 'बदलती हुई बाह्य वास्तविकता' न मानकर आजके यथार्थ जीवन ('जीवित सत्य') की उपलब्धिके रूपमें ग्रहण करनेकी कोशिश की

है। आधुनिकताके मूल्यगत प्रश्नके साथ मानव-मूल्योंका सवाल भी उठता है। यहाँ संक्षेपमें मात्र यह माना जा सकता है कि मूल्य काव्य-वस्तुके रूपमें ही नयी कविताकी मौलिकताके प्रतिमान हो सकते हैं, मात्र विषयके रूपमें नहीं। जीवनका यथार्थ काव्य-विषय भी होता है और काव्य-वस्तु भी अर्थात् यथार्थको संवलित तथा प्रेरित करनेवाले मूल्योंको वस्तुसे अलग नहीं किया जा सकता। यह अवश्य है कि मूल्योंके प्रश्नपर उलझ-कर कुछ कवि तथा समीक्षक सामाजिक मूल्योंके आधारपर ही काव्यके मूल्यांकनका आग्रह प्रकट करने लग पड़ते हैं, जो निश्चय ही नयी कविताके मूल्यानुभूतिशून्य कवि-समीक्षकोंके नकारात्मक दृष्टिकी बात है।

प्रस्तुत संकलनकी 'भूमिका' हमको नयी कविताको समझनेमें अधिक दूर तक सहायक सिद्ध होती यदि इसमें अन्तर्निहित दृष्टिकी आधुनिकताके सम्बन्धमें किंचित् अधिक व्याख्या होती। काव्यकी मौलिक प्रवृत्ति क्या है? और काव्यका क्या रूप रहता नहीं है? इन प्रश्नोंका उत्तर इसमें मिल जाता है। पर आजकी नयी कविता आधुनिक दृष्टिसे पिछले युगोंसे किन अर्थोंमें भिन्न है, उसकी मौलिक प्रवृत्ति क्या है, उसकी प्रत्यक्ष यथार्थ चेतना मूल्य है, उसका दायित्व क्या है और वह पिछले युगकी कविताके किस प्रकार भिन्न माना जा सकता है, उसका यथार्थ-वास्तव प्रक्रिया क्या है आदि अनेक प्रश्न हैं जिनसे 'नयी कविता' का प्रश्न नहीं है करार दिया नहीं जा सकता। इस 'भूमिका' में ऐसे सूत्र हैं जिनसे व्यापक रूप प्रश्नोंकी व्याख्या की जा सकती है, क्योंकि व्यापककी दृष्टि व्यापक और गहरी है। पर ऐसा लगता है कि व्यापक भूमिका और संकलन है कि इन प्रश्नोंकी ओर बढ़ते ही नयी समस्याएँ सामने आ गयी हैं।

सामान्य रूपसे संकलित कवियोंके विषयमें स्वयं सम्पादकका यह कहना नहीं है कि 'किस स्तर या कोटिके ये कवि हैं' उसके यही गतिशील या गहन अतिरिक्त उत्तरदायित्व है। पर इतना तो माना ही जायगा कि ये

सब नयी कविताके उन्मेषके महत्त्वपूर्ण कवि हैं। इस विषयमें भी मतभेद हो सकता है व्यक्तिगत रुचिका भी और आधुनिकता सम्बन्धी दृष्टिका भी। क्योंकि सम्पादकने आधुनिकताके विषयमें 'वस्तुकी प्रेषणीयताकी मौलिकता' से अधिक व्याख्या नहीं करना चाहा है अतः इस चुनावके सम्बन्धमें भी क्या कहा जाय! यही बात कविताओंके चुनावके बारेमें भी कही जा सकती है। लेकिन कविताओंके बारेमें 'भूमिका' से यह सहायता ली जा सकती है कि कुछ कवियोंकी कई कविताओंमें भाषा शैली मात्र नयी है विषय भी पुराना वस्तु भी पुरानी। नया विषय पर पुरानी वस्तु तो अनेक कविताओंमें मिलेगी। कम-से-कम एक या दोको तो छोड़ भिन्न कविताओंके आधारपर इस दृष्टिसे भी नया कवि मानना कठिन हो जायेगा। पर यदि कोई यह दलील दे कि मानवके जीवनमें जो भी है (रूमानी प्रेम मानस रहस्य आकर्षण आदि) वह नया विषय है और आज जिस स्तरकी भी हमारी संवेदना है वह नयी वस्तु हो सकती है तो फिर आज कुछ भी कहना कठिन हो जायेगा। हाँ यह विश्वासके साथ कहा जा सकता है कि इस संकलनमें सभी कविताएँ सहीक बराबर हैं जिनमें विषयको ही वस्तु समझा गया हो। सम्भवतः इसी कारण मदन वात्स्यायन और सर्वेश्वर दयालकी कुछ उत्कृष्ट कविताएँ इस संकलनमें स्थान न पा सकी हों क्योंकि उनमें विषयका (आधुनिक सन्दर्भका) आग्रह अधिक जान पड़ता है।

इस संकलनकी प्रस्तावनामें कवियोंके वक्तव्योंका भी महत्त्व कई दृष्टियोंसे है। आधुनिक कविताको समझनेके लिए कविकी रचना प्रक्रियाका अनुसरण करना सहायक माना जाता है और ऐसी स्थितिमें कविके व्यक्तित्वका निखरना आप भी उपयोगी होगा। इस दृष्टिसे 'तार सप्तक' से 'दूसरा सप्तक' और 'दूसरा सप्तक' से 'तीसरा सप्तक' के वक्तव्य क्रमशः कम महत्त्वके हैं जब कि स्थिति उलटी होनी चाहिए थी। 'तीसरा सप्तक' के कवि अपने आत्म-परिचय तथा वक्तव्य दोनोंमें अधिक स्पष्ट हो

गया है। इस कारण न उसका सहज व्यक्तित्व उभर सका है और न सरल वक्तव्यमें उसकी अपनी दृष्टि स्पष्ट रूप व्यक्त हो सकी है। प्रायः जो नयी कविता सम्बन्धी वाद-विवादकी ओर इसका ध्यान कम गया है या ये कविताके विषयमें उलझ गए हैं। मध्य काव्यशास्त्रका वर्गीकरण और विश्लेषणात्मक [illegible] [illegible] नयी कविता अथवा उसकी कविताकी समझमें काव्यका व्यावहारिक सहायक हो सकते हैं? उदाहरणार्थ मि॰ 'आउट लाइन्स' मूल्यांकनका प्रतिमान बिम्ब-निर्माणकी प्रक्रिया पर मानता है और उसका सारा बल [illegible] [illegible] व्याख्या है। [illegible] वक्तव्य उनकी अपनी कविता तथा नयी कविताकी समझकी दृष्टिसे अधिक महत्त्वका है। आजकी कविताने वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण स्वीकार किया है। उसके अनुसार वह 'मनुष्य और उसका परिवेश' है या जीवन का किसी पूर्वग्रह वश [illegible] करके नहीं देखती बल्कि उसके प्रति एक सहानुभूति [illegible] करता है। और काव्यमें भी विज्ञानका यह सहज रूप है जो किसी भी वस्तुका स्वयंमें [illegible] न मानकर उसे अपने अन्तर तक पहुँचने का साधन मानता है। साहित्य [illegible] वैज्ञानिक काव्य ठीक परिप्रेक्ष्य भी उभर सका है पर उसमें नयी कविताके विषय और वस्तुके सम्बन्धित [illegible] मूल्योंका निर्देश करता जाता है। वस्तुकी मौलिकता मानव विवेक व्यक्ति स्वातन्त्र्य अर्थ-सम्बन्धी परिभाषा दूसरी [illegible] रहा या इतिहास आदि। परन्तु इस प्रकारकी [illegible] [illegible] कठिन हो जाता है क्योंकि सम्भव है कि इसमें [illegible] [illegible] [illegible] भिन्न सकती है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कविताके [illegible] [illegible] गया था। जिसका कोई प्रश्न नहीं था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] वस्तुको [illegible] [illegible] देना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] माध्यम। [illegible] [illegible] स्पष्ट है कि उसका इस प्रकारकी [illegible] भिन्न है

वस्तुत अपनी रचना-प्रक्रियाकी व्याख्या करना सबके बसकी बात है भी नहीं। प्रयागनारायणने कविताकी व्याख्या 'अभिव्यक्ति' के रूपमें करके कहाँतक नयी कविताको समझा या समझाया है कहा नहीं जा सकता।

इस संकलनकी अधिकांश कविताएँ ऐसी हैं जिनसे नयी कविताकी उपलब्धिके किसी-न-किसी आयामको समझनेमें सहायता मिलती है। इनके माध्यमसे आधुनिकताके उभरते हुए नये-नये परिप्रेक्ष्य हमारे सामने आते हैं। परन्तु जिस प्रकार आजकी नयी कवितामें दृष्टि नयी होते हुए भी अनेक स्तरकी संवेदनाएँ मिल-जुल गयी हैं इस संकलनमें उन सभी स्तरों-का प्रतिनिधित्व है। इस प्रकार प्रस्तुत संकलन नयी कविताके विकास क्रममें अपना महत्त्व रखता है और यह सम्पादककी सफलता है[1]।

---

[1] यहाँ संकलनकी कविताओंपर विचार नहीं किया गया है। इसमें कवियोंद्वारा कविताएँ हमारी परिचित हैं और नयी कविता सम्बन्धी अनेक विचार विभिन्नोंमें इसका उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत समीक्षा-दृष्टिसे कविताएँ नहीं वरन् संकलन रहा है।

युग-जीवनकी सम्पृक्ति

हिन्दी साहित्यके इधरके दशकोंमें आधुनिक भावबोधके स्तरोंमें भारी परिवर्तन और परिवर्धन परिलक्षित होता है। विशेषकर यह स्थिति काव्य में अधिक है। इसका कारण है कि आधुनिक हिन्दी काव्य विकासकी अनेक प्रवृत्तियोंको सीमित अवधिमें पार करनेमें प्रयत्नशील रहा है। उसका यह प्रयास भावबोधके स्वरूपात्मक रूप रूपमें जितना संलग्न रहा है उतना ही शैली शिल्प और अभिव्यक्तिके क्षेत्रमें भी लक्षित किया जा सकता है। यद्यपि इस विकास-क्रमकी संगति ([illegible]) क्रममें प्रक्रिया पाश्चात्य काव्य-धाराओंकी संक्रान्तियोंसे समवर्ती होनेके कारण अधिक जटिल है पर मुख्यतः इसकी मूल प्रेरणा कविको अपने युगके सम्पर्कमें विकसित हुए भावबोधसे मिली है। हमारा जन-जीवन जब ही संसार व्यापी मानवीय मूल्योंके संकट उनकी संक्रान्ति और नये मूल्योंके अन्वेषण की उत्पन्नावस्थामें परिलक्षित रहा हो पर हमारा प्रबुद्ध साहित्यकार इसके प्रति जागरूक ही नहीं है संवेदनशील भी हुआ है। पाश्चात्य काव्य भावबोधके विकसित होनेमें और कारणोंसे आरम्भिक स्तरमें उसके प्रतिबिम्ब होनेमें सौभाग्य समय रहा है यद्यपि आरम्भिक चरणमें यहाँ भी वैज्ञानिक प्रगतिके साथ सामाजिक मूल्योंके सम्बन्धोंकी स्थिति नहीं है उसमें आत्मानुभूतिमें [illegible] और तीव्र प्रसार आने लगे हैं। किन्तु हमारे साहित्य में यह ऐसा ही नहीं हुआ कि यह मार्ग क्रम क्रम सर्वथा प्रतिफलित हुआ हो। इसमें अनेक स्थितियाँ व्यवधायक रही हैं। स्तरपर लक्षित हुई हैं।

तथा इसलिए भी हुआ कि हमारे यहाँ ऐतिहासिक दौराहे समान्तर काव्य विकासकी अनेक स्थितियाँ अनेक स्तरपर एक साथ समान्तर हुई

---

१ [illegible]।

है। पर हमारे कवि अपने युग-जीवनकी सीमित प्रक्रियासे कहीं व्यापक परिवेशमें अपनी काव्य-प्रेरणाएँ ग्रहण की हैं। इस कारण उसके काव्यमें यह भावबोधके संक्रमणकी स्थिति विषम रूपसे मिलती है। इसके परिणामस्वरूप एक ओर हिन्दी नये काव्यके भावबोधका स्तर सामान्य युग जीवनके स्तरसे आगेका है जिसका सहयोग कविके समान अधिक प्रखर संवेदनशील पाठक ही कर पाते हैं और दूसरी ओर काव्य-प्रवृत्तिको निश्चित भावबोधके स्तरपर उपलब्ध होनेका पूरा अवसर नहीं मिल पा रहा है। नयी कवितामें जितनी शीघ्रतासे इन स्तरों और आयामोंका परिवर्तन देखा जा सकता है उतनी ही सरलतासे अपने लिए अपनी रूढ़ियाँ बनानेकी स्थिति भी देखी जा सकती है। यह उसकी प्रक्रियाका ही जैसे *अंग हो गया हो।*

कुछ विचारक हिन्दीके प्रयोगशील काव्य और जिसको अब नया काव्य कहने लगे हैं इनमें अन्तर करना पसन्द नहीं करते। प्रयोगकी सम्भावनाओंकी दृष्टिसे इस काव्यमें प्रयोगशीलताकी स्थिति आज भी परिलक्षित है क्योंकि जिस विस्तारसे काव्यमें भावबोधके नये आयामोंको उद्घाटित करनेका कवि प्रयत्न कर रहा है उसीके अनुसार उसे शैली तथा शिल्पके आयतनमें संलग्न रहना भी है। परन्तु एक अन्तर हिन्दीके ऐतिहासिक स्थिति प्राप्त प्रयोगशील काव्य और आजके नये काव्यमें जरूर है। यह अन्तर किन्हीं विशिष्ट कवियोंमें कुछ कवियोंको अलग करके देखने *के लिए आवश्यक नहीं है क्योंकि ये विशिष्ट कवि* इस काव्यान्दोलनके साथ आज भी सम्बद्ध हैं। यह हिन्दी काव्यके मनोभावको समझनेके लिए ही अधिक सार्थक है।

छायावादी काव्यकी काल्पनिक आदर्शोन्मुखी गम्भीरता और गरिमा तथा छायावादोत्तर रोमैण्टिकों और प्रगतिवादियोंकी यथार्थोन्मुखी अतिभार तथा काल्पनिक भावावेगसे मुक्त होकर सहज और यथार्थ काव्य भूमिका अन्वेषण करना प्रयोगशीलोंकी दिशा थी। उद्देश्यकी गरिमामयी

सम्मोहनता, यथार्थोन्मुखी मानवकी व्यथा तथा काल्पनिक पलायनवादिता और गतिशील भावावेगकी स्थितियोंमें काव्यका व्यक्ति और समाज जीवन पर प्रतिष्ठित करनेका आग्रह भी इस प्रयोगशीलताका प्रधान स्वर था। इसी कारण प्रयोगशीलतामें सभी मत और विचारोंके कवि अन्वेषणकी स्थितिमें एक साथ चल सके थे।

परन्तु नयी कवितामें अन्वेषणकी स्थितिसे आगे नये निश्चित आविष्कृत हुए हैं। यथार्थकी नयी दृष्टि विकसित हुई है। मध्यमवर्गके साथ नये मानवकी सम्भावनाका आभास मिला है। इतना ही नहीं, नया कवि भावनात्मक इस नये स्तर और आयामोंको उद्घाटित करनेके उपयुक्त भाषा, शैली तथा शिल्पका अन्वेषण करनेमें सफल भी हुआ है। इस स्थितिको इस प्रकार भी रखा जा सकता है कि जब आधुनिक काव्य प्रयोगशीलताकी स्थितिसे इस आधार पर पहुँचता है तो उसे नयी कविता कहा जाने लगा है।

सर्वेश्वरका काव्य-व्यक्तित्व 'नयी कविता' के इस तत्त्वोंको समझनेमें सहायक है। वस्तुतः सर्वेश्वरकी कविता प्रयोगशील काव्यके इस नये मानवका प्रसाद है, उसमें प्रयोगशीलताको स्वीकार ग्रहण किया है, उसीमें वह मानवकी नयी भाव भूमियाँ ग्रहण करती है। यह ठीक है कि मानवकी दृष्टिमें व्यथाका अनुभव और उसकी उपलब्धि, स्थितियोंकी गाथा और [illegible] अभिसार, भविष्यकी गाथा और उसपर सम्बन्ध समान महत्त्व रखते हैं। पर काव्य-सम्बन्धोंको समझनेके लिए यह अन्तर ध्यानमें रखना होगा। सर्वेश्वर तथा उनके ही कुछ कवियोंके काव्यके आधारपर इस अन्तरको सहजमें समझा जा सकता है और एक प्रकारसे नये काव्य-सम्बन्धोंका विकास इन्हीं कवियोंमें प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

सर्वेश्वरने 'काठकी घण्टियाँ' में अपनी कविताओंके चयनके क्रममें सामान्य काम लिया है। कविके सम्पूर्ण व्यक्तित्वकी दृष्टिसे [illegible] कुछ हानि हो, पर इससे विकासक्रमको समझनेके लिए दृष्टि भी मिलती है। [illegible]

होती है। छायावादोत्तर रोमैण्टिकोंने भावावेगका बड़ा बवण्डर बाँधा था जो वर्तमान युगकी कठोर यथार्थ भूमिसे टकराकर हवा निकले बालकके पिचके गुब्बारेके समान लगता है। रोमैण्टिक भावावेगकी इस परिणतिमें कवियोंके मनका रोमैण्टिक मनोभाव विषाद अवसाद निराशा तथा निस्सारतासे युक्त हो गया। हिन्दीके गीतकारोंने जिस प्रकार उस रोमैण्टिक भावावेगको एक छिछले स्तरपर ग्रहण किया था उसी प्रकार वे इस मनःस्थितिका ऊपरी स्पर्श-मात्र कर सके। इससे अधिक उनसे आशा की भी नहीं जा सकती थी इसकी रूढ़ियोंका विकास वे भले ही आज भी करते जा रहे हैं।

परन्तु रोमैण्टिक अवसादका यह मनोभाव आधुनिक युगके कवियोंमें वैयक्तिक जीवनकी यथार्थ विषमतासे उद्भूत है युग जीवनकी कठोरतासे व्यक्तिकी कोमल भावनाओंकी टकराहटका परिणाम है। सर्वेश्वरने रोमैण्टिक मनोभावोंकी निर्भ्रान्तिकी इसी स्थितिमें ग्रहण किया था। प्रारम्भमें यह भ्रम टूटनेकी स्थिति आधुनिक जीवनके यथार्थसे सम्पृक्त दृष्टिका परिणाम थी जो वस्तुओं और स्थितियोंके प्रति काल्पनिक मोह तथा भावुकतासे मुक्त करनेमें सहायक हो सकती है। परन्तु प्रयोगशील तथा नये कवियोंमें अधिकांशके मनमें यह निर्भ्रान्ति स्वयं अपने मोह तथा भावुकतामें रोमैण्टिक मनोभावसे प्रतिफलित हो गयी है। इस क्षेत्रमें सर्वेश्वरकी स्थिति बहुत कुछ ऐसी है और यह मनोभाव निरन्तर उनके काव्यमें नया बना रहा है जैसे कविको इससे मुक्ति नहीं। ऐसा लगता है जैसे कवि स्वयं इस भावसे मुक्त होना चाहता भी नहीं।

कहीं-कहीं इस रोमैण्टिक मनोभावके साथ अवसादमय मृत्यु-चिन्ता ठण्डापन और निर्ममता है (ये तो परछाईं हैं जैसे आकाश ही है— यह मौन आदि)। कहीं यह अवसाद मात्र अतृप्ति और निराशाकी व्यंजना करता है (याद भी क्या राग पुराकिसका गीत विवशता)। वस्तुतः 'बाँसकी घाटीके एक कविकी मनःस्थिति' नामक कवितामें ऐसे ही रोमैण्टिक

कविकी समष्टि भावनाओंकी व्यंजना है

> फिर उस युग के कवि ।
> इन्द्र इस जिसकी कविता
> गाभूमा का था मदन गह
> जिसकी कविता ।

प्यारकी पीड़ा और निराशाका स्वर भी मुखर हुआ है (तन प्यासी आत्मा का मौन पुष्पमरियाँ सूखीं) । और उसकी स्मृति तथा उसकी क्षणिकताकी कसक भी बार-बार कविको खिन्न करती है

> प्यार का उन्माद जितना प्रबल
> पर जितना क्षणिक है ।

[धान्य ज्वालामुखी-सी तुम]

इसी प्रकार 'एक नयी प्यास' आलिंगन करो' तथा 'प्रेम मनोहर तीरा' आदि कविताओंमें कौने प्यारका मधुर कसक प्रेम कविको निरन्तर आकर्षित किए हुए है ।

सर्वेश्वरका प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण भी रार्ध्विक भावनाम मय प्रतिफलित है । जिन कविताओंका ऊपर उल्लेख किया गया है उनमें प्रकृतिक वातावरणका सहारा लिया गया है । सन्ध्याका धम 'भोर' तथा कम पत ऐसी कविताएँ भावगत वैविध्य ही प्रधान है । पहली दोनों कविताओंमें आगत भी परम्परागत भावोंम उभरा है दूसरी कविताम भावबोध तथा प्रतीकयोजना नवीन है ।

पर्याप्त सर्वेश्वरके काव्यकी यह भावभूमि है जिसका सम्बन्ध निकटसे लगता है पर यह उनकी कविताकी वास्तविक भूमि नहीं है । पर अन्यत्र कहा है कि उनकी कविताएँ इस बीते युगकी पूर्ण अनुगूँज मानी रहे । समसामयिकताका दायित्व तथा बोद्धिकताका भार सर्वेश्वरकी कविताम

जिस आधुनिक संवेदनके स्तरपर व्यक्त हुआ है वैसा आजतक किसी कविमें नहीं मिलता। और इन दोनों प्रधान तत्त्वोंके अनुरूप सर्वेश्वरकी भाषा और शैली भी है। इस अर्थमें वस्तु और शिल्पका इतना पूर्ण सामंजस्य कविकी प्रधान उपलब्धि है।

वस्तुतः समसामयिक होना भर आधुनिकता नहीं है और कुछ विचारक समसामयिकताको मात्र इतिहास मानकर काव्यानुभूतिके स्तरपर स्वीकार करनेमें हिचकिचाते हैं। इसका कारण है कि प्रगतिशील लेखकोंने सामाजिक यथार्थके नामपर समसामयिकताके संवेदनको विकृत किया है। परन्तु समसामयिक जीवन और उसकी समस्याओंकी ओर आकृष्ट होना व्यक्तिगत सम्बन्ध अथवा सामाजिक परिवेशके रूपमें आधुनिक दृष्टि है। यह आधुनिक भावबोधका अंग तभी बन पाता है, जब कवि उसका साधारण अथवा अतिरिक्त दायित्वके रूपमें न ग्रहण कर अपने काव्यानुभवका अंग बनानेमें सक्षम हो। कविके व्यक्तिगत संवेदन और भावबोधका परिष्कार और विकास अपने युग-जीवनके सन्दर्भमें होता है। यह अलग बात है कि बसे हुए या नये भावबोधको अपने काव्यानुभवके रूपमें संप्रेषित करनेमें कवि समसामयिकतामें बँधकर रह न जाय। पर उसके अनुभव की सीमा विस्तारके लिए आवश्यक नहीं है कि युग-जीवनके सन्दर्भोंसे काव्यको अलग रखा जाय। केवल आवश्यक है कि इन सन्दर्भोंको गहन आत्मानुभवके स्तरपर ही ग्रहण किया जाये।

सर्वेश्वर समसामयिक होकर भी अपने युग-जीवनकी गहरी सम्पृक्ति का गहन अनुभवके स्तरपर ग्रहण करनेमें समर्थ हो सके हैं। नये काव्यमें उनकी यह बहुत बड़ी सफलता है। उनके अनुभवमें व्यक्ति और युग जीवन इस प्रकार सम्पृक्त हैं कि चरम अनुभूति और संवेदनके क्षणोंमें भी युग-जीवनके स्पन्दन सम्मिलित हो गए हैं। 'ताँबेके फूल' तथा गीला अमर — जैसी कविताएँ व्यक्तिगत अनुभूतियोंको व्यक्त करनेवाली कविताओंमें यह भाव व्यंजित है। सब प्रकार लिखी गयी कविताओंमें व्यक्तित्व

के सहजतम अनुभवकी सामाजिक समस्या पर आत्मानुभव साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि व्यक्तिके संदर्भमें उसका व्यापक संदर्भ समाहित हो गया है।

आजके युगमें व्यक्ति अपने व्यक्तित्वके प्रति जागरूक है। यह व्यक्तित्व का बोध सर्वत्र भी मिलता है पर कवि कभी अपने व्यक्तित्वका समाजके युगके परिवेशको चुनौती देनेवाले रूपमें ग्रहण नहीं करता है। अपनी भाषा आत्म-प्रकाशन भी कवि अपने व्यक्तित्वको समष्टिगत व्यापक चेतनाकी अभिव्यक्तिका माध्यम स्वीकार करता है। शब्दकी परिधियोंमें अपने व्यक्तित्वको इसी माध्यम बननेके लिए आकुल है—

> जितना भी ध्वनि पास है
> इन सूखी डालोंमें
> भरा
> था कलकी पत्तियां
> हरा।

आत्मसाक्षात्कार — ऐसी कविताओंमें कवि अपने व्यक्तित्वका जो पुन संस्कार करता है उसमें सामाजिक भावनाएं संपृक्त और व्यक्तित्व ही उभरता है।

युग जीवनकी सर्वतोमुख व्यापक सर्वत्र दायित्वका गहन अनुभव मिलता है। यद्यपि उनके कभी इन दायित्वोंको अपनी सहज प्रतिभाके निम्न नहीं माना। यही कविताकी यह दृष्टि—कविता प्रथम और अन्तिम दायित्व कवि-सम्मत हो है सर्वत्र शान्तिकी भावनाको इसी प्रकार संपन्न करता है। उनका अपना संघर्ष और आत्माभिव्यक्तिका माध्यम इस का सूत्रको सार माना है जो राजनीतिक व राष्ट्र व्यक्तित्वका सबल अपनी ओर है और वस्तुतः युग-युगकी मानवताका प्रसार है। यह है जो इनका

होकर कभी पूर्णतः व्यक्त नहीं हो पाता और मानवका व्यक्तित्व उसकी अनुकृति-मात्र है :

सब कुछ कह लेने के बाद
कुछ ऐसा है जो रह जाता है
तुम उसको मत वाणी देना।

वह मेरी कृति है
पर मैं उसकी अनुकृति हूँ
तुम उसको मत वाणी देना।

कवि युग यथार्थको ग्रहण करना अपना कवि-धर्म मानता है। रामै स्टिर्नीकी भाँति 'गम सहलाकर अपना सुला देना या पिचके गुब्बारोंको दम भर फुला देना' वह अपना कवि-कर्म स्वीकार नहीं करता (मैंने कब कहा)। वह नगरकी 'गहरी चोटका अनुभवी नया कवि' है। 'प्लेटफ़ार्म के बिखरे हुए चित्रों और बिम्ब-विधानसे संवेदनकी जो सघनता उत्पन्न हुई है उसका संकेत और व्यंजना व्यक्तित्वके सूक्ष्म-ग्राहक होनेकी ही है। वह सघनतम क्षणोंमें अपने व्यक्तित्वकी सार्थकता इसीमें मानता है कि

अनुभव करूँगा—
इन सब के साथ
कहीं मैं भी बँधा था
कहीं मेरा भी भाग था।

इन व्यवस्थाओंके व्यापक अनुभवमें ही उसका व्यक्तिगत अनुभव पूर्ण हो गया है। अपनी अभिव्यक्तिकी आकांक्षाके चरम क्षणोंमें भी कविने अपने संगोंकी माँग ऐसे सजनके लिए ही की है

छोड़ के जिस्म सई बदलते हुए मगरूर मन को
छोड़ जिस्म न सई, बदन परिन्दों का गगन को
फिर न पलकें गिरा आँसू छिपा गरदन मोड़,
कहे 'इस तूफान ने मेर दिल पर तोड़ ।

शमशेरका विशिष्ट बिम्ब-विधान या प्रतीक-योजनाका आश्रय सम-स्थलोंपर मिला है । पर 'बाँदी हाउसमें एक मलोड्रामा' में इसी स्तरपर कवि आधुनिक मानव-मूल्योंकी व्यंजना करनेमें समर्थ हुआ है ।

सर्वेश्वरने नयी कविताके साथ जीवनकी दृष्टि जिन मूल्योंके आधारपर संगठित करनेकी चेष्टा की है उसमें यथार्थका उल्लेख किया जा चुका है । यह यथार्थ वस्तुतः सारे जीवनका मौलिक भावबोध प्रस्तुत करता है । इस स्थितिमें पुराने मूल्योंका विपर्यय भी दिखाई देता है । 'सुबह हुई' में सुबह और शामके दो चित्रोंके माध्यमसे प्रचलित दृष्टिकोणके अन्तरको व्यक्त किया गया है । सुबह गौरैयाके बच्चोंसा प्रसन्न है और शामको पीठपर भारा लादे ऊँट है । सुबह और शामकी प्रचलित दृष्टिकोणका कवि यों रखता है

आज हम प्रगति करें ?
मेरे लिए
[illegible] का बच्चा ऊँट हो गया

इसके अतिरिक्त व्यक्तिकी भावना (अनुभव) अथवा अर्थगत (दो आगरेकी बत्तियाँ) स्त्रीके अवसर साधक होना (आज फर्स्ट बार) तथा मरना ही जीवन स्वीकार करना (तुम बढ़ो) आदि इन मूल्योंकी व्यंजना है जो अत्यन्त आधुनिक है और सन्दर्भमें नव है ।

आत्मा एक सहजनिया है [illegible] इसमें अनेक विरोधाभास अर्थ [illegible] और विकृतियाँ हैं । [illegible] संयुक्त [illegible] कवि [illegible] बहुत [illegible] करता है [illegible] में न केवल [illegible] भावधारा

गहनतम स्तर उद्घाटित हुए हैं वरन् इसमें इस युगकी समस्याओंके प्रति मार्मिक जागरूकता है। और क्योंकि इन समस्याओं स्थितियों और प्रश्नोंको कविने कवि-कर्मके अन्तरंग संघर्ष तथा अनुभवके स्तरपर ही ग्रहण किया है अतः इसमें निहित असंगतियों विकृतियों तथा विरोधाभासोंका विसंगतिजन्य व्यंग्य ही प्रधानतः उभरा है। इसी स्तरपर यह समसामयिकताको व्यापक आधुनिक काव्यानुभव बनानेमें समर्थ हुआ है।

आजकी दुनियामें मूल्योंका विपर्यय हो गया है। यह विषमता यहाँ कुतूहल जगाती है 'धान्य नहरोंके आँसुओंपर बना' करना पसन्द करती है और ऊपरी दिखावटी संवेदनापर विश्वास करने लगी है। आजकी दुनियामें 'विषमता मूल और मृत्यु आवश्यक बनाकर सजानेपर ही पहचानी जाती है। इस सारी स्थितिको अन्तमें कवि व्यंग्यके साथ अधिक स्पष्ट कर देता है

अच्छा नहीं है दुनिया
मैं फिर कहता हूँ
महज इसका
सौन्दर्य-बोध बढ़ गया है।

[सौन्दर्य-बोध]

इसी प्रकार 'दो नेक सलाहें' में कवि आजकी प्रतियोगिताकी दिखावटपर व्यंग्य करता है 'मरघटकी माटी' 'आगेकी चिड़िया' 'बड़ी टक' 'कलाकार और सिपाही' 'पीस पैमोला' तथा 'पास काटनेकी मशीन' जैसी कविताओंमें सर्वेश्वरने युद्ध शान्ति स्वातन्त्र्य आदि जैसी युगकी ज्वलन्त समस्याओंको ग्रहण किया है, मात्र समस्याओंके रूपमें नहीं। इसी कारण अपनी शक्ति-सीमा और सर्वेश्वरकी सफलतामें ये कविताएँ भावबोधके स्तर पर उनकी उत्कृष्ट रचनाओंमें हैं।

भाषा और शिल्पके क्षेत्रमें सर्वेश्वरकी उपलब्धि नयी कवितामें महत्त्व-पूर्ण है। भाषा तथा शिल्प-शैली काव्य उपकरण है और शैलीका आन्तरिक सम्बन्ध भावबोधसे स्थापित होता है। इस कविकी भाव-अनुभूतिका उसकी भाषा और शिल्पसे गहरा सम्बन्ध है। भावात्मक धरातल उसके सामान्य प्रचलित शब्दों तथा प्रयोगोंको कवित्व भावानुभवके स्तरपर उठा दिया है। नागरी एवं सभ्यता और ग्रामसभ्यता जीवनकी सामाजिक-सांस्कृतिक और मनुष्य-मात्र स्थितियाँ काव्य-वस्तु रूपमें स्वीकार कर उनके कारण सम्भव हो सकी है। और इन स्थितियोंको काव्यात्मक रूप देकर नाट-कीयता काव्य रूप भावाभ व्यञ्जना तथा सम्प्रेषणकी नयी शक्ति आ गयी है। सर्वेश्वरके प्रगीत नये हैं पर वे भावात्मक आवरण लिये हुए हैं। उनमें मनःस्थिति काव्य भावात्मक उत्कर्ष भावक स्थानपर परिवेश तथा मन प्रभावकी मार्मिक अनुभूति अधिक है। इस कविने विभिन्न स्थानपर परि-वेश अनुभवकी मार्मिकताको अधिक ग्रहण किया है। इस कारण इसका विश्व-विशाल परिवेश तथा विस्तारित भावात्मक संघटित है। जीवनकी परिस्थितियोंकी सहजता और भाषा तथा शिल्पसे इस नाटकीयता एवं काव्यकी विशिष्टता इसमें स्वीकार कर भय भय वर्षोंसे कुछ कवि आधुनिक भावबोधके नये आयाम उद्घाटित करनेमें समर्थ हुए हैं और कुछ एक स्तर एक रूढ़ि बन गयी है। वे इसको सर्वेश्वरके काव्यानुभवके स्तर पर उद्घाटित असमर्थ रहे हैं।

आधुनिक काव्यकी ऐन्द्रजालिक परिणति[1]

शमशेरकी स्थिति इतनी स्पष्ट और विशिष्ट रही है कि उनके कविता लेकर कभी प्रश्न नहीं उठाया गया, उनकी कविताके बारेमें कभी विवाद नहीं उठा। छायावादी प्रगतिशील और प्रयोगशील सभी कवियोंने समान रूपसे शमशेरको स्वीकृति दी है। इसका कारण है उनका व्यक्तित्व और काव्यके बारेमें शुद्ध कविका दृष्टिकोण।

जो व्यक्ति गजल, मुक्तक गीत, सॉनेट और छायावादी रोमैण्टिक, सुर्रियलिस्ट प्रयोगवादी तथा प्रतीकवादी काव्यकी रचना एक साथ करता रह सकता है, उसके लिए यह कह सकना सहज है, 'मेरे कविने कभी किसी 'फ़ार्म' शैली या विषयका सीमा-बन्धन स्वीकार नहीं किया। पैशन किन विषयोंपर लिखा जा सकता है, कौन-सी शैली 'चल रही है', किस 'वाद' का युग आ गया है या चल रहा है, मैंने कभी इसकी परवाह नहीं की।' ऐसे अन्य कवि भी हैं या हो सकते हैं जिन्होंने विषय, वस्तु और शैली-सम्बन्धी परिवर्तित दृष्टिकोण अपने विकास-क्रममें स्वीकार किया हो अथवा ऐसे भी कवि हो सकते हैं, जो व्यक्तित्वमें काव्य-बोधके ऐसे कई स्तर स्वीकार करते हैं जिनपर कवि विविध विषयोंको अनेक वस्तु-रूपों और शैलियोंमें समानान्तर ग्रहण करता चल सकता है। इनमें प्रथम वर्गके कवियोंकी स्थिति स्पष्ट है, वे एक स्थितिसे दूसरी स्थिति तक पहुँचते हैं और उस तक पहुँचनेके पहले पहली स्थितिकी सम्भावना उनके लिए समाप्त हो चुकी होती है। इन कवियोंकी उपलब्धिका मूल्यांकन इस बातपर निर्भर

---

१ शमशेरके प्रसंगमें।

कहना है कि उन्होंने जिस मात्रा तक पहली स्थितिकी सम्भावनाओंका अन्वेषण और अनुसन्धान किया है तथा दूसरी स्थितिको आत्मसात् कर सफलता उसमें जितना सामर्थ्य और सशक्त रहा है। दूसरे प्रकार कविता की स्थिति बहुत स्पष्ट नहीं है क्योंकि समकालीन काव्य-बोधपर कई स्तरों पर स्मरणीय रहना या तो सम्भव नहीं है अथवा उसमें कवि भाव बोधकी असम्पृक्तता अमोहिता और विशृंखलता ही प्रकट होती है। इस तीसरी स्थिति इन दोनों कोटि कवियोंसे भिन्न है।

कुछ और कविताएँ मैं कविके वक्तव्यसे इस स्थितितक प्रमाण पा सकता हूँ जिस विषयपर जिस रूपमें लिखना शुरू किया, मन जिस स्तर की रमा, भावनाओंने उस स्तरको लिया प्रतिबिम्बित अपनी आत्म अपनी हो वही मात्र मेरी कविता रही — उसके सम्बन्धमें किसी भी बाहरी आधार का आग्रह या अवरोध मन सहन नहीं किया। इस वक्तव्यसे यह स्पष्ट हो गया है कि सम्भवतः यही अपनी स्थितिका स्पष्टीकरण दे रहे हैं। पहले अंशमें जो किंचित् आग्रह ध्वनित होता है उसका समाधान इसमें हो जाता है। समग्र इस स्थितिका ऐसा भाव नहीं हो सकता कि अन्य जो किसी विशिष्ट या निश्चित रूप और शैलीमें लिख रहे हैं वे केवल किसी वाद प्रदर्शन या फैशनके फेरमें ऐसा कर रहे हैं। उनका तात्पर्य केवल इतना ग्रहण किया जा सकता है कि वह अपने काव्यमें प्रमुखता देते हैं अपनी निजी संवेदनशीलता भावात्मकता और मर्मस्पर्शिताको उसके लिए विषय वस्तु शैली और रूप-गठन गौण हैं। परन्तु अपने इस वक्तव्यमें समग्र यही बात स्वीकार कर लेते हैं जिसके कारण स्थिति कठिन है क्योंकि उपर्युक्त स्थिति या तो व्यक्तिनिष्ठ भाववादीकी हो सकती है अथवा व्यक्तिनिष्ठ प्रभाववादीकी। अन्यथा या तो विषयका महत्त्व स्पष्ट करना होगा अथवा वस्तुगत भाव उससे तथा रूप-सन्दर्भ कम रखना होगा। यह भी हो सकता है कि विषयके वस्तुगत शैलीके सहारा सर्वांगिण भावना ग्रथ अथवा शैली रूप-गठनमें विषय-वस्तुकी अभिव्यक्तिका स्वीकार किया

पाये। पर व्यक्तिगत अनुभवकी विशिष्टता और भावात्मक अभिव्यक्तिको प्रभाववादी प्रतीकवादी या रोमैण्टिक ही महत्त्व देता है।

शमशेरके शुद्ध कविका मूल प्रेरणा-स्रोत यही है और बावजूद अपने 'समाज-सत्य'के ममको पकड़ने के प्रयत्नके उन्होंने अपने कवि-कर्मके माध्यम से अपनी भावनाओं प्रेरणाओं और आन्तरिक संस्कारोंमें 'अपनेको ही पाने'का प्रयत्न किया है। पर यह आग्रहको पाला गया है जिसकी अभिव्यक्तिको कवि औरोंके समान महत्त्वपूर्ण मानता है और अभिव्यक्तिके बाद प्रत्यायनकी आवश्यकतापर बल नहीं देता? फिर कलाको कलाकारकी बहुत 'निजी चीज' स्वीकार करने और 'स्वान्तः प्रकाशित' भावित करनेके पीछे क्या भाव हो सकता है? इस वक्तव्यमें अँगरेजीके रोमैण्टिक, हिन्दीके छायावादियों और फ्रान्सके प्रतीकवादियोंकी ध्वनियाँ और भावनाएँ अनुगुंजित मिलेंगी। पर शमशेरकी अपनी विशेषता है कि वह बड़ी सरलतासे सहज ही अपनी व्यक्तिनिष्ठताके साथ सामाजिक दायित्वका समाधान कर लेते हैं और अपनी शुद्ध कवितावादी दृष्टिके कारण दोनों स्थितियोंके सामंजस्य या सन्तुलनकी आवश्यकता भी उन्हें नहीं होती जिसका प्रयत्न अन्य प्रगतिवादियोंसे भिन्न मत एवं दलके आन्दोलनों या दृष्टिकोणोंने किया है। वह स्वयं सारा भार प्रतिभा शक्ति और सामर्थ्यपर डालकर शुद्ध काव्य-की दुहाई देते हुए अलग हो जाते हैं। ऐसे कथनोंमें जिसमें उन्हें देन या मन स्थानसे स्थानपर महत्व अनुभव या अनुभूतिका स्तर अधिक उभरता है अन्तर्विरोधोंकी ओर ध्यान नहीं जाता। उनमें समाज-सत्यके ममको पकड़ना 'सामाजिक दायित्वके प्रथम उत्कृष्ट ऐतिहासिक या महान् छन्दोबद्ध प्रयोगोंकी रचनाशीलताका शुद्ध काव्यका रूप मानना 'कवितामें सामाजिक अनुभूतिको माध्यमसे ही महत्त्वपूर्ण स्वीकारना' और फिर अपनी रचनाओंके समर्थनमें अपनी असाधारणताके दावेका पेश न करनेकी विवशता — सब एक साथ उपस्थित होकर आकर्षक हो उठे हैं। वास्तवमें यह शुद्ध कवि दृष्टिका परिचायक प्रमाण है जो हमको अभिभूत करती है।

कवि-दृष्टिकी यह चर्चा टॉमसके काव्यको समझनेमें जिस प्रकार सहायक होगी उसी प्रकार उनके व्यक्तित्वका उल्लेख करना भी संगत होगा। टॉमस ऐसे हैं कि उनको देखकर कवि कहनेको बरबस मन होता है पश्चिमी उनको 'बार्ड' कहते हैं। ऐसा नहीं कि उनकी वेश भूषामें कुछ हो वरन् उनके व्यक्तित्वमें ऐसा आकर्षण है। जैसे उनका दृष्टिकोण शुद्ध कवित्व है वैसे ही उनके व्यक्तित्वकी अभिव्यक्तिमें भी शुद्ध कवि-भाव व्यंजित होता है। उनके सम्पर्कमें आनेपर सहज ही उनकी संवेदनशीलता आपका ध्यान और उत्साह अभिमुख करते हैं। व्यक्तित्वका यह सम्पर्क आकर्षित करता है और प्रभावित करता है। उनकी संवेदनकी शक्ति इतनी तीव्र और प्रखर है कि बोलते बात करते व्यवहार करते सदा लगता है कि वह अनुभव कर रहे हैं अपने व्यक्तित्वके किसी गहरे स्तरसे सारी स्थितिको संवेदनके साथ ग्रहण कर रहे हैं। यह प्रायः स्थितियों तक यहाँतक कि दूसरोंके व्यक्तित्व और भावनाओंपर अपने संवेदित व्यक्तित्वको ही प्रक्षिप्त करते हैं। लगता है जैसे वह प्रत्यक्ष-बोध तथा चिन्तन कल्पना सभीको अनुभूतिके माध्यमसे ही ग्रहण करते हों।

इस प्रसंगमें एक बातकी चर्चा करना अधिक भाव-बोधको समझानेमें सहायक हो सकता है। टॉमसकी कविता (जिसमें भी कथा-कृति)का सम्बन्ध इस अनुभवसे लगातार ही करते हैं। ऐसा तो किसी संवेदनशील पाठकके बारेमें कहा जा सकता है कि काव्यका प्रथम प्रभाव उसके मानसपर संश्लिष्ट रूपमें पड़ता है विश्लेषणकी प्रक्रिया बादमें शुरू होती है। पर टॉमसके बारेमें यह इस प्रकार समझा जा सकता है कि वह काव्यके प्रभावको अपनी संवेदनाकी प्रक्रियामें इस प्रकार समाहित कर देते हैं कि इसको उनका अपना ही विशिष्ट अनुभव समझना चाहिए। आगे उनके काव्यकी चर्चामें हम देखेंगे कि उन्होंने अन्य कथा-कृतियोंको लेकर उनके अन्य प्रभावको काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। अनुवाद करनेमें यह प्रक्रिया और भी स्पष्ट देखी गयी है। कविताका अनुवाद भावानुवाद

ग्रहण उन्होंने चित्र बनाया और फिर चित्रके माध्यमसे अनुवाद पूरा करनेमें सक्षम हुए। उनका यह व्यक्तित्व आत्मकेन्द्रित होनेपर भी सामाजिक दायित्वके सिद्धान्तको सहज ही ग्रहण कर सका है। इस अन्तर्विरोधकी स्थितिका समाधान उनके व्यक्तित्वके संवेदनशील ऐन्द्रजालिक आकर्षणमें निहित है। उनके बिम्बों प्रभाव-बिम्बों कल्पना-तरंगों तथा ध्वनि-बिम्बोंमें उनके व्यक्तित्वका यह आकर्षण पाठकके मनको संवलित न करके सम्मोहित करता है और इस मनःस्थितिमें व्यक्तिनिष्ठा और सामाजिकता एक ऐन्द्रजालिक सीमाके अंग जान पड़ते हैं।

शमशेरकी काव्यगत धारणा उनकी दो कविताओंसे स्पष्ट की जा सकती है। 'कुछ कविताएँ' की 'राग' और 'कुछ और कविताएँ' की 'बात बोलेगी' नामक कविताओंमें कवि अपनी काव्याभिव्यक्ति सम्बन्धी भावनाका प्रभावात्मक विन्यास व्यंजित करनेका प्रयत्न करता है। शमशेर आन्तरिक अनुभवकी सहज अभिव्यक्तिको काव्य मानते हैं

मैंने कहा—
शाम ने मुझसे कहा ;
राग अपना है !

यह 'राग' अपना है अर्थात् काव्य आत्मिक होता है। अनुभवकी स्थितिके लिए कवि 'सरसताका आकाश' और 'सीमाकी इच्छाएँ' कहकर उसकी सहजताको स्वीकारता है। फिर 'समय अपना राग है' से भी प्रत्यक्ष अनुभवकी पुष्टि होती है। इसी कवितामें कवि 'धरतीके पथकी सहजताको प्राण मानता है और कहता है

तुमने अपनी यादों की पुस्तक खोली है ?
जब यादें मिलकर हुईं एकाएक स्पष्ट हो गयी हों ?
जब आँसू छलक न आकर

आकाश का फूल बन गया हो !
……वह मेरी कल्पनाओं-सा सुख लगता।

इस प्रकार कवि अनुभूतिकी मैत्रीपी हुई मासिकताको अस्पष्ट माध्यमसे काव्याभिव्यक्तिके रूपमें स्वीकार करता है। आगे वह कहता है कि इन कविताओंका मतलब कुछ नहीं है ये स्वयं लिख जाती हैं ये साँसकी तरह सहज ही प्राणोंकी अभिव्यक्ति हैं। कविताका शब्दार्थ नहीं ग्रहण किया जाता उसमें तो आत्मसाक्षात्कार होता है

क्यों फिर उसस मेरा संग्रह
अपनी पुँछटा याद में न्याता और
मुझसे कुछ मत पूछना भूल गया।

कविताके सीधा सम्बन्ध स्थापित होनेके बाद अब पूछनेकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। इस कविताके बादकी भावमें गमनोंमें कविताः सामान्यजनका भाव-चित्र प्रस्तुत किया है जिसमें स्पष्ट भावावस्थाकी स्थितिका ही व्यंजित किया गया है यह अवश्य है कि इस कवितामें रहस्यका एक वातावरण प्रारम्भसे निर्मित है जो इस अन्तिम भावात्मक अनुभूति-जन्य परिणतिमें अधिक आकर्षक हो उठा है। यह समन्वयकी काव्यदृष्टि है और शैली भी। 'बात बोलेगी' में इस भावको दूसरे सन्दर्भमें कहा गया है। इसमें सामाजिक दायित्वको काव्यगत सन्दर्भ रूपमें व्याख्यायित करनेका प्रयत्न है। यह यथार्थ काव्यमें स्वतः व्यंजित होता गया कविका विश्वास है। इसमें कवि अन्तर्वञ्चना करता है और सामाजिक विरोधी विषयोंकी विषमताकी सृष्टि करनेमें भी सफल हुआ है पर मैत्रीमूलक आदर्श संवेदन-तत्त्वको मुखरित करता है।

प्रयोगने छायावादी काव्यको उत्तराधिकारमें ग्रहण किया है अपना भिन्न अभिव्यक्तिकी दृष्टिसे। परन्तु उसकी प्रेरणा और प्रभावका क्षेत्र बहुत विस्तृत रहा है। एक ओर कवि [illegible] की अनुभवोंमें रमता है तो

दूसरी ओर फ्रान्सके प्रतीकवादियोंसे प्रभावित है। यदि उसको रोमैण्टिक काव्य अभिभूत करता है तो बिम्बवादी तथा सुर्रियलिस्ट काव्य कम आकर्षित नहीं करता। यदि रीतिकाव्यके मुक्तक काव्यका आस्वादन करना सम्भव है तो वह संस्कारी क्लैसिकल काव्यके गाम्भीर्यकी अनुभूति के स्तरपर ग्रहण कर सकता है। इन विविध और विभिन्न काव्योंके स्तरोंपर समान रूपसे संचरण कर पाना सरल नहीं है पर सहृदय अपनी सजग काव्य-बुद्धि और संवेदनशील व्यक्तित्वके माध्यमसे ऐसा करना सहज सम्भव है। ऐसा नहीं है कि इन विभिन्न काव्य-रूपों काव्य-शैलियों तथा काव्याभिव्यक्तियोंके अनुभावनमें सहृदयके लिए कोई आन्तरिक संघटन न हो। वह स्वयं अपने सूक्ष्म संवेदनके माध्यमसे प्रत्येक कलात्मक काव्य-रूपका प्रभाव ग्रहण करता है और यह उसका प्रभावानुभव अखण्डित तथा विशिष्ट होता है। कला-कृतिकी सौन्दर्यानुभूतिकी यह प्रभावकारी प्रक्रिया है जिसमें कवि आत्मप्रक्षेपण-द्वारा किसी भी काव्य या कलाकृतिमें अपने निजी अनुभवका ही संचरित करता है। जिस प्रकार प्रत्येक विषय कवि की अपनी अनुभूतिके माध्यमसे काव्य-वस्तु बनता है उसी प्रकार यहाँ प्रत्येक काव्य या कला कृति उसके लिए उसके अपने अनुभवका विषय हो जाती है। वह रचना अपने स्रष्टाकी अभिव्यक्तिको सम्प्रेषित करनेके बजाय मात्र प्रभावके रूपमें संचरित होती है। यही कारण है कि सहृदयके लिए इस बातका अधिक महत्त्व नहीं रह जाता कि कवितामें भाव-बोधका कौन सा स्तर अभिव्यक्त है अथवा काव्य-बोधकी अपनी विशिष्टता क्या है? वह अपनी भावशीलताकी परिधिमें किसी भी काव्य-भूमिका लीलाकर अपने संवेदनके प्रसारके साथ-साथ घूमते-फिरते हैं।

किसी युग किसी देश किसी प्रवृत्ति किसी रूप या शैली और भाव धारा किसी विशिष्ट स्तरके काव्यका समझना-समझाना और उसके अनुभावनकी एक शास्त्रीय और ऐतिहासिक प्रणाली भी होती है। वस्तुतः इसी आधारपर विविध और विभिन्न काव्य-रूपों और उनके भाव-बोधके स्तरों

का अनुभावन और व्याख्यान किया भी जा सकता है किया जाता है। इसके अनुसार युग-विशेषके परिवेश और उसके सामाजिक परिवेशका वस्तुपरक-विवेचन करना होगा, काव्यविशेषके भाव-बोधको समझना होगा, शब्द-रूपके प्रकार और उसकी शैलीकी विशिष्टताएँ व्याख्या करनी होंगी, उसमें प्रयुक्त अप्रस्तुत संदर्भों प्रतीकों और बिम्बोंकी व्याख्या करनी होगी और फिर अन्य काव्य-परम्पराओंके साथ रखकर उसकी विशिष्टताका विवेचन किया जा सकेगा। इसके विपरीत दूसरी पद्धति है पुनर्रचना या पुनस्सृजनकी जिसके अनुसार पाठक या भावक किसी भी रचनाविशेषका आस्वादन अपने युगके भाव बोधके सन्दर्भमें अपने मनसे उसकी पुनर्रचना करनेसे प्राप्त करता है। इस स्थितिमें किसी भी कृतिका अनुभावन युग-युगमें परिवर्तित होता रहता है। किसी महान् कला-कृतिकी विशिष्टता इस बातमें नहीं है कि वह युग-युग तक एक ही भाव-बोधसे ग्रहण की जाती है वरन् इस बातमें है कि वह युग-युगमें भाव-बोधके सजीव आयाम उद्भासित करनेमें सक्षम है। वह आगत युगोंके भावबोधको बाँधती नहीं वरन् मुक्त करती है।

समसामयिक प्रभाववादियोंमें इस दूसरी पद्धतिके अनुसार अर्थात् पुनस्सृजन की प्रक्रियाका आभास देकर भी उससे भिन्न है। इस प्रक्रियामें अपेक्षित तटस्थता और वस्तुपरक संपादन होता है जब कि समसामयिक प्रभाववादियोंके समान अपने व्यक्तित्वकी आत्मप्रक्षेपणमें कला-कृतिको समाहित कर उससे अपना निजी सम्बन्ध स्थापित करते हैं। पुनस्सृजनकी प्रक्रियामें भावक अपना व्यक्तित्व कृतिपर आरोपित नहीं करता, वह कृतिके अन्तर्निहित भावको एक नये सन्दर्भ और आयाम प्रदान करता है जब कि प्रभाववादी अपने अर्जित व्यक्तित्वके माध्यमसे कृतिको अपने मनोभावसे अनुरंजित कर देता है। इस प्रकार इनका प्रकार नितान्त भिन्न और कभी-कभी विरोधी तत्त्व-बोधसे मूल्य और स्वरूप आरोपित और प्रक्षेपित होता नज़र आ जाता है।

शमशेरके काव्यकी चर्चा करते समय काव्यास्वादन या काव्य-प्रेरणा-पर विचार करनेका प्रयोजन है। इससे उनकी अपनी सृजन प्रक्रियाको समझनेमें आसानी होगी। प्रायः शमशेरको छायावादी कवियोंके भाव-बोध और काव्य-शिल्पसे विद्रोह करनेवाले प्रयोगशील कवियोंमें रखा गया है। परन्तु काव्यगत प्रयोगकी बात यदि छोड़ दी जाये तो अपनी संवेदनाओंमें शमशेर प्रयोगशील नहीं रहे हैं, और जहाँ काव्यगत प्रयोगका प्रश्न है अधिकांश प्रयोगशील कवियोंके समान उन्होंने भी प्रयोग कुछ निश्चित पानेके उद्देश्यसे किया है। प्रयोग करते-करते कुछ पा लेना है, यह स्थिति प्रयोगशील कवियोंसे लेकर नये कवियों तकके सामने स्पष्ट नहीं है। इस अर्थमें शमशेरको प्रयोगशील भी नहीं कहा जा सकेगा नये कवि तो वह नहीं ही हैं। उनके सामने काव्य वस्तु और उद्देश्य भी प्रत्यक्ष रहा है। उनके सामने अनुभवकी सचाई और अभिव्यक्तिकी ईमानदारीका सवाल मुख्य रहा है। छायावादी कवि वस्तुके यथार्थ अनुभवके स्थानपर उसके काल्पनिक अनुभवको व्यंजित करनेका अधिक प्रयत्न करता था और इसी कारण उसकी अभिव्यक्तिमें वायवी रंग-रूप महीनता कि भावनाओंका अयथार्थ अंकन अधिक हुआ है। छायावादी कवियोंमें निराला ही एक ऐसे कवि हैं, जो अपने सौन्दर्य-बोधके स्तरपर भी यथार्थ जीवन तथा अनुभवको ग्रहण करनेका ओजस्वी प्रयत्न करते रहे हैं। यह आकस्मिक स्थिति नहीं है कि शमशेर निरालाके व्यक्तित्व और उनके काव्य का आह्वान करते हैं

> हाँ तुम्हीं हो एक मेरे कवि :
> जानता क्या मैं —
> हृदय में भर कर तुम्हारी साँस····

इस प्रकार कविने एक ओर छायावादी काव्य-परम्परा और उसके सौन्दर्य बोधको स्वीकारा है और दूसरी ओर निरालाके माध्यमसे अनुभवकी यथा-र्थताको ग्रहण करनेका आग्रह भी प्रकट किया है। 'निरालाके प्रति' कवितामें शमशेरने छायावादी शैली (शब्दों उपमानों प्रतीकों और लाक्ष

निक प्रयोगों) से निरालाने काव्यव्यक्तित्वको समन्वित कर अनुभवको यथार्थाकार रूप दिया है

ए किया करता
आधुनिकतम शाह मानव का
सावना स्वर में
शान्ति-अभिनन्दन।

इस दृष्टिसे 'निराला' इस प्रकारके विद्रोही कवि रहे हैं जो अपनी परम्परासे भी विद्रोह करनेमें सक्षम होते हैं। भाषा शैली एवं प्रतीक बिम्ब व्यंग्य आदि विविध प्रयोगोंमें उनका यह विद्रोह व्यक्त हुआ है पर उनकी विशेषता जीवनके यथार्थ-सापेक्ष अनुभूति मानी जायेगी। प्रयोगोंके 'निराला' के काव्यके इसी तत्त्वसे सर्वाधिक प्रभावित हैं।

प्रायः छायावादी काव्यकी दो प्रतिक्रियाएँ बतायी जाती हैं जिनको प्रगतिशील और प्रयोगशील काव्य प्रवृत्तियोंके रूपमें विवेचित किया गया है। इसके साथ उत्तर छायावादी रोमैण्टिक कवियोंको भी लिया जा सकता है, क्योंकि उन्होंने छायावादकी परम्परामें ही रोमैण्टिक प्रेम और सौन्दर्य की अधिक सीधी और ऐन्द्रिक अभिव्यक्ति की है जो छायावादकी आध्यात्मिक तथा वायवी सौन्दर्यकी प्रतिक्रिया मानी जायगी। यद्यपि यह प्रतिक्रिया विरोधी न होकर इस प्रवृत्तिका प्रसार कही जायगी। वस्तुतः इनमें-से किसी एकके साथ जाया नहीं जा सकता और एक स्तरपर इन तीनों प्रवृत्तियोंका उद्गम एक भी माना जा सकता है। विभिन्न स्तरोंमें देखनेपर ये नाना प्रवृत्तियाँ एक दूसरेमें अनिवार्यतः आती रहेंगी पर इनकी अलग स्थिति भी परिलक्षित होती है। एक प्रगतिवादी कवि दूसरेमें अन्तर्भुक्त होकर भी अपनी विशिष्ट स्थितिको अभिव्यक्त भी कर सकता है। पर सामान्यतः स्थिति इन सबसे भिन्न है और प्रारम्भमें उन्होंने उसका समन्वय होती नहीं होती है।

ऐसा भी नहीं है कि इन विभिन्न प्रवृत्तियोंको समग्रतामें अलग अलग देखा जा सकता है। इन प्रायः विरोधाभासी प्रवृत्तियोंका ऐसा परिपाक उन्होंने किया है कि अपनी इस काव्यात्मक अभिव्यक्ति और सृजनमें वह सबसे अलग और अप्रतिम लगते हैं। भावनावादोत्तर रोमैण्टिक आकांक्षा, एन्द्रिक सौन्दर्य-भावना, प्रणयजन्य निराशा, अवसाद और भावाकुलता, प्रगतिवादियोंकी सामाजिक दायित्वकी भावना, शोषित-वर्गके पक्षमें उनके प्रति गहरी सहानुभूति, व्यक्तित्वका सम्मान और निहित स्वार्थों और स्थापित वर्गके प्रति विद्रोह, और साथ ही प्रयोगशील काव्यकी व्यक्तित्वके प्रति आग्रहकता, उसकी मुक्तिकी आकांक्षा, यथार्थको सीधे ग्रहण करनेकी चेतना और उसके लिए प्रयोग तथा अन्वेषणका मार्ग — इन सबको शमशेर जिस ऐन्द्रजालिक प्रक्रियासे अपने काव्यमें समाहित कर लेते हैं उसको समझ लेनेपर उनके काव्यके आकर्षणका रहस्य भी उद्घाटित हो सकता है।

१९वीं और २०वीं शतीके योरोपीय साहित्यके सन्दर्भमें शमशेरकी स्थिति समझना अधिक आसान हो जाता है। वस्तुतः आधुनिक कवितामें यदि फ्रांसके विभिन्न काव्यान्दोलन सम्बन्धी वादोंके सन्दर्भमें अध्ययन किये जानेकी सार्थकता अथवा हिन्दीका कोई कवि रखता है तो वह शमशेर हैं। फ्रान्समें उन्नीसवीं शतीके मध्यमें रोमैण्टिक आन्दोलन ह्रासोन्मुख हो चुका था। इन कवियोंमें निराशा, अवसाद, मृत्युकी आकांक्षा अधिकाधिक अभिव्यक्त हुई है। इसके बाद फ्रान्समें प्रतीकवादियोंसे लेकर अतियथार्थवादियों तक अनेक काव्यान्दोलन चले जिनका प्रभाव समस्त पाश्चात्य काव्यपर पड़ा है। इन सभी काव्यवादोंकी मूल भावना एक प्रकारसे शुद्ध काव्यकी खोज रही है। प्रत्यक्ष यथार्थ अनुभव और उसकी भावनात्मक उद्भावना जिसपर रोमैण्टिक काव्य अत्यधिक बल देता रहा था, इस युगमें अस्वीकृत हो गये। कवियोंने अनुभवातीत यथार्थको ग्रहण करनेका

धारण किया जा सकताके पर है । समाजकी शुद्ध काव्यदृष्टि और उसका वास्तविक अनुरागसे यथार्थको ग्रहण करनेका प्रयत्न बहुत कुछ एक सा है । प्रतीकवादियोंके समान ही यह विषय-विषयी आन्तर-बाह्यका विभेद नहीं करते । उनका भी सौन्दर्य सम्प्रदायक अभ्यवसायियोंसे सहज हो गया जा सकता है क्योंकि उसमें एक तात्त्विक बिम्ब परिकल्पनाका विन्यास रूपात्मक स्वरूप स्थापित होता है ।

यद्यपि प्रतीकवादियोंसे लेकर अतियथार्थवादियों तक सभीने अनुभव परे तर्कातीत यथार्थको अभिव्यक्त करनेका प्रयत्न किया है पर समाज अतियथार्थवादियोंके अधिक निकट है । उनके व्यापक विश्लेषण और विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें अन्य वादोंके तत्त्व और प्रवृत्तियाँ सम्मिलित हैं । उनमें स्वयं चालित एक मानसिक प्रक्रिया मिलती है जिसका निर्देशन तर्क नियन्त्रण बाह्य सौन्दर्य-बोध तथा नैतिक सभी पूर्वनिश्चित धारणाओंसे परे है । अतः स्वप्नका स्वच्छन्दतावादी सृष्टि और सबकी सहज प्रतिक्रियाके माध्यमसे उस यथार्थका अर्जित करनेका उद्यम भी है । इसके साथ इस प्रकार समाजकी स्वप्न प्रक्रियासे सम्बन्ध जा सकता है । यह सामर्थ्य और प्रत्यक्षि प्रक्रिया कविता स्वच्छन्द सम्मोहन द्वारा प्रयत्न अपरिमित गहन और बाह्योंकी श्रृंखलाओं स्वच्छन्द प्रेरणा देती है । इस पद्धतिसे वह भौतिक तथा मानसिक चेतन तथा अचेतन आन्तरिक तथा बाह्यके मध्य प्रतिबन्धोंका तोड़ देता है और एक अतियथार्थकी सृष्टि करता है जिसमें यथार्थ तथा स्वप्न धारणा तथा क्रिया मिल-जुलकर एकदम अविकल अस्तित्व ग्रहण करते हैं ।

परन्तु वैदिक स्तरपर समाजमें एक विरोधाभास रहा बना रहा है । जिस प्रकार तर्कातीत यथार्थका अनुभवके साथ कवितामें सार्वभौमिक साधारण सौन्दर्यानुभूतियों आत्मामय तथा प्रमाद्य माना निरूपण का रूप बना रहा है उसी प्रकार समाजकी प्रकार वस्तुके साथ उनका सामाजिक दायित्वका आग्रह भी है । इस प्रकारका आन्तरिक द्वन्द्व साम्

तथा परिणामक ओडेन स्पेण्डर पाबलो नरूदा लार्का तथा आरिगां-जैसे अनेक कवियोंमें पाया जाता है अपने-अपने ढंगसे [उन्होंने जिसका समाधान करनेका प्रयत्न भी किया है। परन्तु जिनमें यह द्वन्द्व वैयक्तिक चेतना और सामाजिक दायित्वकी भावनाका है उनको शमशेरकी तरह शुद्ध कवि-दृष्टि और प्रमाणानुभवमें पलायन करनेकी सुविधा नहीं मिल सकी। अपने दायित्वके प्रति जागरूकता प्रकट करनेकी दृष्टिसे कवि सामाजिक यथार्थके नामपर कुछ व्यक्तियों स्थितियों और परिस्थितियोंको अपने अनुभवमें संवेदित करता है पर यह साक्षात्कार तर्कशील अनुभूतिके रूपमें ही व्यंजित हुआ है। *प्रतीकवादियोंके समान वह समस्त इन्द्रियोंसे पदार्थका* अनुभव रूप रस गन्ध स्पर्श ध्वनिमें संयोजित करता है और चेतनाके गहरे स्तरोंपर काव्यमें उसे सम्प्रेषित करता है। यही नहीं शमशेरने काव्यको संगीतमें अन्तर्मुक्त करनेका प्रयत्न भी मिलता है उन्होंने निराला के समान मात्र अपनी भावाभिव्यक्तिकी मुक्त अवतारणाके लिए छन्दोंका बन्धन नहीं तोड़ा है वरन् छन्द लय, ताल गतीत और सामंजस्य सबीका अतिक्रमण करके संगीतके अमूर्तन विधानके आधारपर मुक्त तथा तरल संगीत तत्वका उपयोग किया है। इस तत्वके साथ प्रतीक शैलीका समुचित ठीक बैठ जाता है। क्योंकी तथा अप्रस्तुत योजनाके अन्य विविध रूपोंमें अर्थ-व्यंजना तथा भाव संयोगोंके निश्चित विधान सामने आ जाते हैं परम्परा और रूढ़ प्रयोगोंके आधारपर उनके माध्यम और प्रसंग निर्धारित होते हैं। इसके विपरीत प्रतीकम प्रयोगजन्य अर्थकी अनन्त सम्भावनाएँ निहित रहती हैं। प्रतीकोंका चुनाव कवि मनमुग्धक संवेदनके आधारपर करता है जिससे कल्पनाका रास्ता मुक्त रहता है और संयोगों तथा बहु-आयामोंकी व्यंजनाके लिए असीम सम्भावनाएँ रहती हैं परन्तु इसी कारण इस शमशेरकी सारी शैली तथा बिम्बविधान दुरूह भी लगता है।

उपर्युक्त विवेचनसे शमशेरका काव्य-शिल्प बहुत कुछ अंशमें प्रतीक-

वादियों (अन्योंका भी सीमित प्रभाव है) के समान लगता है। परन्तु अन्य भाव-बोधके स्तरपर उनमें रोमैण्टिक भावना और सामाजिक दायित्वका आग्रह सर्वत्र मिलता है। जब प्रेम और सौन्दर्य (नारी अथवा प्रकृति) सम्बन्धी भावावेगोंको चेतनाके गहरे स्तरपर व्यंजित किया जाता है, अथवा सामाजिक यथार्थका व्यक्तित्वके संस्पर्शमें अनुभूत किया जाता है उस समय प्रतीकात्मक बिम्ब-विधान काव्यके आन्तरिक संयोजनकी माँग न रहकर ऐन्द्रजालिक प्रभाव उत्पन्न करनेकी शैली अधिक हो जाता है, जिसको काल्पनिक जटिलता और भावात्मक आवेगमें कवि अपने अन्तर्विरोधके समाधानमें सहज सक्षम हो गया है।

पहले भी कहा गया है कि शमशेर रोमैण्टिक संवेदनके स्तरपर छाया वादियोंकी परम्परामें आते हैं केवल उनमें प्रेम और सौन्दर्यकी मांसलता एन्द्रिकता तथा आवेग अधिक है। भाव-बोधके स्तरपर उनमें और छायावादोत्तर रोमैण्टिक कवियोंमें समता है पर वह सार अनुभवको संवेदनके गहरे स्तरपर ग्रहण करनेका प्रयत्न करते हैं। इस प्रयत्नमें वह प्रतीक-शैलीके विशृंखल और व्यक्त्यात्मक बिम्बोंका आश्रय ग्रहण कर अपनी प्रभावोत्पादक अस्पष्टतामें दूसरोंसे अलग हो जाते हैं। भारतीय संगीत सुनकर इसी प्रकारका प्रणय और विरहका रोमानी चित्र कवि अंकित करता है

राग भी हँसता है तेरे गाने में
गीले में,
बहुत करुणी गुरमई पलकों में
साँसों में लहराती अलकों में
आती तू ओ किसकी ?
फिर मुसकाता तू
और मैं ··· नामाम ··· बस।

इसमें नेरोंका मध्ययुगीन रोमान्स प्रभावानुभवके रूपमें इस प्रकार व्यंजित किया गया है कि वह अपनी विशृंखलता और विसंगतिमें नया और आकर्षक हो उठा है। कभी अधिकांश कविताओंमें छायावादी शब्द-योजना और बिम्ब-विधानका आश्रय लेकर किन्हीं प्रयोगके वैषम्यसे शमशेर छायावादी स्वप्निल प्रणयको अधिक स्पष्ट आधार दे सके हैं। मौन आहों-में बुझी तलवारें' व 'बादलोंके पार' 'रूपाभ आशा अमर' 'ज्योतित परिधान' 'मधुरतम उर' 'मौन-कल्पित हृदय' आदि प्रयोगोंके साथ सुन्दर व्यतिरेकी प्रयास 'आहोंमें बुझी तलवारें' तो हैं ही जो छायावादी कोमल अभिव्यक्तिके विरोधमें हैं पर इसके साथ ही 'चूमना' 'गले लगाना' 'कसकना' और 'उभरना' आदि सीधे और स्पष्ट क्रिया-पदोंका प्रयोग प्रभाव को गहरा बनानेमें सहायक हुआ है। शमशेरकी ऐसी अनेक कविताएँ हैं जिनमें शुद्ध रोमैण्टिक भावना अभिव्यक्त हुई है। कल्पनाकी मुक्त उड़ान सौन्दर्यकी पिपासा प्रणयाकांक्षाकी रंगीनी और भावोद्वेलन इनमें देखे जा सकते हैं 'छिप गया मुख' 'सीधी मुलायम लटें' 'न पलटना उधर' आदिमें। पहली कवितामें प्रकृतिके बीच छायावादी कवियोंके समान नारी-की कल्पना निहित है पर कविने छायावादी सूक्ष्म लाक्षणिक बिम्बों—'सीप-सी रंगीन मरकतके हृत्पट' 'हास्यके बनमाल मोती' 'हृदयके उन्मुक्त उरमें' 'किस रंगिम हृदय आँचलमें सजे?' 'भूल-भूलिम जाल मानस' 'ओह यौवन-कनकुसुम' के साथ 'आज कानन शान-भर बरसा करेगा क्या?' 'अपलक आज मैं दूरतक हूँ' 'बादली बरसा करेगा' 'घिरा नारी-मन उघाड़ों' न नैन सीधे और सहज कथन भी किये हैं। इतना ही नहीं मूल बिम्बोंको भी 'ढक लिया मुख आँचलोंमें बादलों' के रूपमें अधिक स्पष्ट कर दिया गया है और यह भाषाको भावनात्मक निकट लानेके कारण सम्भव हुआ है 'रंगीन' 'अनमोल' 'मोती' 'उघाड़' 'गामकम' आदि शब्द तो ऐसे हैं ही क्रियापदोंका प्रयोग अधिकांश बोलचालसे गृहीत है। यह शमशेरकी व्यापक प्रवृत्ति है। अन्य आधुनिक कवियोंने शब्द भाषाकी बोलचालकी

भाषामें विकसित करनेका प्रयत्न किया है। कुछने छायावादी भाषाको अधिक सीधे और व्यंजक रूपमें प्रयुक्त करनेका प्रयत्न भी किया है, पर समग्रतः छायावादी भाषाका इस प्रकार विशिष्ट उपयोग कर लिया है। इससे धार्मिक भावनाओंकी अभिव्यक्ति अधिक आकर्षक हो गयी है

बालपन का स्वप्न हो गया करता क्या ?

इसके विपरीत 'गीतों' संग्रहमें सर्वत्र भाषाका सीधा और प्रवाह-पूर्ण रूप है, पर प्रभाववादी शैलीमें अस्फुट और विशृंखल बिम्बोंके द्वारा सौन्दर्यकी मांसलता तथा प्रेमकी आकांक्षा स्पष्ट और आरोपित कर दिया गया है, जिससे धार्मिक भाव एक तेम्प्रात्मिक गुहाओंमें आच्छन्न हो जाता है

आ
मुकुलित
या केवल
कदाचित···

इस प्रकार चित्र मिलेंगे जिनमें सौन्दर्यको शैली बहुधा समासरहित भाषामें व्यक्त हुई है, पर इसमें भी नवीन बिम्बोंके प्रयोगमें सफल और विशृंखल प्रभावात्मक और कभी-कभी भाव तथा शरीर व्यतिक्रम अभिव्यक्तिमें सरलता और आकर्षण उत्पन्न किया है। 'दिन निकलेगा' इसकी भाषा में नारी-सौन्दर्यकी व्यंजना तथा आसक्त कल्पनाके साथ भावना और स्वरूपका प्रत्यक्ष चित्रण है

गाद का
लाली गोरी अविचल
अस्थिर
हो उठी।

भाव
किसके लिए ?

फिर उस बीती बहारको निराश विदा देकर कवि कहता है, 'मैं स्वप्न में लिपटा'। फिर शैलीके वैचित्र्यसे उस भाव-स्थितिका चमत्कृत भी कर देता है 'वीरानी है वनमें वीरानी है वनमें जिन्दगी फिर भी रहम कर।' कभी वैचित्र्य-सृष्टिके लिए कवि क्या सूम इन्द्र विष्णु, यूनानी अपोलो देवगण तथा सरस्वतीके विविध पौराणिक सन्दर्भोंकी कल्पना एक साथ करता है, फिर इनके विरोधमें 'मुकाबलेकी कहानियाँ' में 'छिपी हुई बसी हुई बुलबुले-से वह एक ओर फ़ारसकी मध्ययुगीन कल्पनाका बिम्ब सामने लाकर आकर्षण उत्पन्न करता है और दूसरी ओर रोमैण्टिक भाव सौन्दर्यकी अदृश्य आकांक्षा व्यंजित करता है।

शमशेर रोमैण्टिकोंके समान अतीतको वापस लानेकी आकांक्षासे उद्वेलित होते हैं क्योंकि अतीतके प्रति कविके मनमें सम्मोह है। वह अपने अतीतके स्वप्नोंसे पुनः सम्बन्धित होना चाहता है

और था क्या फूल की पँखुड़ी
फिर
फूल में लग जा

और अतीतके मन्थनमें वह अपनेको 'समयकी लम्बी आह मौन लम्बी आह' मानकर करुणाका अनुभव करता है

चूमता है धूल का फूल
कोई हाय।

इसी प्रकार रोमान्सकी आकांक्षा और प्रेम-सम्बन्धी निराशासे उत्पन्न अवसाद पीड़ा व्यथा उत्पीड़न और मार्मिक अनुभूति 'शाम और रात जिन्दगीका प्यार' 'टूटी हुई बिखरी हुई' शाम आदि कविताओंमें व्य-

रूपोंमें व्यंजित हुई है। कहीं तो यह अभिव्यक्ति अलग अलग असम्बद्ध बिम्बोंमें हुई है (शाम और रात) कहीं सीधी कथन शैलीके साथ उर्दू शैलीका वैषम्य उत्पन्न कर (किन्हींका प्यार) और कहीं बिम्बित और असम्बद्ध चित्रोंको एक ही बिम्ब-विधानके संघटनमें संयोजित कर एक आकर्षक प्रभाव पैदा किया गया है (टूटी हुई बिखरी हुई)। सामान्य ऐसी कविताओंमें प्रारम्भ प्रकृतिके प्रभावकारी चित्रणसे किया गया है पर क्रमशः उनमें रोमैण्टिक भावका विकास उनकी इच्छा आकांक्षा प्रेम विरह और पीड़ा-वेदनाकी विविध मनःस्थितियोंके संकलनके रूपमें परिलक्षित होता है। इन लम्बी कविताओंमें असम्बद्ध और विशृंखल प्रभाव बिम्बोंमें संवेदनाका संयोजन और संघटन तथा आसपासकी भाषाका सीधा प्रयोग आजकी कविताकी भाषा-शैलीके समान है। परन्तु शमशेरकी इन कविताओंमें समस्त रोमैण्टिक भाव उनका सौन्दर्य प्रेम-प्रणय आकांक्षा आशा निराशा कल्पना स्वप्न स्मृति आदि प्रस्तुत बिम्ब-विधानके अन्तर्गत एकात्मिक वातावरणके बिम्बपरक प्रभावमें समाहित हो जाता है

बहुत-से तार बहुत-सी नावें बहुत-से पर इधर
उड़ते हुए आए घूमते हुए गुज़र गए
मुझको लिए, सबके सब। तुमने समझा
कि उनमें तुम थे। नहीं नहीं नहीं।
उनमें कोई न था। सिर्फ़ बीती हुई
अनहोनी और होनी की उदास
रंगीनियाँ थीं। फ़क़त।

[टूटी हुई, बिखरी हुई]

प्रकृतिको भी कविने भाव-बोधके रूपमें स्वीकार प्रस्तुत किया है और इस कारण उसके अंकनकी शैलियोंमें अन्तर परिलक्षित होता है। कभी अन्तरंग शैलीमें उपमानोंकी नवीनतासे चित्र अधिक स्पष्ट हो गया है

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे
भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका
(अभी गीला पड़ा है)

इसी प्रकार 'उषा' के चित्रण आकाशकी नीलिमाके लिए 'बहुत काली सिल जरा-से लाल केसरसे कि जैसे धुल गयी हो' अथवा 'स्लेटपर या लाल खड़िया चाक मल दी हो किसीने' ऐसे बिम्ब-चित्र अधिक प्रत्यक्ष और व्यंजक हैं। पर कवि 'नीले जलमें किसीकी गौर झिलमिल देहके हिलने' की कल्पनाका चित्रण रोमैण्टिक सौन्दर्य अन्तर्निहित करता है फिर अन्तमें सूर्योदयका मंगलमय विषयक वैचित्र्यकी सृष्टि कर देता है

और—
जादू टूटता है इस उषा का अब
सूर्योदय हो रहा है।

कभी प्रकृतिके प्रभावानुभवको कवि चित्रित करनेके लिए ऐसे बिम्बों और प्रतीकोंका आश्रय लेता है जो अनुभूतिके व्यापक परिवेशकी व्यंजना करनेमें समर्थ हैं। पर इसमें शुद्ध अनुभूतिके स्थानपर रोमैण्टिक भावना अधिक अभिभूत हो जाती है और इस दृष्टिसे उनकी संवेदना आधुनिक भाव-बोधसे अलग पड़ जाती है मध्ययुगीन रोमान्ससे प्रेरित जान पड़ती है। 'पूर्णिमाका चाँद' का अनुभव कवि 'गल रहे आसमान' तथा 'पीछे गुम्बदोंसे उभरते हुए दरिया' के रूपमें करता है पर 'झिलमिलाते स्वप्न जैसे गाँव' की कल्पनामें छायावादी स्वप्निल सौन्दर्यका आभास मिलता है। प्रायः कवि प्रकृतिके प्रभावात्मक बिम्ब-चित्र प्रस्तुत करता है परन्तु अधिकांशमें प्रणय वासना भावावेश सौन्दर्याकांक्षा उद्वेग आशा तथा करुणा आदि भावोंकी व्यंजना भी सन्निहित है। रोमैण्टिक प्रवृत्ति तथा प्रयोगवादी नाटकीय भावाभिव्यक्तिमें यही अन्तर हम पाते हैं कि इन

अस्फुट विशृंखल और विगत (कभी-कभी) बिम्ब-विधानोंकी अस्पष्टता छायावादी रहस्य भावनाके समान सारे वातावरणको आर्द्र आकर्षणसे भर देती है। 'एक पीली शाम' के चित्रमें 'पतझरका जरा अटका हुआ पत्ता' एक अनुभवका वस्तुपरक बिम्ब प्रस्तुत करता है और उसके साथ

अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू
सान्ध्य तारक-सा
अतल में।

इस बिम्बका पूर्ण संयोजन है क्योंकि सन्ध्या-तारेका पतझरके पत्ते-सा अटका होना और उसकी 'अब गिरा अब गिरा' की स्थिति पूरी कविताको आन्तरिक संगति देती है। पर इनके बीच 'आँसू' और उसके गिरनेकी स्थितिकी कल्पना सारे चित्रको एक भिन्न सम्भ्रम प्रस्तुत कर देती है और फिर 'एक पीली शाम' का अनुभव अलग पड़ जाता है अर्थात् शाम एक पूर्व भावकी मात्र पीठिका रह जाती है और 'भावनाओंमें शान्त क्लान्त हारा-सा मूक कम्पन' प्रमुख हो जाता है।

प्रायः प्रयोगशील प्राकृतिक अनुभूतिपरक बिम्ब-विधानोंमें भावकोल्लासका मोह नहीं छोड़ पाते। इस कारण प्राकृतिक वस्तुपरक अनुभवके स्थानपर कविता भावारोप प्रधान हो जाता है और कविताका प्रतीकात्मक संयोजन या उसकी आन्तरिक संगति शिथिल हो जाती है। 'दूब' 'सागर-तट' की अपेक्षा अधिक छोटी कविताओं 'सुबह' तथा 'रात्रि' में इस दृष्टिसे अधिक पूर्ण संगति है। 'दूब' में

पलकों पर ढीले-ढाले
तुम्हारे फूल-से पाँव
मानो भूल कर पड़ते
हृदय के सपनों पर मेरे!

इस बिम्बका भाव सारे अनुभवको एक भिन्न दिशामें ले जाता है। 'सागर तट' के अन्तमें कवि एक ऐसा बिम्ब दे देता है।

चाँदनी की उँगलियाँ चंचल
क्रोशिया से बुन रही थीं चपल
फेन झालर बेल मानो।

जो मूल अनुभवसे किंचित् विमुख करता है, पर भावावेगको बचा है यह बिम्ब अन्यत्र कविताके संघटनमें संयोजित हो सका है। 'सुबह' एक ही बिम्ब पूरे अनुभवको व्यक्त करनेमें सफल हुआ है

था कि सिकुड़ा हुआ बैठा था जो पत्थर
सजग-सा होकर पसरने लगा
आपसे-आप।

ऐसी प्रकृति सम्बन्धी कविताओंकी स्थिति अलग है, जिनमें प्रकृतिके माध्यम मानवीय ऐन्द्रिक तथा मानस सौन्दर्यकी आकांक्षा तथा रोमैण्टिक भावावेश व्यंजित हुआ है और इनको प्रेम तथा सौन्दर्यके काव्यके रूपमें माना जा सकता है। इस दृष्टिसे 'बसन्त आया' एक प्रेम-प्रणय तथा यौवनोन्मादकी कविता है

यौवन की उमड़ती हुई वसुधाएँ
मन-मणि की गूँथी हुई कजर-कलियाँ
रस-रंग में भीगी हुई छायाएँ
रस-रंगमें माती हुई कामिनियाँ
फिर आयी बसन्त।

'धूप' में इसकी अपेक्षा अधिक सूक्ष्म स्तरपर प्रेम सौन्दर्य तथा प्रणय सम्बन्धी प्रभाव-बिम्बोंको संघटित किया गया है और सारा वातावरण

प्राकृतिक बिम्बोंसे निर्मित है। कहीं 'किसके पत्थरोंपर धूप पसरे सोती है', 'सपनोंके शहरोंमें शामें उतरती हैं', कहीं 'सूरजमुखी मीठी पुखराजियाँ लिपटती रहीं', 'कलियाँ फूलोंको हँसा रहीं' और कहीं 'कुमुदोंमें चन्दाका कोष शिथिल बिखर रही है, भीनी-भीनी सुगन्धियाँ या पानीकी माटी और मीत पूजती पुलकियाँ लिये जाय'। इन भाव-बिम्बोंके साथ 'एक निर्जनाकाशका प्रसार', 'समय दुपहरीमें मक्खन-सा घुलना', 'मौसमकी बोतल दूध सरकाना', 'यौवनके फूलोंका अनजान होना', 'मगन-मगन मोतियों बरसाते हुए बादल', 'कानोंमें गुनगुनाना', 'मिल मिल मिलकर गाना' और 'मन मन मैनकी पाखोंपर हाथोंसे हाथ थपथपाना' आदि मानवीय भाव व्यञ्जनाओंका संकेत करनेवाली क्रियाएँ संयोजित हैं। इसी प्रकार 'मसाला मिस्त्र' नामक कविता-में प्रकृति और मानवीय भावोंको एक ही प्रभाव-बिम्बमें संयुक्त कर दिया गया है। एन्द्रिय-सौन्दर्य और प्रकृतिका भाव-सौन्दर्य बिम्बोंमें मिल-जुलकर रोमैण्टिक प्रभावको पैदा करते हैं और ये बिम्ब-चित्र कल्पना-विलासमें व्यापक हो गये हैं। कभी यह रुमानी भावुकता बहुत सादगीके साथ प्रस्तुत की गयी है जैसे 'चाँदसे चाँदी-सी रातें' कवितामें।

प्रारम्भसे शमशेरमें व्यक्ति और समाजको लेकर अन्तर्द्वन्द्व रहा है और इसका कोई समुचित समाधान सामान्य स्तरपर वह नहीं कर सके हैं। इस अन्तर्द्वन्द्वका उन्होंने भावुकता, भावावेग, शुद्ध कवि-दृष्टि, सामाजिक यथार्थकी स्वीकृति, सामाजिक दायित्वके समर्थन तथा विरोधी तर्कों और शैलियोंके प्रयोगसे उत्पन्न आवरण तथा चमत्कारिक प्रभावसे सुलझानेका निरन्तर प्रयास किया है। अकेलेपन और आत्मिक अनुभवके स्तरपर कभी-कभी कवि व्यक्तिके इस एकाकीपनको समाजके समक्ष स्वीकारता है:

> मैं समाज तो नहीं; न मैं कुल
> जीवन;

जन-समूह में हूँ मैं केवल
एक कण।
कौन सहारा!
मेरा कौन सहारा!

जैसे अपने दायित्वकी चेतनामें प्रेरित होकर कवि समाजके साधारण वर्गके जीवनके प्रति संवेदनशील होता है। पर परिवेशसे प्रभाव ग्रहण करनेकी सहज क्षमता है इस कारण ऐसे चित्रोंमें मार्मिक अनुभूति व्यंजित है। 'शाम होनेको हुई' में ऐसे हो क्योंकि साम्यवादी जीवनका चित्रण है पर कविने उसकी मानसिक स्थितियोंके प्रभाव-चित्रोंके साथ अन्तमें प्रकृति के निर्मोह विषम वैषम्यका प्रभाव कवितामें संयोजित कर दिया है

शाम हो आयी चमक उठे कई
बल्ब ऊपर आसमानके दूर—
नभ में। दूर तक उठे अधीर
साथ कैसे सहज, कैसे क्रूर!

प्रायः समशेर समसामयिक घटनाओं और परिस्थितियोंके प्रति सचेष्ट रहा है। इनमेंसे कतिपय साम्यवादी आन्दोलनों तथा घटनाओंसे सम्बन्धित हैं। पर इन कविताओंमें कविकी प्रतिक्रिया तथा सहानुभूति अधिक व्यंजित हुई है जो सामाजिक चेतनाकी अपेक्षा वैयक्तिक अधिक है। अथवा फिर वे नारेका व्यक्तित्व धारण कर गयी हैं। 'यह शाम है' में ग्वालियरकी एक सामयिक मार्मिक चित्र है जिसमें मजदूरोंके जुलूसपर गोली चलनेकी घटनासे प्रभावित होकर कविने बिम्ब-चित्रोंमें उसकी संवेदनाको ग्रहण करनेका प्रयत्न किया है

यह शाम है
कि आसमान है पके हुए अनाज का।

लपक रही कहू-सी बत्तियाँ,
कि जाता है।

पर कवितामें नारोंकी ध्वनि अधिक है। इस प्रकार बिम्बोंको प्रस्तुत करनेमें प्रतीकात्मक चित्रोंमें कविताका सयोजन कभी आश्चर्यजनक और वैचित्र्यपूर्ण हो जाता है। भारतभूषणकी 'सान्ध्यगीत' कविताके प्रारम्भमें 'कथा' और 'सूर्योदय'के प्रतीक बिम्ब और अन्तमें 'अगणित शून्य तथा गंगाकी धारके माध्यमसे बृहद् पक्षके पौराणिक प्रतीक-बिम्बसे

डरकर बह चला है
सब
जनमहासागर।

के साथ 'मारसागर है—मान निनाद'का अधिक संगत सामंजस्य स्थापित हो सका है और कविताका आन्तरिक संगठन भी एक सीमा तक रक्षित है। अधिकतर कवि अपने व्यक्तित्वको ऐसी परिस्थितियोंमें उपमाओं और प्रतीकोंपर आरोपित तथा प्रक्षेपित करता है अतः कविताओंमें भावुकता और भावावेशका वातावरण अधिक है। कम ही स्वप्नात्मक विचार तथा सिद्धान्तकी प्रमुखता है पर ऐसी कविताओंमें किसी-न-किसी प्रकारसे वैचित्र्यका समावेश अवश्य किया गया है जैसे 'चील' नामक कवितामें चीनी नागरीकी चित्रमयताका आश्रय। कुछ समसामयिक कविताओंमें व्यंग्य प्रमुख है जैसेमें नृसिंही-जैसा चमत्कार प्रकट मिलता है (अज्ञेय)। इनके अतिरिक्त गुनगुनाती 'चौराहा' तथा 'कल्याणी' शीर्षक किसी सधी कविताओंमें कविकी आत्मीय संवेदना विभिन्न बिम्ब-चित्रोंमें अंकित हुई है। इन चित्रोंमें निर्वैयक्तिकताका आग्रह है पर 'मर्म' कवितामें चमत्कारक ध्वनि अधिक गूढ़ है।

कान्तियोंके समान अपने बिम्बविधानमें अनुभूतिके सूक्ष्म तथा तात्विक स्वरूप को व्यंजित करनेका प्रयत्न करते हैं। अनुभूतिकी सघनतामें व्यक्तित्व और प्रकृति एक ही प्रतीक-योजनाके अंग हो जाते हैं

एक नौका आइना
कपास-सी यह चाँदनी
और अन्दर धँस रहा हूँ मैं
इसी के महत्त्व के मौन में।

यहाँ व्यक्तित्वकी यह अनुभूति प्रकृति तथा अन्य बिम्ब-विधानोंके साथ एकरूप हो सकी है कविता अपने आन्तरिक संयोजनमें उत्कृष्ट बन पड़ी है। 'एक मौन' में ऐसी ही सफल योजना और संगति है

सोने के सागर में अहरह
एक नाव है
(नाव वह हमारी है)
सूरज का गोल पाल संध्या के
सागर में अहरह
डोलता है
बहता है—

'घनीभूत पीड़ा' (एक सिम्फ़नी) अतियथार्थवादी चित्र प्रभाव-बिम्बोंके आधारपर लिखी गयी एक लम्बी रचना है जिसमें रेखाओंके आंगिक बिम्बों द्वारा ध्वनि तथा वर्ण-बिम्बोंमें सामंजस्य स्थापित किया गया है और स्फुट तथा निर्गुम्फित बिम्ब कल्पनाको उत्तेजित करते हैं। परन्तु कवितामें अस्पष्टताका वातावरण अर्थकी व्यंजनाको प्रसार देनेमें सहायक होने तथा अनुभवकी सघनता तथा गहराई देनेकी अपेक्षा ऐन्द्रजालिक प्रभाव अधिक उत्पन्न करता है, इसके अतिरिक्त रोमैण्टिक अनुभवके निहित संकेतोंमें

यह प्रभाव स्पष्ट होता है यद्यपि कविताकी आन्तरिक संरचनाको ये तत्त्व शिथिल और विशृंखल करते हैं। इसी प्रकारका प्रभाव विसप्रवार की 'बहार शीर्षक कविता सुनकर' ध्वनित किया गया है परन्तु इसके बिम्ब-चित्रोंमें भ्रम तथा रोमानकी कल्पना अधिक उद्वेलित हुई है।

'मधुवनका राग' 'टूटी हुई बिखरी हुई' तथा 'सावन-जैसी लम्बी कविताओंमें शमशेरने आधुनिक काव्यकी विशृंखल असम्बद्ध तथा विसंगत शैलीका अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग किया है पर इन तत्त्वोंका समुपयोग अनुभवको अधिक विशिष्ट तथा विकासम ढंगसे संघटित करनेमें नहीं हो सका है। 'मधुवनका राग' में देश-कालकी सीमाओंका अतिक्रमण करके या अनेक स्थितियोंको एक साथ प्रस्तुत करनेकी चेष्टा है, यह बिम्ब-भावनाकी अपेक्षा कथन अधिक है। परिणामस्वरूप स्थितियोंमें बीचका अन्तराल न भर सका है और न अनुपूरित हुआ है जो इस प्रकारके प्रयासोंकी विशेषता होती है। ऐसा नहीं कि कथनका तार्किक प्रतीकात्मक अथवा बिम्बात्मक प्रयोग नहीं किया जा सकता अनेक बार इन कविताओंमें हो ऐसा बन पड़ा है। ऐसी स्थितिमें एक सीमा तक कविताकी आन्तरिक संरचना और संगति भी देखी जा सकती है। दूसरी कविता 'टूटी हुई बिखरी हुई' में स्थितियोंके विशृंखलित चित्र अधिक बिम्बात्मक तथा मार्मिक हैं उनमें आन्तरिक संयोजन भी अधिक सधा हुआ है। परन्तु इस रचनामें रोमैण्टिक मूड अपनी प्रभावोंका आशा-निराशा पीड़ा व्यथा तथा अगोचर सुख-स्वप्नोंकी स्मृतियाँ निरन्तर प्रस्तुत हैं इस कारण विशृंखल तथा विसंगत बिम्ब-योजना शैलीगत चमत्कार मात्र उत्पन्न करती है। कविताकी मूल संवेदना वस्तु तथा स्थितियोंसे बद्ध अनुभवकी अपेक्षा रोमैण्टिक भावावेगको ही ध्वनित करती है। इसकी स्थितियोंमें विभिन्न चित्र एक दूसरेके पूरक बन पड़े हैं उनसे अनुभवकी अनुभूति अन्य ओर तथा अनुभूतिमें नहीं उत्पन्न हो सकी है। 'श्यामक बरगदतर तालकी तट्टर' 'जंगली कुत्तर' 'शीशेका टापना' 'एक कूपका उजाला

छिपकलियाँ पहनकर रातका कम्बल उतारना' आदि अनेक बिम्ब-चित्रोंमें बराबर एक रोमैण्टिक भावना विद्यमान है

> और तब मैंने देखा कि मैं सिर्फ एक साँस हूँ जो उसकी
> देहों में बस गयी है।
> जो तुम्हारे भावों में फाँस की तरह भाग में
> अटकता होगी बुरी तरह खटकता होगी।

'सावन' नामक कवितामें प्रारम्भिक चित्र अपनी सघनतामें अधिक पूर्ण हैं, अनेक प्रतीक समरूप प्रस्तुत भाव-चित्र वस्तु-स्थितिकी अपेक्षा पूरी कविताकी समस्त योजनाको भावारोपित कर रहे हैं। वास्तवमें कविके सम्मुख यह स्पष्ट नहीं है कि भावुकता तथा भावावेश उसकी आधुनिक शैली तथा शिल्पसम्बन्धी अभिरुचिके अनुकूल नहीं है अथवा यह नया शिल्प विधान उसके मूल रोमैण्टिक भावके साथ संगत नहीं है। वह एकसे भावनाके स्तरपर सम्बद्ध है और दूसरेसे प्रयोगके स्तरपर आरोपित है। परिणामस्वरूप वह प्रभाववादियोंसे केवल अति यथार्थवादियों तकके बिम्ब-विधान तथा प्रतीक-योजनासे प्रेरणा ग्रहण करके भी मूल भावनाकी दृष्टिसे रोमैण्टिकों (बायरन) से अलग नहीं हो पाया है। और अपनी विरोधाभासकी स्थितिमें बचकर सिर्फ उसमें विषम वस्तु तथा शिल्पके विरोधपरक प्रयोगोंसे एकान्तिक प्रभाव उत्पन्न किया है जिसके वातावरणमें पाठक प्रायः एक विचित्र रहस्यका अनुभव करता है। प्रयोगोंकी यह विशिष्टता है और सहृदयताका कारण भी।

अन्यमें उस कोटिकी कविताओंको लिया जा सकता है जिनमें या तो स्वयं कविने अमूर्त चित्र अथवा सुर्रियलिस्ट चित्र रखा है या जिनमें प्रभाववादी बिम्ब-चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। इन विभिन्न शैलियों और प्रतीक-विधानोंका उपयोग तो कविने प्रायः किया है, पर अन्य कवियोंसे जैसा कि देखा जा चुका है अन्य भाव-स्थितियों और वास्तविक चित्रोंको

ध्वनित करनेकी प्रवृत्ति और उद्देश्य प्रधान रहा है। यद्यपि इन कविताओं में वस्तुपरक अनुभवको ध्वनित करनेका प्रयत्न अपेक्षाकृत अधिक है इस कारण इनकी वास्तविक सम्वेदनात्मक तथा संवेदनात्मक एकता और गति अक्षुण्ण है। दोनों रंग और रेखाओं के सभी भिन्न-भिन्न स्तर वस्तुपरक तथा कविताके अनुभवको सामने करनेमें सहायक हैं

दूर से आता हुई
एक आपद का मड़क
अल्लम् में
गोली आ रही है।

इस चित्रके साथ यह दूसरा चित्र

शाम
घाटना।
सड़कें
शिथिल पथ।
बहुत सहरा।

असम्बद्ध होते हुए भी अनुभव क्रमशः संघटित हो जाता है। कविता के विभिन्न स्तरोंमें भी उसकी व्याप्ति हो गयी है पर अन्तिम उदाहरण विम्बकी अपेक्षा रचना और अनुभवकी अपना मार्ग अधिक ध्वनित होने लगा है। फिर भी इसमें कविता प्रभावशाली रचना हो गयी है। एक आदमी या पहाड़ोंका पुनर्निर्माण ठेकना 'भूख कार्नीवाल' आत्मन गर्मी 'य ज्यों पर बैठो है, तथा 'एक मौन' जैसी छोटी तथा प्रभाव विम्बोंमें प्रस्तुत कविताएँ अधिक सफल हैं। उनमें कहीं एक विचार विभिन्न स्थितियोंमें प्रत्यय कर अनुभवके एक बिन्दुपर समन्वित किया गयी है

फिर क्यों
दो बाहुओं के तार
उसे महज़ उकसा रहे हैं ?

कभी प्रभाव-बिम्बोंके साथ एक प्रत्यक्ष स्थितिसे समस्त कविताको संवेदित किया गया है :

आज बचपन का
उदास माँ का मुख
याद आता है ।

अन्तमें इस प्रकारका भावात्मक संकेत समस्त कविताको कभी निश्चित विराम बोध भी देता है, जो उसकी भाव-बोधकी सम्भावनाके लिए बाधक भी माना जा सकता है । 'ये लहरें घेर लेती हैं' का अन्तिम भाव संकेत ऐसा ही है :

अनगिन व्यथा भर सहसा
कौन भाव
बिखर गया इन सब पर ?

इससे कविता संघटित हुई है, पर उसकी सम्भावना सीमित भी हो गयी है । 'एक मौन' का प्रभाव-चित्र अपने अनुभवमें पूर्ण उतरा है, यह अलग बात है कि कविके अनुभवमें रोमांसका मूड व्यंजित हो गया है । 'सीम और नाखून' तथा 'सिगरेटका खून पीती थी मैं' में कविने बिम्बोंका स्पष्ट विभंजक संयोग किया है, सम्भवतः इसीलिए उसने इन्हें सुर्रियलिस्ट चित्र माना है । पर इस प्रकारके प्रयोगसे वैचित्र्यकी सृष्टि अवश्य हुई है, अनुभवकी आन्तरिक एकतामें किसी प्रकारकी गहराई नहीं आ सकी है और न अर्थकी व्यंजनामें सम्पन्नता ही आयी है ।

आधुनिकताका नया स्वर[1]

विपिन कवि हैं वैज्ञानिक हैं और आधुनिक भी। उनकी आधुनिक दृष्टि साहित्यकी अपेक्षा विज्ञानसे अधिक विकसित हुई है। साहित्य उनका पढ़ा है पर साहित्यके विद्यार्थीकी पद्धतिसे परम्पराओंके आधारपर नहीं। यदि कहीं परम्पराओंका उनको परिचय है तो विज्ञानकी जहाँ आजकी लोक प्रचलित मान्यतामें परम्पराओंको गहना अनावश्यक हो गया है। इसलिए उनकी प्रवृत्ति वैज्ञानिक है और उनकी कविता प्रवृत्तितः आधुनिक है। कवितामें वैज्ञानिक मनोवृत्तिकी आधुनिकताका अर्थ इस युगके वैज्ञानिक आविष्कारों तथा प्राविधिक करामातोंकी चर्चा करना नहीं है और न ही उनसे अनिवार्यतः रूपक अथवा प्रतीक ग्रहण करना ही जैसा आज प्रायः समझ लिया जाता है। इस प्रकारके रूपक या प्रतीक हमको मध्ययुगीन मनोवृत्तिके आगे नहीं ले जा सकते।

वैज्ञानिक मनोवृत्तिके परिणामस्वरूप आधुनिकताकी एक विशेषता है असंतृप्ति (डिस्सैटिस्फैक्शन)। इस असंतृप्तिके कारण ही आधुनिक कवि परम्परासे विद्रोह करता है और नये मार्गका अन्वेषक बनता है। पिछले युगोंके काव्यके व्यक्तित्व (पर्सनैलिटी), अभिव्यञ्जना (एक्सप्रेशन) अति-रेक (एक्स्ट्रावेगन्स) परिपूर्णता (पर्फेक्शन) और कलात्मकतामें ही वह असंतृप्त है। उसके लिए वस्तुमात्रका अपने आपमें कोई महत्त्व नहीं रह गया है उसकी निरपेक्षताका आकर्षण समाप्त हो गया है। उसका यथार्थ रूपान्तर वास्तविक या अतिरंजित रूपमें कविके अनुभवका विषय नहीं हो पाता। अब आजके कविके लिए अनुभव सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। ऐसा नहीं कि पिछले कवियोंके लिए अनुभवका महत्त्व नहीं था पर उनके

१ विपिन अग्रवाल।

मिल वस्तु तथा स्थिति भी वाचक थे अतः उनका अनुभव भावाकुलता या भावप्रवणतामें प्रतिफलित होता था। यह भावावेग फिर अपनी अभिव्यक्तिके लिए अनेक एम उपकरणोंका आश्रय लेता है जिनमें कविता लिखी जाती रही है। भावके कविकी दृष्टि कविताकी इस पूर्णतामें शिल्प-कौशलमें तथा भावावेगमें वास्तविक अनुभव ओझिल हो जाता है या जाता है। इसी कारण यह असन्तुष्ट है और अपने सृजनात्मक अनुभव को संपन्न करनेके प्रयत्नमें संलग्न है। विपिनने नये कविके इस अनुभवको 'मोटर, साफ बत्तियाँ और अभिमान और अन्धकारमें पसारा'-जैसी कविताओंमें व्यक्त किया है। हमारी गति पराजयोंमें व्यंजित होती है मोटरकी साफ बत्तियाँ (यांत्रिक अनुभवके आधुनिक उपकरण) हमारे इस अभिमानको खण्डित नहीं कर सकतीं

बजाय रोशनी के
छाया में
जो पास कद से
उसकी पहुँच पसारा है।

यही भाव दूसरी कविताओं और भी स्पष्ट है यद्यपि इसी कारण इसका आन्तरिक संरचनात्मक संगठन कम है

निविड़ अन्धकार में भी
कभी कभी
वस्तु का भार
आत्मा-सा
न जाने कैसे दुस्तर
सारा का आस्वाद कर देता है!
सच माना
वह सब प्रकाश

रूप की मरीचिका-सा
जीवन म सुनहरा है।

विचारपरता (इन्टेलिजेन्सी) वैज्ञानिक युगकी प्रमुख माँग है। आज फिर दृष्टि परिपूर्णताके स्थानपर विचारपरताका महत्त्व बढ़ा है। यह विचारपरता ही उसका व्यक्तित्व (पर्सनेलिटी) है और उसके साथ व्यक्तित्व और अभिव्यक्तिकी संगति बैठ नहीं सकती। समय-समय शक्ति तथा साधनके अनुसार निश्चित उद्देश्य तक पहुँचना विचारपरताका कार्य है। इसी वैज्ञानिक दृष्टि भावका कवि अपने अनुभवकी समस्याको इस प्रकार समझता है। वह अपने इस काव्यात्मक अनुभवको वस्तु स्थिति अथवा चरित्र आदिकी प्रतिक्रिया या आत्मनिष्ठ रूपमें नहीं मानता। वह सीधे अनुभवको उसी रूपमें ग्रहण करता है और इसी कारण उसके अनुभव तथा वाक्य-रचनामें कार्य-कारणका सम्बन्ध नहीं देखा जा सकता। व उसकी रचना-प्रक्रियाके अभिन्न अंग हैं। इस निश्चित दृष्टिसे कारण रूप और कथन अर्थात् वस्तु तथा शिल्प अलग अलग महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाते जो अनुकूल तथा साधक हैं वह अनुभवकी सीधी अभिव्यक्ति है। अब कविता रचनात्मक दृष्टि इतना प्रस्तुत करनेमें आगरा यदि अपने साधन विचारपरताका आश्रय लेता है। इस कारण यदि वर्तमान कविता वस्तुओंकी किसी साधक या नाटकीय परिस्थितिकी अभिव्यक्ति स्वीकार नहीं करता और न उसे किसी निश्चित अथवा सुन्दर बिम्ब-विधानकी आवश्यकता रह जाती है। क्योंकि वह सीधे अनुभवको समझने अतः वह प्रस्तुत करनेमें प्रयत्नशील है अतः वह उसके लिए विचारपरक (इन्टेलेक्चुअल) उपमानोंका प्रयोग करता है। विभिन्न विषयोंका तथा प्रसंग पाया जाता है यही कारण है कि उसके उपमानोंकी दृष्टि वस्तु तथा विषयोंकी निश्चित अवस्थामें नया मिलेगा। अभी आधुनिक कविता वस्तु और बिम्बविधानकी यह दृष्टि देखी जा सकती है।

ऐंठी हुई जकड़ की डार सी
नन्ही सड़कें
न जाने कब छिपट जायें।
प्यास दौब की झुलवारी में रह
हरे पड़
कब बाँहें बढ़ा अपने कम्पई हाथों से
पात बसन्त का पुकारत रह जायें।
कौन जाने हम-तुम
बहुत बस कब
हँसने में शर्मायें।

उपर्युक्त कवितामें प्रस्तुत विषय और उसको व्यंजित करनेकी शैली अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण नहीं है। उसकी सार्थकता इसी बातमें है कि इसके द्वारा कवि अपने सर्जनात्मक अनुभवको विशदीकृत (एक्सप्लिसिट) ढंगसे कह सकता है। कोई भी जीवनकी यथार्थ स्थिति नये कविको अनेक भावों-से संवलित कर सकती है। परन्तु वह आलम्बन आश्रय उद्दीपन संचारी आदिक वस्तुपरक आधारपर न कोई निरपेक्ष रस-दशा उत्पन्न करना चाहता है और न प्रभावात्मक शैलीमें पाठकमें उस भावनाको तीव्रताके साथ व्याप्त करनेका उपक्रम ही करता है। क्योंकि इस प्रकारकी पद्धतियों-से नया कवि अपने उद्देश्यमें सफल नहीं हो सकता। वह तो सम्पूर्ण अनुभवको अर्थात् अपने सर्जनात्मक अनुभवको उसकी समग्र संवेदनशीलताके साथ इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि पाठक उसका सक्रिय सहभागी हो सके।

अपने अनुभवको सीधे व्यक्त करनेमें तथा पाठकको उस तक पहुँचानेमें कविको काफी आत्मनियन्त्रण करना पड़ता है जिससे वह न स्वयं किसी भावप्रवाहमें बह जाये और न अपने पाठकको भावातिरेक या भावावेगकारी

स्थितिमें प्रेरित करे। एक प्रकारसे यह आत्मनियन्त्रण कलात्मक दृष्टिसे विकासकाम सम्भव है। इस नियन्त्रणका सहज प्रयोग विपिनकी कविताओंमें विशेष रूपसे देखा जा सकता है। यथा कविता (४) में संकलित 'समाधा' के इस अंशमें

> अथवा कुसुम सफेद कपड़े में लपट
> बाँहों पर टिका आसमान चाँदी का भार
> निकला सहसा बाराह पर सहमा हो।

भावावेग तथा भावातिरेककी स्थितिसे बचाकर कविने कविताके सारे अनुभवकी रक्षा की है। यहाँ भाव के प्रत्यक्ष स्पर्शसे पाठकके उसमें जानेकी सम्भावनामें भी कविने अपने नियन्त्रणसे काव्य मुक्ति प्राप्त की है।

यह कवि जिस प्रकार भावावेग अतिरेकसे बचता है उसी प्रकार कल्पनाकी अतिशयोक्तिसे सतर्क रहता है। वस्तुतः उसके लिए कोई भी अनुभव मात्र काव्यकी प्रेरणा नहीं है वह काव्य-माध्यमकी प्रक्रियामें उस अनुभवको पुनः निर्माण करना चाहता है। वह देखता है कि विषय वस्तु अथवा अनुभवकी स्थितिको महत्त्व स्वीकार करनेपर वस्तुपरक बाह्य बोझा भर गया हो जाता है। यदि उससे सम्बद्ध भावभावनाका भावपूर्ण संयम स्वरूप स्थिर जाता है तो भावोद्रेक भर हाथ लगता है अनुभवका अधिकांश अकारण रह जाता है। इस स्थितिमें आकर कवि जिस प्रकार भावोंके अभिव्यञ्जन (एक्सप्रेशन) से बचता है उसी प्रकार शैली और शिल्पके अतिरेक (एक्स्ट्रावेगेन्स) को सहन नहीं कर पाता है। अतः उसका मितभाषी होना उसके काव्यकी आत्मकेन्द्रित संगतिकी मांग है। वह समझ चुका है कि भावाभ्यासमें तथा कल्पनाके सम्भारमें काव्य प्रयत्न हो जाता है महत्त्वपूर्ण मात्र लगता है और अनुभव गौण हो जाता है। अतः मितव्ययिता (इकानामी) के साथ कम कथन (अण्डरस्टेटमेण्ट) करना

है। विपिनकी इस कवितामें निमग्नता, एकाकीपन, निस्सहायता तथा आत्म-निग्रह आदि भावोंको एक अनुभवमें समेट लिया गया है :

अपने कमरे को बन्द कर
दीवारों पर भयानक आकृतियाँ खींचकर
जहाँ वातायन नहीं है वहाँ से
बाहर देखने का प्रयत्न कर
फ़र्श पर लकड़ियों से अखाड़ा बना
उसके बीच खड़ा
बिना आस्तीन का कोट पहन
मैं दुःखी असामाजिक अकेला ग़रीब
कब से हिसाब लगा रहा हूँ
कि हज़ार आँखें रोयें एक बार
और एक आँख रोये हज़ार बार
तो कौन-सा दुःख ज़्यादा है ?

यह निष्कर्षण करता है, इसलिए नहीं कि उसका कथ्य ही सीमित है, उसका अनुभव ही संकुचित है। वरन् बात इसके विपरीत है। कवि जब अनुभवको महत्त्व देता है, कविताको भावात्मक प्रतिक्रियाके रूपमें स्वीकार नहीं करता, तब उसके अनुभवके क्षणके परिवेशमें उसके जीवन का बहुत बड़ा विस्तार आ जाना स्वाभाविक है। आजकी कवितामें क्षण सम्बन्धी आलोचना करनेवाले प्रायः क्षणके अर्थको समझनेमें भूल करते हैं। इसी कारण क्षणके अनुभवका अर्थ प्रायः सीमित, संकुचित, भूत भविष्यसे कटा हुआ तथा वर्तमान अनुभव लेते हैं। जब वस्तुओं तथा स्थितियोंकी प्रतिक्रियाओं तथा प्रेरणाओंसे हटकर कवि सीधे उनके अनुभवोंको सर्जन प्रक्रियामें ग्रहण करता है, उस समय क्षणका महत्त्व अपने-आपमें निर्धारित हो जाता है। पर इस क्षणके अनुभवमें अतीत, वर्तमान, भूत, उसमें सारा

इतिहास और पुराण समाहित हो सकता है। फलतः इस आदिमिथ कित्मात्मक कारण भी सभ्यता व्यतिरेक अभिव्यक्ति अथवा असंकल्पकी शैलियाँ नये कविके लिए अनुपयुक्त हैं। परन्तु इसका यह मिथकेतर (डिमिथीकरण) अन्य (डिमिथोलोजिकल) रूपतमात्र नहीं है इसके लिए अनुभवका संघटित करनेका अपूर्व क्षमता अपेक्षित है। विभिन्न कविताओंमें अनुभवके विस्तृत परिवेशको इसी शैलीमें ग्रहण करनेका प्रयत्न है। 'सूर्यास्तपर तीन दृष्टियाँ' नामक कविताकी प्रारम्भिक पंक्तियोंमें सूर्यास्तका एक दुःखद अनुभवके स्तरका चित्रण है

अजब जंगल है—
धूप के कतर का रास्ता
झाड़ देगी
डरनी मीनारों का!
बड़ा बना जाल है
मकड़ा के जालों का!
जानवरों के नाद से भी भयानक है
वह शोर—बिना गले की आवाज़ों का!
ऐसा दम घुटता है
हर कदम पर जान का खतरा है।
यहाँ—
न सूरज है!
न चाँद है!
न हवा है!

अतः इस कवितामें यथार्थके अनुभवके अन्तर्गत सम्पूर्ण वास्तविक तथा अतिवास्तविक सम्भावनाओं विनिर्मित इतिहास-पुराणके माध्यमसे अर्जित है जिसमें अनुभवकी आन्तरिक संगति मिथकीकरण द्वारा उपलब्ध हो सम्भव हो सकी है।

उपर्युक्त वैज्ञानिक दृष्टिके विकासके साथ ही वस्तुओं या स्थितियोंका रहस्यात्मक रोमैण्टिक या काल्पनिक भावप्रवणताके साथ ग्रहण करना सम्भव नहीं रह गया है। यह दूसरी बात है कि कोई अपने बचपनको छोड़नेसे इनकार कर दे या कैशोरावस्थासे आगे बढ़ना न चाहे अथवा स्वप्नोंमें जीना चाहे। यद्यपि आजके जीवनकी टकराहट इसकी मुक्ति देगी इसमें सन्देह है। अतः आजके कविका प्रत्यक्ष सहज बोध (कॉमन सेन्स) का है, वह स्थितियोंका वस्तुके साधारण विवरणमें स्वीकार करता है। परन्तु इस प्रकारके विवरणोंका सामान्य विषय (कॉमन प्लेस)के स्तरसे उठाकर संघटित अनुभवका अंग बनाना आजके कविका प्रयत्न है। उसको प्रत्यक्षीकरणकी यह सरल तथा सहज-बोध शैली आधुनिक काव्यात्मक मनोभावके जितने निकट तथा अनुकूल है उतना ही इसमें खतरा है कि काव्य-वस्तु मात्र सामान्य विषय न रह जाये। इसी कारण ऊपरसे नयी कविता लिखना जितना आसान जान पड़ता है उसकी उपलब्धि उतनी ही कठिन है। इस अन्तरको हृदयंगम न करनेसे कई नये कवि अनेक बार अपनी वस्तुको काव्यानुभूतिके स्तर तक उठा नहीं सके हैं। विविधमें इसकी गणना है यह अलग बात है कि कविको समान सफलता सर्वत्र नहीं मिल सकी है। पर यह भी है कि उसने अपने असफल प्रयोगसे सफल उपलब्धिका मार्ग अन्वेषित किया है।

यही बात विविध विसंगति (एब्सर्डिटी) सम्बन्धी प्रयोगोंके बारेमें भी कही जा सकती है। नये कवियोंमें अनेकने विसंगतिका प्रयोग किया है। ऊपरसे काव्यमें विसंगतिका प्रयोग कौतुक वैचित्र्य मंसौमके द्वारा ध्यान आकर्षित करना तथा चोट पहुँचाकर व्यंग्य ग्रहण करनेके लिए जान पड़ता है। और अधिकांश कवियोंने नयेपनके आग्रहसे इसका प्रयोग इसी उद्देश्य तथा स्तरपर किया है। पर वस्तुतः विसंगति वैज्ञानिक दृष्टिसे भी सम्बद्ध है। हम जानते हैं कि वस्तुके प्रत्यक्ष और तात्विक ज्ञानमें अन्तर है। कविता स्वयं वैसे भी ज्ञान नहीं अनुभव है, फिर जब प्रत्यक्ष तथा तात्विक

के बीच विज्ञानने मनुष्यका सार्वभौम मानवाकृति इतना व्यवधान प्रस्तुत कर दिये हैं उसका भाग सहज-बोधके स्तरका बाह्य दृश्य आधार विश्रृंखलित है। विविध रूपों ही विसंगतियोंका प्रयोग सहज-बोधक सत्यके साथ या सम्पर्क करता है और इस प्रकार इनके माध्यमसे वस्तुओं स्थितियों तथा उनके अनुभवोंके नये आयाम उद्घाटित होते हैं। यही कारण है कि विसंगतियोंका जैसा वैविध्यपूर्ण आकर्षक तथा चटकीला प्रयोग अन्य कवियोंमें मिलता है विपिनमें नहीं है। उसकी कविताएँ सहज-बोधके स्तरपर वस्तुओं का जैसा सरल कथन है वैसा ही सरल प्रयोग विसंगतियोंका भी है। 'नयी कविता (४) में संकलित — 'अजाता' में

एक नयी रचना करने के लिए
पेपरवेट के अन्दर से निकला हो।

ऐसा ही प्रयोग है। साधारणतः उनकी रचना 'इस पुरुष दर्पण' में इस प्रकारके प्रयोगोंमें एक ओर सहज-बोधक स्तरपर सारी कविता प्रतिष्ठित है और दूसरी ओर अनुभवकी संवेदना साधारण विषयकी स्थितिसे बहुत ऊपर उठती है तथा व्यापक अनुभूति उत्पन्न करनेमें समर्थ हो सकी है। परन्तु यहाँ विसंगतियाँ वस्तु-स्थितियोंके नवीन परिप्रेक्ष्यमें साधारण इस अनुभूतिको ध्वनित-प्रतिध्वनित नहीं कर पातीं वहाँ केवल साधारण विस्मयता कौतुक या आश्चर्य भी नहीं है।

विपिनकी भाषाकी स्थिति भी यही है। किसी काव्य-परम्परासे सम्बद्ध न होकर भाषा उनको किसीका संस्कार नहीं मिला है। यह भाषा सीधे जीवनसे उठायी गयी है। इस कारण जहाँ कल्पनात्मक संवेदनाएँ भाषा वहन नहीं कर पाती वहाँ वह ही साधारण तथा व्याख्यात्मक हो गयी है। परन्तु भाषाकी इस स्थितिमें उसे परम्परागत सर्वथा मान्य मुक्ति मिल जाती है जो आधुनिक मनःस्थितिके सम्प्रेषण सभी कविताके लिए अनिवार्य है। भाषाकी परम्परा उसकी एक सम्भावना होती है और

परम्परागत संस्कार जिस प्रकार वस्तुकी शैलियोंको निर्धारित कर देता है उसी प्रकार अनुभवकी कोटियोंको निश्चित करता है। किसी भी युगमें परिवर्तित सौन्दर्यबोधके कारण उस युगके कविको भाषा तथा शिल्पकी पिछली परम्पराओंसे विच्छिन्न होना पड़ता है और साथ ही अपना भिन्न मार्ग खोजना होता है। इस संक्रान्तिकी स्थितिमें कवि भाषासम्बन्धी साहसिक प्रयोग करता है जिसका अपना स्वयं आकर्षण है। विपिनके सामने यह समस्या रही ही नहीं है। अतः जहाँ वह सफल हुआ है वहाँ सहज ही और जहाँ असफल हुआ है वहाँ कोई चमक या आकर्षण भी उत्पन्न नहीं कर सका है। यह अलग बात है कि साहसिक प्रयोग-द्वारा मार्जित करना कविताका उद्देश्य नहीं हो सकता।

भाषाके साथ शिल्पका प्रश्न उठता है। काव्यको वस्तु सम्बन्धी दृष्टिके साथ शिल्पका प्रश्न जुड़ा है। पिछले काव्यमें उपमानों तथा प्रतीकोंका जैसा प्रयोग हुआ है अथवा जिस पद्धतिसे लाक्षणिक तथा व्यंजक अर्थ ग्रहण किया जाता रहा है उसकी एक निश्चित परम्परा बन गयी है। वस्तुतः ये शैलियाँ अनुभवको भावनाओंकी प्रेरणाके रूपमें मानकर चलती हैं इस कारण अनुभवकी आधाररूप वस्तु-स्थितियोंका महत्त्व इनमें स्वतः सिद्ध हो जाता है। नया कवि भावनाओंको अनुभवके अन्तर्गत स्वीकार कर उसे ही काव्य रचनाकी प्रक्रियामें ग्रहण करनेका उपक्रम करता है। इस स्थितिमें उसके लिए पिछली काव्यशैलियाँ अनुपयोगी सिद्ध होंगी। पिछले प्रयोग बार-बार उभरकर तथा उसके पाठककी परम्परागत अनुभवोंकी ओर खींचते रहेंगे अतः कवि इन प्रयोगोंके माध्यमसे अपने अनुभवको व्यक्त करनेमें असफल होता रहेगा।

इस स्थितिमें नया कवि काव्य-व्यंजनाकी नवीन शैलियाँ विकसित करता है जिनका संकेत ऊपर किया गया है। इस प्रकारकी व्यंजनामें जीवनसम्बन्धी आधुनिक दृष्टि तथा उसपर आधारित सौन्दर्यबोधको व्यक्त करनेकी शक्ति है। इस व्यंजना शक्तिके अपरिचित लगनेका कारण प्रायः

इस नवीन दृष्टि तथा बोधकी प्रगल्भताकी कमी है। और वह इसी कारण परम्परागत उपमानों तथा प्रतीकोंकी सौन्दर्यमूलक तथा अतिशयोक्तिपूर्ण भावनाके स्थानपर साधारण जीवनके सहज प्राप्य नये उपमानों तथा प्रतीकों का उपयोग करता है। इनके माध्यमसे कवि कल्पनाको नया विस्तार प्रदान करता है, अनुभवके शब्द-बोधके लिए कल्पनाका तत्त्व सदा अनिवार्य है। साथ ही इनसे जीवनका सम्बन्ध अनुभूतिके स्तरपर स्थापित होता है। जहाँ से साधारण जीवनसे ग्रहण किये गये उपमान तथा प्रतीक अपने प्रयासमें मात्र वैचित्र्य और कौतूहलकी सृष्टि करते हैं, नयी कविताका उद्देश्य असफल होता है। विपिनके इस प्रकारके प्रयासमें इसको समझा जा सकता है:

घोड़ी-सी बुद्धि और
बड़ा-सा भारी दिमाग ले
विषय के प्रचारक
मंच पर चढ़ हा
टीन के झुनझुने की तरह
अपना सिर हिलाने डुलाने और बजाने लगे
चार माइक भरमी गरम उगल
वक्ता और श्रोताओं के बीच
प्रश्न-चिह्न-सा खड़ा
एक मुद्रा में उनको देखता रहा
और सोचता रहा उन सभी के बारे में
जो उनसे ले अब तक उन
न जाने क्या-क्या समझा गए।[1]

इस कवितामें 'टीनका झुनझुना' का उपमान रूपमें तथा 'माइक' का प्रतीक रूपमें प्रयोग वैचित्र्यका द्योतक नहीं हुआ है। इनके माध्यमसे कवि

आधुनिक जीवनकी कल्पनाका विस्तार उद्घाटित किया है। यह कल्पना भी अपने-आपमें मान्य नहीं मानी जा सकती जबतक कि वह कविताके काव्यात्मक अनुभवकी आन्तरिक संगतिका अंग नहीं हो जाती। यह अनुभवकी आन्तरिक संगति नयी कविताकी विशिष्टता है और इसकी उपलब्धि आजकी कविताकी सफलता है। इसको स्थितियोंकी और भावनाओंकी संगतिसे अलग करके समझा जा सकता है। आजकी कविता स्थितियों तथा भावनाओंमें अपनेको नहीं बाँधती इसलिए अनुभवकी आन्तरिक संगतिमें ही वह सफल हुई है। विपिनका भाषा शिल्प तथा विषयका अत्यन्त साधारण स्तरपर उठकर इसी अनुभवकी आन्तरिक संगतिके बलपर कविता बनानेमें अनेक बार सफलता मिली है। पर जहाँ यह ऐसा नहीं हो सका है, वहाँ अनुभवके स्थानपर कथ्य या शिल्प प्रधान हो जाता है। उपर्युक्त कविताओंमें आन्तरिक संगतिका अपेक्षित निर्वाह नहीं हो सका है

अजमा उड़ गया
आता और बसता चले गये
दीवारें खड़ी ताकती रहीं
वह सब इतवार
जो आदमी न इतना मेहमान न
बनाये और जगाये थे
सहसा बजार हो गये।

कविताके इस स्थल तक संघटन रक्षित है पर आगे

बिजली के खम्भों में घुसा
माइक न जाने समय
शहर का दीवारों में कहा
आज सब थक गये हैं
कल बगला चढ़ेंगे

और विज्ञापन बदलेंगे
एक फिर ज़िन्दगी के
हज़ारों दिन बीतेंगे
अखबार में।

इन अन्तिम पंक्तियोंमें कल्पकी संगति अधिक पूर्ण हो जानेसे अनुभव की आन्तरिक संगति विशृंखल हो गयी है।

इस आन्तरिक संगतिको प्राप्त करनेकी प्रक्रिया बौद्धिक है और इसी अर्थमें आधुनिक कविता बौद्धिक कही भी जा सकती है। जो आलोचक कविता में बौद्धिकताका यह अर्थ लेते हैं कि उसमें स्थितियोंकी विचारोंकी तथा समस्याओंकी तार्किक निष्पत्तियाँ आवश्यक हैं वे या तो सफल रचनाको कविता मानते हैं या उनके मनमें कविताके बारेमें ही भ्रम है। नया कवि भी इस प्रकारकी निष्पत्तियोंको कविता नहीं मानता और न उनको काव्य-रचनाका मूल उद्देश्य ही है। अपनी काव्य-रचनाकी समग्र सर्जनात्मक प्रक्रियामें वह बौद्धिक रूपसे जागरूक रहता है जिसके द्वारा वह एक ओर अपनी रचना के प्रति अपेक्षित सौन्दर्यानुभूतिकी दूरी (एस्थेटिक डिस्टेन्स) बनाये रखता है और दूसरी ओर अतिरिक्त भावावेगोंसे तथा अनियंत्रित कल्पनाओंसे मुक्त हो जाता है। इस बौद्धिक प्रवृत्तिके कारण वह सम्पूर्ण समसामयिक जीवन और उसकी समस्याओंके प्रति जागरूक अवश्य हो सकता है पर कविके रूपमें उसकी तार्किक संगतियाँ ढूँढ़ना उनके निष्कर्ष निकालना अथवा उनका समाधान प्रस्तुत करना उसका काम नहीं है। यह स्थापना [illegible] कहना इसके स्पष्टीकरण अपेक्षित है क्योंकि इस प्रकार वह अनुभवके आधार मूल्योंका धर्मोंका निर्धारण कर सकता है। और इसके माध्यम वह अपने वास्तविक अनुभवमें अतिरिक्त कल्पनापूर्ण अंश (जिसे [illegible] + [illegible] है) मिलाकर आन्तरिक संगति स्थापित कर सकता है जो अपनी अनुभवकी सम्भावनाके द्वारा [illegible] [illegible] [illegible]।

आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि अपनी सम्पूर्ण प्रगतिके बावजूद आजके युगको निश्चित दिशा नहीं दे पा रही है। हमारा प्रकृति सम्बन्धी समस्त ज्ञान हमारी विजय तथा शक्तिका अनुभव तो है पर हमारी असीम निरुपायताका एहसास भी कराता है। ज्ञान विज्ञानकी दिशामें आगे बढ़ते रहनेपर भी हमारा असन्तोष कम नहीं होता। सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्राविधिक तथा यान्त्रिक उन्नतिके बावजूद हम किसी मानवीय उद्देश्य अथवा सार्थकताको खोज पाने में असमर्थ हैं। इस मनोवृत्तिके युगकी कवितामें असन्तोष अर्थहीनता तथा उद्देश्यहीनताका अनुभव प्रधान होना स्वाभाविक है। इसीके साथ आस्थाहीनता (निराशा नहीं) अनैतिकता (इमॉरलिटी) तथा निस्सङ्गता (ऐलूफनेस) का अनुभव भी सम्मिलित किया जा सकता है। विपिनकी कविताओंमें आधुनिक जीवनके इन्हीं अनुभवोंको व्यक्त किया गया है

बहुत दिन पहले
हम अपना अपनी आत्मायें ले
पृथ्वी पर बढ़े थे
दूर जाना था हमें
राह में भटके
यहाँ आ अटके
अपनों की पहचान को
ज़मीन पर बना लिए हैं
राहों के जाल
और खम्भों के ढाँचे
मगर अब आ काल है
अनजान पाँव गाड़ियों पर चढ़ते हैं
पहुँचते हैं यहाँ-वहाँ
पर भूले हैं आत्मा की राह

कब थके थे
जाना था कहाँ !

इस कवितामें अर्थहीनता तथा उद्देश्यहीनताका कुछ स्पष्ट अनुभव व्यक्त किया गया है इसका कारण यह उतनी गहन नहीं है सच कि अन्य कई कविताओंमें इन्हीं अनुभवोंको अधिक गहरे स्तरोंपर प्रस्तुत किया जा सका है। यहाँ यह कहना प्रासंगिक है कि जिस प्रकार कवि मुक्तावस्थाकी स्थापना नहीं करता इसी प्रकार आधुनिक कवि भी आधुनिक जीवनके व्यापक तथा गहन अनुभवका अपनी रचना द्वारा प्रक्षेपण करनेका उपक्रम मात्र करता है। यह स्पष्ट बात है कि उसकी पूर्वकालीन आदर्शपर आधारित कवितायें समाप्त हो गये। कविताका उद्देश्य उपदेश देना या समस्याओंका समाधान प्रस्तुत करना कभी नहीं रहा है। आजकी कविताका लक्ष्य तो मनोरंजन करना या आनन्द देना भी नहीं है। आधुनिक पाठक कविकी सजग प्रतिभाका सहभागी होकर अपने अनुभव-क्षेत्रमें उसे पुनः संघटित करता है। यह तो नया पाठककी परिभाषा की गयी है किसी भी युगमें प्रत्येक व्यक्तिको काव्यानुभूति रसास्वादनका अधिकारी नहीं माना गया है। पर आजकी स्थितिमें तो कविके साथ पाठकका सम्बन्ध प्रायः निर्धारित हो जाता है। आधुनिक कविके साथ भाव और रचना-प्रक्रियाके स्तरका अनुभव और समसामयिक चेतनाका बोध आजके पाठकमें अनिवार्यतः भी आ सकती है। कवि अपनी काव्यगत संवेदना आन्तरिक प्रकृति तथा सम्बन्धात्मक घटनाओंके माध्यम पाठकके अनुभवको संकेत करता है उस रचनात्मक विस्तार देता है जिसमें वह कविताके निहित संवेदनके गहन स्तरों तथा अतिरिक्त अनुगूँजों के नये आयामोंका अन्वेषण कर सके।

किन्तु जैन स्वच्छन्द आकस्मिक प्रयोगशील कवियोंकी उपलब्धिका वास्तविक ठीक ठीक मूल्यांकन कर सकना आसान नहीं है। क्योंकि इस प्रकारकी कविताकी सफलता और उपलब्धिका ठीक अनुमान हम ही प्राप्त कर सकते जिसम

वर्तमान युगकी संवेदनशीलता विकसित हो। यह कविता परम्परागत शिल्प-विधानों तथा बाह्य मानदण्डोंसे इस सीमा तक मुक्त हो चुकी है और आन्तरिक तथा संरचनात्मक संगति तथा संघटनापर इस सीमा तक आश्रित हो गयी है कि एक तो परम्परागत तथा बाह्य नियमोंके आधारपर इसका विवेचन किया ही नहीं जा सकता और यदि बाह्य मानदण्डोंके आधारपर कुछ कहनेका प्रयत्न किया भी जाये तो उससे ऐसे हास्यास्पद परिणाम निकलेंगे जिनकी प्रायः नयी कविताके बारेमें चर्चा की जाती है। अतः नयी मनोवृत्तिके पाठकको यह संस्कार इन कविताओंसे मिल सकेगा जिससे वे इस कोटिकी उत्कृष्ट रचनाओंके भावबोधके गहन स्तरों तक पहुँच सकें और पुनः नये कवियोंकी सम्भावनाओं तथा उपलब्धियोंकी खोज इन्हीं पाठकों (आस्वादकों) की संवेदनशीलताके आधारपर हो सकेगी। वस्तुतः यह स्थिति अन्योन्याश्रित है।

o